॥ श्रीः ॥

व्याख्यान रत्नमाला ।

उपदेशक महोपदेशक बननेके लिये

अपूर्व ग्रन्थ ।

जिसमें

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डित दीनदयालुजी शर्मा महामहोपदेशक पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास साहित्याचार्य महामहोपदेशक पण्डित श्रीकृष्ण-शास्त्री महामहोपदेशक पण्डित गोविन्दरा-मजी शास्त्री विद्यावारिधि पण्डित ज्वाला-प्रसाद जी मिश्र स्वामी हंसस्वरूप जी, म० म० पं० दुर्गादत्त पं० हरिदत्तजी शास्त्री, तथा मिसेस् एनीबेसण्ट आदि के अद्भुत व्याख्यान हैं।

जिसको

पंडित **बलदेवप्रसाद** मिश्रने बडे परिश्रमसे संग्रह किया.

और

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६६, शके १८३१.

अनुवादक-

स्वर्गीय-पं० बलदेवप्रसाद मिश्र-मुरादाबाद.

भूमिका।

समय के प्रभाव से विधर्मियों द्वारा जब सनातनधर्म पर अनेक प्रकारके आक्षेप होने लगे तो उपदेशक महोपदेशकों ने बडे परिश्रम के साथ धर्मसभाओं के स्थापन की नीव डाली और महामन्त्री जी तथा दूसरे विद्वानों की रसमयी वक्तृता से भारतवर्ष में सैकड़ों धर्मसभा स्थापित हुई, परन्तु महोपदेशकों की संख्या न्यून होने से सर्वत्र उनका गमनागमन नहीं होसकता था और आगे को व्याख्यानदाताओं की वृद्धि का उपाय होना भी बहुत उचित था और सहस्रों पण्डितों की भी इस बात में लालसा रहती थी कि, कोई ऐसा ग्रन्थ हो जिसके द्वारा हम व्याख्यान शक्ति प्राप्त करसकें, इसमें पतिव्रताधर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गोरक्षा, वैश्यधर्म, वर्णव्यवस्था, मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद, धैर्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति, साकारोपासना, अवतार, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, पातिव्रतधर्म, तीर्थ, सनातनधर्म की महिमा, भक्ति, वैदिकधर्म की श्रेष्ठता आदि विषयोंपर अद्भुत व्याख्यान हैं। यद्यपि इस विषय की एक दो छोटी २ पुस्तकें छपीं परन्तु वह सर्वथा उपयोगी न हुई इसकारण बहुत से महात्माओं के पत्र इस विषय में मेरे पास आये कि, आप कोई ऐसी सप्रमाण व्याख्यान की पुस्तकें निर्माण करें जो उपदेशकी विद्या के सीखने को परमउपयोगी हो. मैंने इस बात को विचारकर और सर्वसाधारण का उपकार समझकर बडे बडे सुयोग्य महोपदेशक तथा महामन्त्री जी की वक्तृताओं को लिखकर प्रमाण के सहित संग्रह कर प्रकाशित किया है और जो कुछ इसमें लिखा है वह व्याख्यान सीखनेवालों के बडे काम का है. मुझे आशा है कि इस पुस्तक के अनुशीलन से विज्ञजन अवश्य लाभ उठाकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

सज्जनों का अनुगृहीत—

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र,

दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ के समाप्त होते ही पंडित बलदेवप्रसाद जी का सन १९०५ ई० श्रावण शुक्ला सप्तमीको स्वर्गवास होगया था इसी उपलक्ष में थोडी उन की जीवनी अन्त में प्रकाशित की है।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

धर्मसभाओंको सूचना.

बहुतसे महाशय उपदेशक महोपदेशकोंका पता पूछा करतेहैं हम उनके सुबीतेके लिये यहां थोडेसे नाम प्रकाश करतेहैं ।

श्रीमान् पं० दीनदयालुजीशर्मा व्याख्यानवाचस्पति मुकाम झज्जर जि० रोहतक.

श्री पं० श्रीकृष्णजीशास्त्री	विद्यावाचस्पति	महामहो०	पटियाला.
श्री पं० रघुवरदयालुजी	वेदान्तभूषण	"	कपूरथला.
श्री पं० वुलाकीरामशास्त्री	विद्यासागर	"	अजमेरकालिज.
श्री पं० गोविन्दरामशास्त्री	विद्यावागीश	महोपदे०	वरेली.
श्री पं० दुर्गादत्तपन्तजी	कूर्माचलभूषण	महो०	काशीपुर.
श्री पं० गणेशदत्तशास्त्री	विद्यानिधि	महो०	कन्नौज.
श्री पं० हरनारायणशास्त्री	प्रोफेसरहिन्दूकालिज	महो०	दिल्ली.
श्री पं० भीमसेनजी शास्त्री	सम्पादकब्रा०सर्वस्व	महो०	इटावा.
श्री पं० दामोदरजी शास्त्री	महोपदेशक		मथुरा.
श्री पं० नन्दकिशोरजी	वाणीभूषण	महो०	टेढा जि.उन्नाव.
श्री पं० गोकुलचन्दजी	महोपदेशक	मुदाफरा जि० मेरठ.	
श्री पं० विहारीलालशास्त्री	महोपदेशक	नगीना.	
श्री पं० रलियारामशर्मा	०	अमृतसर.	
श्री पं० कन्हैयालालशर्मा	०	शाहजहांपुर.	
श्री पं० कन्हैयालालउपाध्याय	०	मुरादावाद.	
श्री पं० रामचरणशर्मा	०	पीलीभीत.	
श्री पं० हीरालालजी मिश्र	शेखावाटी भूषण	उज्जैन.	

भजनमण्डली तथा भजनोपदेशक।

पं० अनोखेलालजी भजनोपदेशक	तिलहर जि० शाहजहांपुर.
पं० भवानीदत्तजी भजनोपदेशक	चन्दोसी जि० मुरादाबाद.
पं० रामस्वरूप ,,	बदायूं.

इसके सिवाय पीलीभीत चांदपुर धामपुर आदिमेंभी भजन-मण्डलीहैं।

सज्जनोंका आश्रित-

पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र,

दिनदारपुरा-मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

व्याख्यानरत्नमाला की विषय सूची।

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥

॥ श्रीराधामाधवाभ्यां नमः ॥

व्याख्यानरत्नमाला ।

श्रीमान् पं० दीनदयालुजी महोदयका

पतिव्रताधर्म—

पर व्याख्यान.

इन दिनों नवशिक्षित पुरुषोंके असदुपदेशसे और स्वयं भी कुछ २ पश्चिमी शिक्षा पाकर स्त्रियों का यह ख्याल होने लगा है कि हिंदू समाज में स्त्रियों का मान और आदर बिलकुल नहीं है, पुरुष उनको केवल एक सन्तानोत्पादक यंत्र मानते हैं, परन्तु मैं आपसे खुले शब्दों में कहदेता हूं कि ऐसा कहनेवाले और सुननेवाले दोनों हिंदुओं के शास्त्र से, उनके सिद्धांतों से सर्वथा अपरिचित हैं, यदि आप ध्यानपूर्वक देखें और विचारें तो आपको निश्चय होजायगा कि, जिन पश्चिम की स्त्रियों की दशा

देखकर आपके चित्त में यह विचार उठने लगा है, उन स्त्रियों का मान और आदर केवल आभासमात्र है और उनकी भी जड़ में स्वार्थ से वढकर, स्वार्थ से उदारतर कोई उद्देश नहीं है, हिन्दू अपनी स्त्रियों की शैशवावस्था में दुर्गा मान कर पूजा करते हैं, विवाह के पश्चात् उन्हें लक्ष्मी जानकर पूजते हैं और प्रौढावस्था में साक्षात् उमा पार्वती समझकर उनका पूजन करते हैं, हिन्दूसमाज में स्त्रियों की सरस्वती, काली, लक्ष्मी इन तीनों स्वरूप में पूजा होती है, क्या संसार में कोई ऐसी जाति या समाज है जिसमें स्त्रियों का इतना गौरव, इतना महत्व और इतना आदर हो ? फिर हिन्दुओंके आदर में विशेषता यह है कि वह स्वार्थमूलक नहीं, किन्तु परम पवित्र, परम शुद्ध और पारमार्थिक है हिन्दू पुरुष विवाह के समय साक्षात् अग्निदेव की साक्षी में और सैकड़ों मनुष्यों के सामने यह प्रण करता है कि जबतक मैं जीता रहूंगा तबतक धर्म, अर्थ, काम इन त्रिविध पुरुषार्थों में तुम्हारी इच्छा का, तुम्हारे हित का कभी उल्लंघन नहीं करूंगा. स्त्री के लिये भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञा करना पड़ती है. इससे वढकर आदर और सन्मान क्या होसकता है ? इससे पवित्र और शुद्ध प्रेम कहां पाओगे ? जो यूरप-अमेरिका के लोग स्त्रियों की स्वतन्त्रता और आदर की लम्बी चौड़ी डींगें हांका करते हैं. उनकी यह दशा हम देखते हैं कि-जहां पति पत्नी में से किसी के स्वार्थ की कुछ भी हानि हुई कि तुरन्त एक दूसरे का परित्याग करने पर उतारू होते हैं. कहां वह हिन्दू जो अपनी धर्म पत्नी के साथ उमर भर के लिये अपना अटूट सम्बन्ध मानते हैं और कहां वह पश्चिमी लोग जो जरासी बात में पति पत्नी का विछोड़ कर देते हैं ? सामान्य भगिनियो ! आपही विचार कर देखिये कि स्त्रियों का सच्चा आदर सन्मान हिन्दुओं में है या पश्चिमी लोगों में ? आजकल की नई रोशनी के मनुष्यों का प्राचीन विचारों के मनुष्यों पर यह आक्षेप है कि उनकी स्त्रियाँ अशिक्षित होने से पति पत्नी में प्रेम नहीं होता. मेरी आदरणीय भगिनियो ! इन नवशिक्षित स्त्री-पुरुषों के प्रेमकी जो बातें मैंने देखी और सुनी हैं उनसे मुझे कहना

पड़ता है कि हे नन्दनन्दन मधुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र! तुम ऐसे प्रेमसे हमारी इस हिन्दू जातिकी रक्षा करो! रक्षा करो!! मैंने एक ऐसे नवशिक्षित दम्पती के विवाह की खबर सुनी है जिसमें पतिको अपनी कई हजार रुपये की बीमापालिसी भावी पत्नी को विवाह के समय इसलिये देनी पडी थीं कि यदि दैव संयोग से पति का देहान्त होजाय तो पत्नी की चैन में, उसके सुख में किसी प्रकार की बाधा न पडने पावे, उस दिन एक पत्र में किसी महाशय का विज्ञापन मैं पढता था उसमें देखा कि आप अपनी २४। २९ वर्ष की कन्या के लिये एक वर चाहते हैं. परन्तु वह ऐसा हो कि जो कन्या के नामसे पहले कुछ रुपया बङ्क में जमा करा सके, ताकि, कन्या की उमरभर के लिये चिन्ता मिटजाय फिर वह पति जिये या मरे, उस से कुछ वास्ता नहीं; सद्भागिनियो! इस विज्ञापन को पढकर मेरा चित्त इस प्रकार खिन्न हुआ कि रोवें खडे होगये, नेत्रोंके सामने वह प्राचीन दृश्य खड़ा होगया जिसमें भगवान् दशरथनन्दन रामचन्द्र माता की आज्ञा से वन में जाने की तैयारी कररहे हैं और सार्वभौम चक्रवर्त्तिनी महारानी भगवती जानकी अपने समस्त अलंकार उतार कर सम्पूर्ण राजवैभव त्यागकर आवश्यकता न होनेपर भी, सब के मना करने पर भी, अपने पतिदेव की सेवा करने के लिये, उनके दुःख में शरीक होने के लिये पति के साथ वन में जाने के लिये आग्रहपूर्वक उद्यत हुई हैं, हाय! भारतवर्ष! तेरी यह दशा? समय तेरी बलहारी है! कहां जानकीकी पति के लिये प्राण तक न्योछावर करने की सिद्धता और कहां इस समय के स्त्रियों की विवाह से पूर्वही पति के मृत्यु के पश्चात् अपने सुख की चिन्ता! क्या यही प्रेम है? क्या इसी का नाम आदर और सन्मान है! मैं आपसे क्या कहूँ और कैसे कहूँ? हिन्दू शास्त्र में पत्नी के लिये पति ही शिव, पतिही विष्णु, पतिही तीर्थ, वही क्षेत्र, वही मन्दिर, वही जप, वही, तप, सब कुछ पतिही है. पति की आज्ञा के विना कोई धर्मानुष्ठान स्त्री के लिये विहित नहीं है. पति के सहित स्त्री को यज्ञ—योग तप धर्मानुष्ठान करने का अधिकार है परन्तु स्वतन्त्रता से पति सेवाही उसके

लिये मोक्षदायी है. पतिव्रता माहात्म्य से सैकडों ग्रन्थ भरे पड़े हैं, उन सबको सुनाने लगूँ तो महीनों की कौन कहे बरसों लग जायँगे. इस लिये मैं आपको एकही ऐसा दृष्टान्त सुनाता हूँ कि जिससे पतिव्रता की लोकोत्तर महिमा आपकी समझ में आजावेगी और आप मैं सब कृतार्थ होजायँगे. कुरुकुलावतंस महाराज धृतराष्ट्र जो जन्मांध थे उनकी प्रातः स्मरणीय पूज्य चरण महारानी गांधारी ने, इस निश्चयसे अपने आंखोंपर पट्टी बांध रक्खी थी कि जब पति संसार को देख नहीं सकता तब हम अपने अभागी नेत्रोंसे क्या देखें ! इस पति भक्ति के प्रभाव से गांधारी के नेत्रों में वह तेज वह शक्ति, आगई थी कि, जिसकी तरफ वह आंख उठाकर देखती वही अमर होजाता. उसने दुर्योधन की रक्षा के लिये उसे सर्वाङ्ग नग्न होकर अपने सामने आने के लिये कहा और उस दिन अपने आंखों की पट्टी निकालकर वह उसके सर्वाङ्ग को देखने वाली थी. यदि यह बात होजाती तो सृष्टि में दुर्योधन को कभी कोई नहीं मार सकता. परन्तु भावी प्रबल होती है भगवान् श्रीकृष्ण को यह खबर मालूम होतेही दुर्योधन नङ्गा होकर माता के पास जाता था उसे आप रास्ते में मिल गये और कहा कि तुम कैसे निर्लज्ज हो ! माता के पास ऐसे नंगे होकर जाते तुम्हें कुछ शरम नहीं आती ! दुर्योधन ने कहा कि माता ने मुझे इसी प्रकार से बुलाया है, परन्तु भगवान् ने कहा कि चाहे तुम और सर्वांग खुला रक्खो परन्तु गुह्यांग, मैं एक फूलों की झोली देता हूँ उससे ढांकलो. दुर्योधन के चित्त को व्यामोह हुआ. वह फूलों की झोली पहनकर गांधारी के पास पहुंचा और कहा माताजी, यह दास हाजिर है. उसने पट्टी खोलकर देखा तो सर्वांग खुला है परन्तु गुह्यांग ढँका हुआ है, देखतेही गांधारी बडी खिन्न हुई और उसने दुर्योधन से कहा कि हे अभागे पुत्र! तू भगवान् श्रीकृष्ण की माया में फँसगया. तेरा और सब अंग अमर होगा. परन्तु जितना अंग ढँका होनेके कारण मैं नहीं देख सकी वहीं पर आघात लगने से तेरी मृत्यु हो जायगी आगे इसी प्रकार हुआ है यह बात भारत जाननेवालों से छिपी नहीं है

परन्तु भगवान ने दुर्योधन को जो इस प्रकार धोखा दिया उसके बदले में गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दे डाला कि तेरे वृष्णिवंश का सर्वनाश होगा इस पतिव्रता के शाप को साक्षात् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्र भी नहीं टाल सके समस्त वृष्णिकुल नष्ट हो गया, पतिव्रता की क्या महिमा है! जिस पातिव्रत से साक्षात् ईश्वर को भी शाप देने की शक्ति पतिव्रता स्त्री में आजाती है उसको शिव विष्णु की पूजा से क्या प्रयोजन है? उसके लिये पति पूजाही शिव विष्णु पूजा से बढकर है. धन्य पतिव्रता! धन्य गान्धारी! तुम्हारे नाम से ही पापी कृतार्थ हो जायँगे, इन दिनों औरों की देखादेखी हिन्दू स्त्रियों में भी गाड़ी में सवार हो हवा खोरी के लिये जाना, बायसिकल पर चढना, नाटक देखना, तथा उपन्यास पढ़ना इत्यादि बातों का चाव बढ़ता जाता है, इस विषयमें मैं इतनाही कहना चाहताहूं कि ये बातें विलायत में भलेही सुखदायक या हितकर हों; परन्तु हिन्दुस्थान की जलवायु इन बातों के अनुकूल नहीं है. यहां पर जो रीति, जो मर्यादा हमारे पुरुषा डाल गये हैं उसी का अनुसरण करना श्रेयस्कर है, स्त्रीके लिये बाल्य में पिता के, युवावस्था में पति के और वैधव्य में पुत्र के अधीन रहने का जो नियम धर्मशास्त्र ने कहा है वही हमारे हिन्दू समाज का कल्याण करनेवाला, हमारी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला और हमारे समाज के पावित्र्य की रक्षा करनेवाला है, जिन देशों में,जिन समाजों में इस नियम का पालन नहीं होता उन देशों और समाजों की स्त्रियों की दशा और गृहपरिस्थिति कैसी होती है उसे मैं इस सभा में वर्णन नहीं करना चाहता, उपसंहार में मैं एक बात कहूंगा, आजकल की स्त्रियों को रसोई बनाने में बड़ाभारी कष्ट मालूम होता है जिनको द्रव्य की कुछ अनुकूलता हुई कि झट उन्होंने रसोय्या रखलिया और स्वयं सायकल पर चढ़ना, उपन्यास पढना तथा इसी ढङ्ग के और २ अनुपयोगी व्यवसाय में अपना समय व्यतीत करने लग गई, मेरी श्रद्धेय भगिनियो! यह बात सनातनधर्म मर्यादा के विरुद्ध है,आपसे अधिक क्या कहूँ साक्षात् द्रौपदी और जानकी जो सार्वभौम राजाओं की रानियें थीं, वेभी अपने

पति और ब्राह्मणोंकेलिये अपने हाथसे भोजन बनाती थीं उनके आगे आप क्या चीज हैं? आपका ऐश्वर्य, आपकी दौलत, आपकी नजाकत उनके सामने क्या योग्यता रखती है. जब वे स्वयं पाक बनाती थीं तब क्या आप अपने पति के लिये रसोई नहीं बना सकतीं? मेरा विनयपूर्वक आपसे इतनाही कहना है कि आप अधिक नहीं तो अपने पति और ब्राह्मणोंके लिये स्वयं पाक बनाया कीजिये औरों के लिये चाहे भलेही रसोइये पाक बनावें आप कैसाही पाचक रखिये उसके भोजन से पति को वह तृप्ति, वह सन्तोष नहीं होसकता है जो पत्नी के बनाये भोजन से होगा, अन्तमें मैंने जो कुछ संक्षेप से अपने विचार आपके सामने कहे हैं उनका अच्छीतरह स्मरण रखकर यदि उनके अनुसार आप वर्त्ताव करेंगी तो आपका इस लोक में तथा परलोक में कल्याण होगा और हिन्दू समाज की प्राचीन कीर्ति संसार में संस्थित रहेगी॥

बम्बई १२।८।१९०४

व्या. वा. पं० दीनदयालुजी महोदयका

आध्यात्मिक उन्नति-

पर व्याख्यान.

तारीख १९ अगस्त सन् १९०४ ई० शुक्रवार को पंडितजी का फ्रामजी कावसजी इन्स्टिट्यूट में 'सर' भालचन्द्रकृष्ण भाटवडेकर 'नाइट' के सभापतित्व में 'आध्यात्मिक उन्नति' पर एक अपूर्व प्रभावशाली और मनोहर व्याख्यान हुआ, जिसका सारांश हम नीचे देते हैं. पण्डितजी ने कहा कि आज हमारे महामान्य सभापतिजी की आज्ञानुसार मैं इस महती सभा में 'आध्यात्मिक उन्नति' पर बोलने के लिये उद्यत हुआ हूँ, परन्तु प्यारे सज्जनो! मैं एक बात पहिले आपसे कह छोड़ता हूँ कि, आध्यात्मिक विषय निरूपण करने का प्राचीन नियम यह नहीं है, आत्मतत्त्व सुनने का पुराना तरीका कुछ और ही था प्राचीन समय में जब देवताओं के

राजा इन्द्र और असुराधिप विरोचन इन दोनों को अध्यात्म विद्या जानने की इच्छा हुई तब वे दोनों 'समित्पाणि' होकर हाथ में लकड़ियों का गट्टर लिये हुए, ब्रह्मा के पास गये और उनसे अध्यात्मविद्या का उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की और ब्रह्मा के सन्निधान में कई वर्षोंतक रहकर ब्रह्मविद्या का विधिवत् अध्ययन किया, प्यारे मित्रो! उसी के मुकाबिले में मुझे आज घंटे डेढ घंटे के भीतर अध्यात्म विद्या और साथही उसकी उन्नति के उपाय आपको सुनाने हैं, तिसमें भी आज के विषय के दो विभाग हैं, एक आध्यात्मिक विद्या और दूसरी उसकी उन्नति। यदि केवल अध्यात्म तत्त्व ही कहें तो व्याख्यान का स्वरूप कुछ और हो जायगा और केवल उन्नति के विषय में बोलें तौभी व्याख्यान का ढङ्ग और प्रकारका होगा इसलिये मैं चाहता हूँ कि दोनों पर थोड़ा थोड़ा बोलूँ, सज्जनो! विषय बडा गहन और बारीक है, समस्त उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता योगवासिष्ठ इत्यादि सैकड़ों बड़े बड़े ग्रन्थ इसी विद्याका उपदेश कररहे हैं इसका समझना और समझाना दोनों कठिन हैं, उसके लिये मन एकाग्र होना चाहिये परन्तु मनकी एकाग्रता सहज बात नहीं है, अर्जुनने गीता में भगवान् श्रीकृष्णसे कहा है " चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। निग्रहं तस्य मन्येहं वायोरिव सुदुष्करम्" हे कृष्ण! हे मधुसूदन! मन बड़ाही चञ्चल और बलीहै उसका वश करना वायु को वश में लाने के बराबर दुशवार है. प्यारे दोस्तो! अर्जुन जैसा वीर, अर्जुन जैसा धनुर्धर और अर्जुन जैसा ज्ञानी भी मनको इतना चञ्चल बताता है और उसके लिये भी मन का वश कर लेना इतना कठिन है. परन्तु आजकल के दोही चार अंग्रेजी किताबें पढे हुए बाबू साहब झट कह उठते हैं कि गंगा, तीर्थ सन्ध्या-पूजा यह सब क्या वाहियात है। अजी "मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा,, भारतवर्ष? तेरे भविष्य में क्या लिखा हुआ है? अस्तु, समय बलवान् है, अब मैं आपको थोड़ेही समय में और आप सबकी समझ में आजाय इस प्रकार एक दृष्टान्त को लेकर संक्षेप से आत्म तत्त्व निरूपण करता हूँ।

प्रथम इस सिद्धान्त को समझ रखना चाहिये कि संसार में कोई कार्य विना प्रकाश के नहीं होसकता, मैं यहां बोल रहा हूँ, आप सुन रहे हैं, अभी यदि यहां का चिराग बुझा दिया जाय तो मेरा व्याख्यान वन्द होगा और आपका सुनना. तव यह प्रश्न उठता है कि वह कौनसा प्रकाश है, वह कौन नूर है जिसके सहारे इस सारे चराचर जगत् का व्यवहार चलता है? इसका उत्तर सबसे पहले यही मिलेगा कि सूर्य के प्रकाश से संसार का व्यवहार चलरहा है. परन्तु सायङ्काल को जव सूर्य का अस्त होता है तव किसके प्रकाश से व्यवहार चलता है? उत्तर मिलेगा—चन्द्र के प्रकाश से. मकान के भीतर चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता, आँधियारी रात्री को चन्द्रका प्रकाश नहीं होता वहां कौनसा प्रकाश है? आपको कहना पड़ेगा, अग्नि, दीपक, ज्योति के प्रकाश से वहां का काम लिया जाता है, परन्तु अमावास्या की आँधियारी रात्रि में कोई मनुष्य जङ्गल में से कहीं को जाता हो और वीच में मार्ग भूल जाय और पास न अग्नि हो, न दीपक हो न दियासलाई हो. प्रकाश का कोई समान पास न हो ऐसे मौके पर आपको कौन रस्ता दिखा सकता है? आपने कहींसे मनुष्य की आवाज सुनी और झट उस तरफ को चलने लगे. यहांपर आपका काम शब्द के प्रकाश से होगया अर्थात् शब्द में भी प्रकाश है, शरीर पर कहीं खटमल या मच्छरने काटा और अन्धेरे में भी आपका स्पर्श के प्रकाश से ठीक काटने की जगहपर हाथ पहुँचा और उसको आपने निकाल कर फेंक दिया, कहीं से सुगन्धि आई और आप अन्धेरे में उस दिशा को जानकर उस तरफ जाने लगे, इसप्रकार शब्द—स्पर्श—रूप—रस—गन्ध इन पांचों मात्राओं में प्रकाश है. और यह मात्राप्रकाश सूर्य चन्द्रादि के प्रकाशसे भी सूक्ष्मतर और श्रेष्ठ है, इसका विवरण करने लगूँ तो बहुत तूल हो जायगा, जहाँ शब्द स्पर्श वगैरह का भी प्रकाश नहीं होता, वहां कैसे काम चलता है? सोता हुआ मनुष्य स्वप्न में अनेक प्रकारकी अद्भुत वातें देखता है, वहांपर न सूर्य का प्रकाश होता है, न चन्द्रमा का, न दीपक का, न शब्दका, न स्पर्श का, फिर वहां किसके प्रकाश में मनुष्य स्वप्न देखता

है ? कहना पड़ेगा कि वहां मानसिक प्रकाश है और जब सुषुप्ति में मन की क्रिया भी लीन हो जाती है उस दशा का स्मरण मनुष्य को कैसे रहता है ? सवेरे उठकर हम कहते हैं कि अहा ! हा !! कैसी ठण्ढी हवा चलती थी, कैसे मजे से सोये और कैसा सुख हुआ ? इस सुख का साक्षी कौन है ? किसने देखा, किसके प्रकाश में देखा ? सबका उत्तर एकही है, आत्मा साक्षी है, वही द्रष्टा है और वह अपनेही प्रकाश में देखता है, दूसरें शब्दों में वह स्वयं प्रकाश है, उसको किसी दूसरे के प्रकाश की अपेक्षा नहीं है, उसी के प्रकाश से संसार प्रकाशित होरहा है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गीता में कहते हैं कि " न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यत्प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम,, न वहां सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमाका, न अग्निका वहां प्रकाशहै और वही मेरा स्थानहै।

इसी बात को मैं एक बडे सरल दृष्टान्त के रूप में आपके सामनें रखताहूँ प्यारे सज्जनो ! यह दृष्टान्त मेरा बनाया हुआ नहीं है, वेदभाष्यकार श्रीविद्यारण्य मुनि ने अपनी बनाई पञ्चदशी में इसको लिखा है, परन्तु वह ज्यों का त्यों न देकर उसके भाव को जमाने की रुचि के अनुसार नये वेष में सजाकर आपके सामने रखता हूँ, क्योंकि दृष्टान्त देखने में तो बडा सरल है परन्तु इसका रहस्य समझने में बडे २ विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य भी चक्कर खाजाते हैं।

आप मेरे साथ कल्पना करलो कि एक राजा के महल में रात्रि के समय दरबार भरा हुआ है, दीवान, सरदार, सेक्रेटरी और बडे २ अहल-कार बैठे हुए हैं, बडे शान का दीपक जलरहा है और एक नटी या नाचनें वाली वेश्या नृत्य गायन कररही है, उसके साजिन्दे सारङ्गी, तबला, सितार, आदि वाद्य बजाने में कमाल कररहे हैं, नटनी के सुर के साथ सारङ्गी सितार के सुर इसप्रकार से मिलकर चलते हैं कि मानों तीनों एक रूप होगये हैं, तबला बजानेवाला भी ऐसी सफाई से बजा रहा है कि जहां सम आई कि झट उसने ताल देदिया, इधर तबले की सम मिली, उधर सारंगी सितारके सुर मिलगये, बस, राजा, दीवान सब आनन्द में मग्न

होकर बोल उठे वाहवा ! वाहवा !! सुबहान अल्लह ! वसल्ले इला !! गाने का आनन्द मिला, सुख होगया, अब, थोडी देर के लिये मानलो कि नटी पंचम में गारही है, सारङ्गी ऋषभ में बजरही है और सितार गान्धार में बजती है, ताल का मेल नहीं है, परिणाम क्या हुआ, राजा की तबीयत बिगड़ी और उसने कहदिया कि क्या वाहियात गाना होरहा है ! हमारी तबीयत बिगड़ती है, इसे यहांसे दूर करो, बस राजा को दुःख होगया, साज का मिलनाही सुख है और उसका न मिलनाही दुःख है, यह तो ठीक है, परन्तु यह सुख दुःख कबतक है ! जब तक दीपक जलरहा है तबही तक, ज्योंही दीपक गुल हुआ और प्रकाश जातारहा त्योंही न नटनीका गाना रहेगा न सारङ्गी सितार का बजना रहेगा और न उससे होनेवाला सुख दुःख रहेगा, तात्पर्य क्या निकला कि,राजा के सुख दुःख का कारण, उसका साक्षी दीपक है, परन्तु वह स्वयं बिलकुल असंग है न उसको राजा के सुखसे प्रयोजन है न दुःखसे गरज एक राजाके स्थान में दूसरा राजा आजाय तो भी दीपक को कुछ परवाह नहीं है.इसी दृष्टान्त को और थोड़ा आगे बढादें. नटनी का गाना हो चुका, वह चली गई फिर राज काज के विषय में चर्चा चलपड़ी राजा ने दीवान से तथा और २ मंत्रियोंसे पूछा कि अमुक पड़ौसी राजा इस विषय में इस शर्तपर संधि करना चाहताहै इस विषय में आपकी क्या राय है ? या रूस जापान के युद्ध में किसको मदद देना चाहिये ? इसपर दीवान वगैरह ने जो राय दी वह राजा की राय के साथ नहीं मिली उसको दुःख हुवा. और जहां उन्हों ने कह दिया कि जी सरकार हुजूर की राय बहुत नेक और बहुत बजा है. झट राजा को सुख हो गया. यहां यह हुआ कि ऐकमत्य या इत्तिफाक राय होना सुख और मतभेद या खिआफ राय होना दुःख है अब राजा का दरबार हो चुका उसने अपनी रानी को बुलाभेजा और उसकी राय पूंछी वह जैसी कुछ राजा के अनुकूल प्रतिकूल मिली वैसा उसको सुख दुःख हुआ फिर उसने अपनी रानी को भी कहदिया कि अब तुम जाव. मैं एकान्त में विचार करूंगा, उसने अपनी सदसद्विवेक बुद्धि के अनुसार

विचार करके अपनी राय कायम कर ली, उसे सुख हुआ, इससे यह सार निकला कि अनेकत्वमें सुख दुःख है अकेले को कुछ नहीं अब राजा भी वहां से उठकर चलागया. तौ भी दीपक वैसाही जलरहा है. उसके सामने दरबार हुआ, नाच गाना हुवा, रानी आकर चली गई, स्वयं राजा भी आकर चले गये, उनको सुख दुःख भी हुआ, वह सारा यह दीपक देखता रहा, जो कुछ हुआ इसी के कारण से हुआ. परन्तु वह अन्ततक स्वयं असङ्ग रहा, अब राजा चले गये तौ भी वह पहले की तरह जलरहा है, राजा, रानी, दरबार, नाच सब के लिये उसकी जरूरत थी, परन्तु स्वयं उसको किसी की जरूरत नहीं है, वह स्वयं प्रकाश है, सज्जनो! यह शरीर महल है, इसमें अहंकाररूपी राजा बैठा हुवा है, संसारी बुद्धि नाचनेवाली वेश्या है, पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेंद्रिय इसके साजिंदे हैं, यदि बुद्धिरूपी नटनी का और इन इन्द्रिय साजिन्दों का मेल मिलगया तौ सुख हुआ और बे मेल होगया तो दुःख,शास्त्र विधि के अनुकूल इन्द्रियोंका साज बजा और बुद्धि वेश्या ने नृत्य किया तौ सुख होगा और विवेक प्रतिकूल साजिन्दे और वेश्या अपनी २ इच्छा के अनुकूल चलने लगे तो दुःख होगा, अपनी धर्मपत्नी में सन्तानोत्पादन करने से नटनी साजिन्दों का मेल मिलकर सुख होता है और पर स्त्री की इच्छा रखने में बे मेल काम होता है उससे दुःख होताहै. यह राजा, यह वेश्यायें साजिन्दे इन सब का प्रकाशक आत्मा है परन्तु वह दीपक की तरह तीनों काल में असंग है. उसे किसी के सुख–दुःख से गरज नहीं है दीपक और आत्मा म भेद उतनाही है कि लौकिक दीपक चैतन्य रहित है और आत्मा सच्चिदानन्द है, इस प्रकाशक आत्मा के प्रकाश से मनुष्य जो कुछ भले बुरे कर्म करता है उनका गुप्तचित्र उसके अन्तःकरण में खिंचा रहता है, और जबतक उसका फल न भोग लिया जाय तबतक वह बीजरूप से वहां पर रहता है. हमारे हृदय में बैठकर हमारे कर्मों का हिसाब रखनेवाला चित्रगुप्त यही है, स्वप्न में भी जाग्रत् अवस्था में जिन बातों का संस्कार चित्तपर पडा

रहता है वेही बातें दीखती हैं. अर्थात् स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष सृष्टि के अनुकूलही होती है, प्यारे दोस्तो ! क्या कभी किसी क्षत्रिय ने ऐसा सुपना देखा है कि वह किसी के यहां श्राद्ध का न्योता खाने गया हो, या कोई दान लेता हो ? एक भी ऐसा दृष्टान्त नहीं मिलेगा, वह सुपना ब्राह्मणही देख सकता है. क्योंकि प्रत्यक्ष सृष्टि में उसी का यह कर्म है व्यभिचारी मनुष्यको स्वप्ने में पर स्त्री ही दीखती है और धर्मनिष्ठ मनुष्य को ईश्वर का ही दर्शन होता है. मन रहित प्राणकी जो दशा उसी का नाम सुषुप्ति है, सुषुप्ति में आत्मा मन को हुकुम देता है कि तुम सोजाव.

॥ श्रीकृष्णजी की सोलह कला ॥

जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं के सोलह भेद होते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह कला कही जाती हैं वे अध्यात्मिक भाव से येही हैं, वे १६ भेद इस प्रकार होते हैं, जागृत में जागृत, जागृ में स्वप्न, जागृत् में सुषुप्ति और जागृत् में तुरीय, स्वप्नमें जागृत्, स्वप्न में स्वप्न स्वप्न में सुषुप्ति और स्वप्न में तुरीय, इसीप्रकार सुषुप्ति और तुरीय के विषय में समझना, इसी षोडश कला पूर्ण सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति करना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है और ईश्वर की श्रवण कीर्त्तनादि ९ प्रकार से भक्ति करने से वह सिद्ध होता है, यहांतक संक्षेप से अध्यात्म तत्त्व का निरूपण करके अब उसकी उन्नतिके विषयमें थोड़ा कहकर मैं आजका व्याख्यान पूरा करूँगा ।

॥ उन्नति ॥

प्यारे मित्रो ! इस भारतवर्षमें किसी समय गार्गी मैत्रेयी जैसी कितनीही अलौकिक महर्षियों की स्त्रियाँ भी अध्यात्म विद्या में खूब निपुण थीं परन्तु हाय ! भारतवर्ष इस समय इस विद्या की इतनी अवनति होगई है कि उसकी फिर से: उन्नति करने के लिये विलायत, अमेरिका, रूस वगैरह देशों के कर्नल तथा स्त्रियां भारतवर्ष में आकर प्रयत्न कररही हैं. यूरप

अमेरिकावाले वास्तव में बडे दयालु हैं और उसमें भी भारतवासियों पर उनकी असाधारण कृपा है वे हमारे लिये अबतक कपडे जूते, बटन यन्त्र आदि सब चीजें वहां से बना कर भेजते थे. हमारे देवताओं की मूर्त्तियां भी विलायत से ढलकर आती थीं परन्तु अब तो वेदांत कीं आध्यात्मिक विद्या भी यूरप से ढलकर आने लगी है ब्राह्मणों के गुरुत्व की वेदान्त की दूकान भारतवर्ष से उठकर अब विलायत में जा खुली है, प्यारे दोस्तो! अब चलो! तुम और हम वहीं चलकर जनेऊ पहन लेंगे, उस दिन किसी कालेज का 'प्रास्पेक्टस' में पढ़ता था उसमें लिखा देखा कि इस कालेज का एक उद्देश यहां पढनेवालों को ऋषि बनाने का भी है मेरे प्यारे भाइयो! ऋषि कालेज में या और कहीं बनाये से नहीं बनते हैं हीरा हीरे की खान में से ही निकल सकता है, पत्थर को या कांच को कितनाही रगड़ो, कितनाही पालिश करो, उसका कभी हीरा नहीं बनसकता. केवल विद्या पढने से ऋषि नहीं बन सकते, जब बैरिस्टरी और सिविल सर्विस जैसी मामूली अधिकार की बातें भी हमारी गवर्नमेंट ने अपने अधीन रक्खी हैं तब ब्रह्मा क्या ऋषि बनाने का अधिकार चाहे जिस आदमी को देसकती है ? ऋषि ब्रह्मा के साक्षात् मानस पुत्र थे और समय आपड़ने पर इस समय जो उनकी सन्तान है उन्हीं में आर्ष तेज का उत्कर्ष होगा. मैं सुनता हूँ कि हिमालय में रहने वाले कितनेही महात्मा विलायत की, औरतों को मिलते हैं, उनको चिट्ठी पत्री लिखा करते हैं और उनके खाने के लिये चीजें ले आते हैं, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ और मैं इस बातको सोचने लगा कि क्या भारतवर्ष का इतना अधःपतन होचुका है कि हमारे ऋषियों को अपनी सन्तान को छोड़कर विलायती औरतों और अमेरिकन कर्नलों की शरण में जाना पड़ा है !! ब्राह्मणो! यह तुम्हारा अधिकार है अध्यातम विद्या तुम्हारे घर की चीज है. तुम जागो! अपने घरको सम्हालो तुम्हारे घर में आकर और और लोग गुरु

बनने लगे हैं, यह कुछ तो तुम्हारे आलस्य का और कुछ लोगों की बुद्धि विपर्यास का फल है अतः मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप सचेत होकर अपना कर्त्तव्य करने लगो. विलायती लोगोंने थियासाफिकल सोसायटी बनाकर अध्यात्म विद्याकी उन्नति का जो उद्योग अपनी तरफसें चलाया है उसे उन्हें करने दो, उससे यदि उन्हें कुछ लाभ होता हो तो कर लेने दो, देव और दानव दोनों नें समुद्र मथन किया था, जो जिस चीज का अधिकारी था उसे वह मिलगई इसी प्रकार इस विषय में भी होगा. परन्तु आपके गुरु सिवाय ब्राह्मणों के और कोई नहीं बन सकते उपनिषदों में कथा है कि एक ब्राह्मण किसी राजाके पास गया राजानें ब्राह्मण से ब्रह्म का स्वरूप पूँछा वह नहीं बतासका और उसने राजा से कहा कि आप मुझे उपदेश करो! राजा ने कहा कि मैं कभी तुम्हारा गुरु बनकर तुम्हें उपदेश नहीं कर सकता, मैंने यह विद्या ब्राह्मणों से ही पढी है अतः आपको यह दानरूप से सङ्कल्प करके देता हूँ, उपदेश रूप से देनें का मुझे अधिकार नहीं है, ऐसी और भी बहुतसी कथा तथा प्रमाण मिलते हैं मुसलमानों की अमलदारी में दाराशिकोह प्रभृति मुसलामान विद्वानोंने हमारे उपनिषदों का फारसी भाषामें अनुवाद करवाया, उसे पढकर मुसलमान वेदान्तियों का एक नया पन्थ 'सूफी' नाम से संसार में प्रचलित हुआ, उसी प्रकार अब अंग्रेजी अनुवाद पढ़कर 'थियासूफी, पन्थ चल पड़ा है, यह तो हमारे धर्म की खूबी है कि जो कोई उसका नाश करने के लिये आता है वही उसका अनुयायी बनता है, अन्त में आप सब सज्जनोंसे अपनी अध्यात्मिक विद्या की प्राचीन विधि उन्नति करने के विनय करके मैं अपना कथन समाप्त करता हूँ।

बम्बई १८।८।१९०४

भारतधर्म महामण्डल के जन्मदाता पण्डिताग्रगण्य श्रीमान् पण्डित दीनदयालुजी का-

गोरक्षा-

पर व्याख्यान।

इस कलिकाल की बलिहारी है कि भारतवर्ष जैसी पवित्र भूमि में, सनातनधर्मावलंबियों की इस मण्डली में, वैदिक आर्य लोगों की इस महती सभा में, गोरक्षा पर बोलने की मुझे जरूरत पड़ी है कर्म-उपासना ज्ञान जैसे अलौकिक विषय में उपदेश की आवश्यकता आचार्योंने बतलाई है शुभकर्मों से मल दूर होगा, मन पवित्र होगा, उपासना से विक्षेपनिवृत्ति होगी, और ज्ञान से आवरण हटजायगा ये बातें तो समझाने की हैं,परन्तु जो हमारी रक्षा करती है उसकी रक्षा हमको भी करना चाहिये, जो प्रत्यक्ष धर्म है, उसके लिये भी उपदेश की आवश्यकता होना इसी का नाम घोर कालिकाल है, तथापि भगवदनुग्रह से ईश्वर की कृपासे, जो ब्रिटिशशासन हमें मिला है उसी की कृपा का यह फल है कि आज हम यहां एकत्र होकर इस विषय पर बोल सकते हैं, यह कम सौभाग्य की बात नहीं है बीच में एक हजार वर्ष तक बोलना भी कठिन था. परन्तु वृटिश सूर्य के सामने वह अन्धकार जाता रहा अब शांति का समय आया है. इसमें जो धर्मोन्नति-आत्मोन्नति करना हो सो करलो, हिंदू शास्त्र के अनुसार इस बात को हम सिद्ध कर सकते हैं कि जिस मनुष्य से कोई भी धर्म नहीं हो सका उससे यदि एक भी गौ की किसी प्रकार से रक्षा हो जाय तो उसका उद्धार हो जायगा, राजा का राज्य और प्रजा का सुख इनकी स्थिति गोरक्षाहीपर निर्भर है, संसार के इञ्जिन में यह एक ऐसी चीज है जिसकी हानि से सब चरखा ढीला हो जाता है, जिस प्रकार जगद्व्यापी ब्रह्म संसार का उपकार करता है उसी प्रकार गौ-जीवें समस्त जगत् का उपकार करता है, गौ में सम्पूर्ण सृष्टी का सर्वस्व भरा हुआ है,

यद्यपि ये सब बातें मैं अच्छी तरह आपको प्रत्यक्ष करके दिखा सकता हूँ तथापि इस विषय कोन तो मैं पोलिटिकल बनाऊंगा न गहन धर्म सम्बन्ध में ले जाऊंगा किन्तु दोनों को बीच में रखकर इसपर बोलूंगा।

सर्व देशों में, सर्व धर्मोंमें, यह एक सर्व सम्मत बात हो गई है कि मनुष्य 'अशरफ—उल--मखलूकात अर्थात् जगत् के अन्दर समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ है, और मनुष्य इस बातका बड़ा भारी अहंकार करते हैं परन्तु मनुष्यका यह श्रेष्ठत्व, सर्वोत्तमत्व क्या इसी बात में है कि वह औरों को मारकर अपना पेट भरें? औरों को दुःख देकर आप आराम करे? यह तो सिंहादिक पशु भी करते हैं. वास्तव में रेल, सड़क, स्टीमर; तार आदि सुखसाधनही मनुष्य की उन्नति का लक्षण नहीं है, किन्तु चिंउटी से लेकर ब्रह्म तक समस्त प्राणियों को जो सम दृष्टि से देखता है, जीव ही में नहीं, वरन वृक्ष—-पत्तों में भी जो आत्मभावना करता है, जो सबपर दया करता है वही अव्वल दरजे का मनुष्य है, उसी में सच्चा मनुष्यत्व है, आजकल भी रिफौर्मर या सुधारक उसी को कहते हैं, जो केवल अपनाही पेट नहीं पालता किन्तु अपना घर, अपनी जाति का भी उपकार करता है, जो इससे भी आगे बढकर देशभर का उपकार करता है सो सबसे बड़ा सुधारक कहलाता है, सज्जनो! इस ख्याल से मैं आपको दिखाऊंगा कि सबसे बड़ी सुधारक गौ है, क्योंकि वह जगत् भर का उपकार करती है और वह इस प्रकार से करती है कि कोई भी सुधारक मनुष्य वैसा नहीं कर सकता, इसपर कुछ महात्मा कहेंगे कि मनुने तो खुले शब्दों में कह दिया है कि 'न मांस भक्षणे दोषः....प्रवृत्तिरेषां भूतानां' फिर मांस भक्षण से मनुष्यत्व की हानि किस प्रकार होती है? इसका अर्थ यह है कि मांसादि खाना यह भूतों की—-अर्थात् प्राण की प्रवृत्ति है. प्राण रूपी अग्नि कुछ खाने को मांगता है, उसे स्वाद की अपेक्षा नहीं है उसका क्षुधा निवृत्ति मात्र से ही प्रयोजन है, लड्डू... कचोरी—दूध--हलवे से भी निवृत्त होती है; मांस सेभी और सूखे चनेसेभी होती है परन्तु मांस ही चाहिये, या लड्डूही चाहिये यह स्वाद

की बात मनके आधीनहै, मन प्राणके आधीन है; वह वृत्तियां उठाता है, प्राण सबमें है हाथी में भी है और सिंह में भी है. सर्प में भी है. और मनुष्य मेंभी है, सिंह मांस खाता है और हाथी घास खाता है, घास-मांस पार्टी सनातन है, कुत्ता-सिंह वगैरह मांसपार्टी वाले हैं और गौ-भैंस वगैरह घास पार्टीवाले हैं मनुष्य एक आश्चर्यपार्टी है वह दोनों में है और दोनों से अलगभी है, मुझमें एक जगह इन पार्टीवालों ने पूँछा कि पण्डित जी आप किस पार्टी में हैं ? मैंने कहा भाई ! न मैं घास पार्टी हूँ, न मांसपार्टी हूँ, मैं तो खीरपार्टी में हूँ, प्राण सब कुछ खाता है, श्रुती में इसका 'अत्ता चराचरस्य' कहा है उसका यही तात्पर्य है इंजिनमें कोयला डालने सेभी रेल गाडी चलेगी, लकडी से भी चलेगी, या और कुछ ईंधन डाले तोभी चलेगी इंजिन यह कभी नहीं कहेगा कि मुझे अमुक प्रकार का ही ईंधन चाहिये, परन्तु इनमें से किस चीज से कौनसा लाभ है और कौनसी हानि है इस बात को विचारकर रेल्वेवाले लाभदायक चीज काम में लाते हैं इसी प्रकार प्राणाग्नि कुछ अन्नरूपी ईंधन चाहता है, उसे किसी विशेष वस्तु से प्रीति भी नहीं है और किसी से घृणा भी नहीं है, इसलिये उसको दोष भी नहीं है, यदि किसी वैष्णव को कि जिसने अपनी उमर भर में कभी मांस देखा तक नहीं है; मांस की गन्ध भी आ जाय तौ उसे उलटी हो जायगी, केवल इतनाही नहीं, किन्तु उसने कोई चीज खाई हो और उस में मांस है, ऐसा झूँठही कह दो तौ भी उसे वमन हो जायगा, परन्तु यदि किसी दूसरी चीज में मिलाकर कुछ दिनतक उसे मांस खिलाया जाय तौ उसके पश्चात् उसकी मनोवृत्ति मांस खाने की तरफ हो जायगी सारांश 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' इस भगवद्वचनानुसार मनुष्य की भलाई, बुराई, उन्नति, अधःपात आदि का जो कारण मन है उसकी जिससे भलाई होगी, जिससे वह पवित्र होगा, वही आहार समझकर उसको देना चाहिये क्योंकि पाप पुण्य सब मन में है, प्राण वायुतत्त्व है, और वह अग्नि, पृथ्वी और जल इन तीनों को खाजाता है जो अन्न हम खाते हैं उसकी तीन दशा

होती है; और २७ नक्षत्र में वीर्य बनता है जो कुछ हम खाते हैं उसमें तीन-तत्त्व होते हैं, मिट्टी (पृथ्वी) जल और अग्नि, प्राण [वायुतत्त्व] खाता है. जल स्वाद देता है और अग्नि पकाता है, खाये हुए अन्न के पार्थिवांश की दूसरे दिन विष्ठा होती है सूक्ष्म अंश का मांस बनता है और कारण अंश का मन बनता है इसी लिये कहावत प्रसिद्ध है कि "जैसा खावो अन्न वैसा होगा मन्न" पेय पदार्थों में जो जल का स्थूलांश होता है उसका मूत्र बनता है, सूक्ष्मांश का रक्त बनता है, और कारण अंशका प्राण बनता है, आग्नेय अन्न (चिकनाई घी वगैरह) के स्थूलांश की हड्डी बनती है, सूक्ष्मांश की मज्जा बनती है और कारण अंशकी वाणी बनती है सारांश हमारा सम्पूर्ण देह और मन, प्राण और वाणी ये सब अन्नपान से बनते हैं अतः ऐसा अन्नपान सेवन करना चाहिये जिससे पुष्टि आजाय, परन्तु काम क्रोध अहङ्कारादि विकार उत्पन्न न हों; तथा धैर्य और शान्ति उत्पन्न हो जाय, ऐसा आहार संसार भरमें सिवाय गौके दूध के और कोई नहीं है, विना वेद पडे पाण्डित्य की धारा, शांत, विरक्त, प्रत्युपकार की इच्छा के विना जगत् पर उपकार करने वाली, घास खाकर अमृत उत्पन्न करने वाली, सत्व की मूर्ति–सिवाय गौ के संसार में कौन है ? प्यारे सज्जनो ! दूध तो भैंस भी देती हैं, वल्कि, गौ से ज्यादह और अधिक गाढा देती हैं, परन्तु भैंस का दूध काम–क्रोध उत्पन्न करने वाला है, आप एक 'गौ का वछडा, और एक भैंस का पाड़ा ले आइये, दोनों को एकही घास खिलाइये और ध्यान देकर दोनों के स्वरूप को देखिये, गौका पाडा कितना शांत होगा और भैंस का पाड़ा कैसी डरावनी सूरत दिखा-वेगा, काम क्रोध की मूर्ति ज्ञात होगा, इसीलिये शिवजी ने अपने वाहन के लिये गौ का वछड़ा पसन्द किया और यमराजने अपने स्वरूपानुरूप भैंस का वछड़ा लिया जगत्में सत्वगुणका भण्डारा ४ जगह भरा हुआ है और चारों हमारी सत्वमूर्ति माताएँ हैं, एक जननी माता, दूसरी गोमाता, तीसरी गङ्गा माता और चौथी सरस्वती माता, जननी माता के निरपेक्ष स्नेह को कौन नहीं जानता ? श्रुति भगवती भी 'मातृदेवी भव' का उपदेश कर रही

हैं, परन्तु हमारी गोमाता की योग्यता सच पूँछिये तो जननी से भी बढ़-कर है, जननी तो अपनेही बच्चोंको प्रेम से दूध पिलाती है और यदि दूसरा बालक पीने लगे तो उसे थप्पड लगाती है, इसके मुकाबले में हमारी गोमाता की उदारता देखलो कि उसके बच्चोंको तो रस्सी से बांध रखते हैं और आदमी दूध पी लेते हैं संसार भर में उसके पुत्र हैं, ए आदमी! सिविलिजेशन के ठेकेदार! क्या यही तुम्हारी सब श्रेष्ठता है!

भगवान् ने कहा है कि गौ मेरा रूप है, "सुखदुःखे समे कृत्वा," इस वैराग्य के परम सिद्धान्त को गौ ही पूर्णतया पालन करती है, उसपर जो प्रेम करता है उसे जैसा दूध देती है, वैसाही उसके गलेपर जो छुरा रखताहै उसे भी देती है, प्यारे दोस्तो! इससे अधिक शांति कहां पाओगे!

यही सच्चा "युनिवर्सल ब्रादरहुड—सार्वत्रिक भ्रातृभाव" है, इस गौ से अधिक दयापात्र कौन है? सज्जनो! गौ के पुत्र की शांति और धैर्य को देखो! उसपर तुम कितनाही बोझ लादो और कितनाही काम उससे लो वह कभी क्रोध नहीं करेगा, यदि तुमहीं को दया आजाय तो तुम उसे विश्राम दो या बोझ हलका करो, परन्तु वह यथाशक्ति गाड़ी खेंचताही रहेगा घोडे को यदि अधिक परिश्रम होजाय तो वह दुलत्ती चलावेगा और गधा पटक देगा, सज्जनो! यह गौ के दूध का गुण है, इसी लिये शिवजी गौ के पुत्रपर 'अहं ब्रह्मास्मि' करके आरूढ हुए, हमारी जननी माता हमारे स्थूल शरीर का मल दूर करती है, गोमाता चित्तवृत्ति पवित्र करती है, गङ्गा माता और सरस्वती माता हमारे पापों को दूर करके उद्धार करती हैं, शाहनशाह अकबर के समय में कुछ धर्मात्मा और उदार चरित मुसलमान विद्वान् होगये, उनके, विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है कि "इन दो चार मुसलमान पै कोटिन हिन्दु वारिये," उनमें एक रहीम खानखाना थे, उन्होंने भगवती भागीरथी के विषय में एक जगह लिखा है कि "वैदिकी औषध खाय कछु न खाय तेरोही पानकरे रसखान,

अरे सुधामयी भागीरथी–आख धतूरा खाय वसत शिव तेरे भरोसे" नीचे गौ का पुत्र, मस्तकपर भागीरथी, दोनों सत्वगुण की मूर्ति, बीच में कंठ में विष धारण कर शिवजी मृत्युंजय होगये, जिसने गङ्गास्नान, गौ सेवा, गो दुग्धपान और श्रुति का भजन किया वह साक्षात् शिवरूपहै, चौथी माता सरस्वती भगवती श्रुति है यह जिह्वाके मल को धो डालती है दो प्रकार की गौ सेवा कही गई है, श्रुतिरूपा गौ की सेवा ब्राह्मणों को अर्पण कीगई और स्थूल गौ की सेवा वैश्यों को बतलाई, एक निराकार है, दूसरी सगुण है. दोनों की अवनति से हिन्दू जाति का अधःपतन होरहा है प्रत्यक्ष श्रुतिरूपा गौ को कृष्ण गोपाल ही ने दुहा था, सज्जनो! यदि आप ध्यान धरकर देखें तो गौ की महिमा आपको बात बात में दिखाई देगी, साक्षात् अवतारों के विषय में देखिये नृसिंहावतार में कैसी क्रूरता थी? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र पूर्णावतार होने पर भी, महर्षि वसिष्ठ उनसे कहते थे कि तुम ब्रह्म हो और वे कहते थे कि मैं जीव हूँ, परन्तु जब कृष्णावतार में भगवान् ने गोपाल बनकर गौओं की सेवा भली भांति से की और यथेष्ट दूध–दही–माखन खाया तब गीता में निश्शङ्क होकर बड़े जोर से कहने लगे कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् मनुष्य देहके आनुषङ्गिक जो जीवत्वाभिनिवेश था वह गौ सेवा से एकदम हटगया, मेरे प्यारे दोस्तो! आप अपने को 'अशरफ उल मखलूकात' मानते हैं, परन्तु आपके मल मूत्र से दुनियां भरके रोगों की उत्पत्ति होती है. और कहीं इधर उधर पेशाब भी करो तो म्युनिसिपालिटी पकड़ लेती है. इसी के मुकाबले में गौ का मल मूत्र देखो; उसमें वह आश्चर्य महिमा है कि उससे दुनियांभर के रोग आरोग्य होजाते हैं–केवल इतनाही नहीं किन्तु जिस घरमें गौ हो गोमूत्र और गोबर का विधिवत् उपयोग होता हो और गोरस का यथेष्ट सेवन किया जाता हो उस घरमें तुष्टि– पुष्टि–सन्तति–सम्पति सदैव निवास करती है और न प्लेग आसकता है, न कोई रोग आ सकता है, न किसी भूत पिशाच का प्रवेश हो सकता है. उस घर में यदि कोई आवेगा तो वही मोरमुकुट वन्शीधर श्रीकृष्णचन्द्र माखन चुराने

के लिये आवेगा, देखलो कि गौ के दूध–माखन में कैसी अद्भुत महिमा है कि उसके लिये भगवान् ने चोर बनना स्वीकार किया, बड़े बड़े योगी- महर्षियों को हजारों वर्षों की तपश्चर्या से भगवान्मूर्ति का दर्शन न होसका परन्तु गोपियां घर में केवल दूध-माखन रखकर भगवान् को ले आईं गौके माखन में वह आकर्षणशक्ति है कि विना बुलाये भगवान् घर चलेआते हैं तुम मना करो तौभी भगवान् माखन को नहीं छोड़ेंगे, सज्जनो अधिक क्या कहूँ गो तो पवित्रता की मूर्त्ति है, जिस जगह गौ पेट भर के घास खाकर रोमन्थ करती बैठती है वहां से सब रोग कोसों भाग जाते हैं, उसके केवल निश्वास में ऐसा तेज है कि वह जहाँ पहुँच जाय वहाँ की वायु शुद्ध और पवित्र होजाती है प्लेग या हैजे के दिनों में हवा शुद्ध करने के लिये जो गन्धक और कोलतार आप जलाते हैं उनसे कहीं बढ़कर शक्ति गौ के निश्वासमात्र में है, गोवर की तो बात ही क्या कहनी ? जालिम से जालिम जहर भी गोमूत्र और गोवर से नष्ट होजाता है, फिर अशुद्ध हवा साफ होगी इसमें कहना ही क्या ? घर में जहां लड़के खेलते हों वहां एक दो गौएं रखने से लड़कों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, जो नित्य गौ की सेवा करता है और अपने हाथ से गोमूत्र और गोवर उठाता है उसके हाथ को कभी त्वचा का रोग नहीं होसकता, शरीर के जिस जिस अङ्ग को गौ के मल मूत्र का सम्पर्क होता हो वह अङ्ग कभी विकृत नहीं होगा।

भगवान् तीन प्रकार से गोरस सेवन करते हैं एक होम-हवन में अग्नि द्वारा, दूसरे ब्राह्मण मुख से और तीसरे स्वयं गोपालों के घर में जाकर खालेते हैं, आजकल तो तीनों द्वार बन्द होगये हैं, न होम हवन है, न ब्राह्मण भोजन है, न कोई गोपाल है, इसी लिये संसार में कुवृष्टि, अकाल, प्लेग आदि विपत्तियें फैलरही हैं, गौ घास खाकर दूध पैदा करती है, दूध से घी बनता है, ब्राह्मण तृप्त होते हैं, उससे श्रुति का प्रचार होता है, श्रुति से यज्ञ होते हैं, यज्ञ से मेघोत्पत्ति मेघ से वृष्टि और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, गौ की सेवा से इन्द्र तक आपकी सेवा करने को

उद्यत रहता है, "यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः" यह श्रुति इसी अर्थ को प्रतिपादन कररही है, आजकल न कहीं पहले जैसा गो दुग्ध है, न यज्ञ याग है और न वृष्टि है, एकमात्र दुर्भिक्ष, इन दिनों यज्ञ के धुवें की जगह चुरटों का धुवां खूब निकलता रहता है, परन्तु उस धुवें से वृष्टि भी वैसीही बेमौके होती है, मनुष्यों की तरह मेघों के भी कुल होते हैं, वेदोक्त विधि से यथा समय धर्मपत्नी में गर्भाधान करने से प्रशस्त संतति पैदा होती है और विधि विपरीत गर्भाधान से नीच सन्तति होती है, उसी प्रकार वेद मन्त्रों से विधिपूर्वक होम–हवन करनेसे जो धुवां निकलता है उससे कुलीन–प्रशस्त मेघ पैदा होकर यथा समय यथोचित वृष्टि करते हैं और केवल भाड़ के या चुरुट के धुएँ से नीच मेघ पैदा होकर अकालीन या अति वृष्टि से देश का नाश कर डालते हैं, जैसा हवन वैसा फल, जैसा कर्म वैसा भोग, एक समय की बात है कि मैं जयपूर गया था, वहां एक ९०।९५ साल के बूढे ठाकुर मुझसे कहने लगे कि पंडितजी आजकल जो लोग धर्मोन्नति और देशोन्नति के लिये उद्योग करते हैं उनको चाहिये कि वे सब से प्रथम यज्ञ–याग होम हवन ये जो हमारे कर्मकाण्ड के प्रधान अंग इन दिनों लुप्त होगये हैं उनकी ओर विशेष ध्यान दें, क्योंकि इसी के अभाव से अतिवृष्टि अनावृष्टि होती है और जो अन्न पैदा होता है उसमें वीर्य नहीं है, उन्होंने मुझे एक भड़भूँजे की दूकानपर लेजाकर चने भूँजना दिखाया और कहा कि हम जब अपनी जवानी में चने भुंजवाते थे तब वे इतने उछलते थे कि कम से कम एक तिहाई बाहर गिरते थे, परन्तु अब आप देख लीजिये कि बाहर उछलना तो दरकिनार रहा परन्तु खप्पर के किनारे तक भी वे नहीं पहुँच सकते हैं, अब आप बतलाइये कि ऐसा निर्वीर्य अन्न खाकर हमारे में क्या बल आसकता है और हम क्या पुरुषार्थ कर सकते हैं ? प्यारे दोस्तो ! इस सारी अनर्थ परम्परा की जड़ गोरक्षा का अभाव है, इस बात को आप खूब जान लीजिये, भारतवर्ष के प्राचीन अभ्युदय काल में गोधन और अन्नधन इन्हीं को सच्चा धन समझते थे, आपने सुना होगा कि महर्षि याज्ञवल्क्य

जनक महाराज की सभा में जाकर ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करने लगे तब महाराजने प्रसन्न होकर महर्षि को प्रथम एक सहस्र गौएँ दीं, फिर जब प्रसन्न हुए और सहस्र दीं, इस प्रकार कई हजार गौ महर्षि याज्ञवल्क्य को महाराज जनक ने अर्पण कीं, आजकल मैं देखता हूं कि बड़े बड़े साहूकारों और जन्टलमेनों के घर में दस दस पांच पांच घोडे बँधे हुए हैं और घोड़े न हों तो भी २।४ कुत्ते जरूर ही हैं, परन्तु गौ एक भी नहीं है, मुझे एक सेठजी एकदिन अपने घर लेगये थे; और वहां पहुँचते ही आपने अपनी बैठक के चारों ओर बैठे हुए अलग अलग जाति के ४ कुत्ते मुझे दिखाकर कहा कि पण्डितजी ! ये कुत्ते हमने हजार रुपये में चीन और आस्ट्रेलिया से मँगवाये हैं और ये ऐसे हैं वैसे हैं वगैरह, मैंने सेठजी से पूंछा कि आपके यहां घोड़े कितने हैं ! आप बोले चार हैं. फिर मैंने पूँछा गौएँ कितनी हैं ! इसपर नाक भौं सिकोड़ कर कहने लगे पंडितजी हमें गौएँ पालने का शौक नहीं है, कलियुग तेरी बलिहारी है ! हे भारतवर्ष ! जब तेरी सन्तान ऐसी सुपात्र है तब तू गारत क्यों न होजाय ! साक्षात् भगवान् विष्णु मोर मुकुटधारी गौ की सेवा करते थे और आजकल सभ्यताके ठेकेदार महात्मा कुत्तों की सेवा करते हैं और उन्हींका चुम्बन लेते हैं. कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये तीन वैश्यों के कर्म हैं. तीनों में से वाणिज्यका मूल कृषि और गौरक्षा है, इन दोनों में भी फिर कृषि की जड़ गोरक्षा है, जब जड़ही न रही तब 'नष्टे मूले नैव पत्रं न शाखा' कृषि भी गई और वाणिज्य भी जाता रहा, जब वैश्यों की अवनति हुई तब ब्राह्मण क्षत्रिय उससे क्योंकर बच सकते हैं ? बैल के सींगपर पृथ्वी है यह कथन पारमार्थिक तथा लौकिक दोनों दृष्टि से यथार्थ है, संसार का पोषण अन्न से होता है और अन्न के लिये गौ की किस प्रकार जरूरत है सो पहले कहा गया है, वृष्टि होने पर भी बैल यदि न हो तो अन्न नहीं उत्पन्न होसकेगा, इसलिये संसार का आधार बैलही पर है, गौ बैल खेतों में निर्भय होकर घूमें और मलमूत्र करें तो उससे एक प्रकार का क्षार बनता है और उससे अधिक अन्न उत्पन्न होता है. राली ब्रादर्स जो लाखों मन अन्न प्रति-

वर्ष यूरोप को लेजाता है वह गौ के पुत्रही की बदौलत उत्पन्न होता है, उनको कहना चाहिये कि इसे आदमी नहीं उत्पन्न करते किन्तु दो सींग और चार पैर के बैल के परिश्रम का यह फल है, इसलिये उसकी और उसकी माता की रक्षा करने के लिये आप हमारे परमदयालु राजराजेश्वर एडवर्ड महाराज से प्रार्थना कीजिये, जब सारे संसार का आधार गौ पर है तब उसपर विपत्ति आने से संसार क्लेशित क्यों न होगा ।

प्यारे दोस्तो ! आपको यदि इस विषय को हमारे शाहनशाह के पास पहुँचाना है तो मजहबी जोश को छोड़कर बड़ी विनय और नम्रता के साथ, बड़ी प्रीति सौहार्दसे उन लोगों के द्वारा भेजिये जिनका कथन आपके मेरे कथन से विलायत में अधिक माननीय हो परन्तु मेरी आपसे विनय है कि जब आप स्वयं अपने कर्त्तव्य पालन में दक्ष नहीं हैं तब औरों को क्या कह सकते हैं ? जब आप स्वयं गो पालन नहीं करते हैं जिसके लिये आपको कोई प्रतिबन्ध नहीं है तब दूसरों को उपदेश करने का आपको क्या अधिकार है इसलिये आप लोगों को चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य यथा-शक्ति गो पालन करके यथेष्ट दूध दही स्वयं खाकर तथा औरों को खिला-कर तुष्ट पुष्ट होजाय और शान्ति—धैर्य—तथा सत्वगुण की वृद्धि करें, शाहनशाह अकबर के समय में रहीम खानखाना, अब्दुलफजल, फैजी वगैरह जो कितनेही ज्ञानी और सत्यप्रिय पुरुष होगये उन्होंने यथेष्ट दुग्ध-पान करके शाहनशाह से गोहत्या बन्द करवाई गोरस में ऐसीही अपूर्व महिमा है अब भी बहुत से अंग्रेज गो दुग्ध से पुष्ट होकर हिन्दू धर्मकी प्रशंसा करने लगे हैं, सज्जनो ! यदि आप एक वार गो सेवा का आनन्द अनुभव करें तो त्रिलोकी का सुख आपको तुच्छ मालूम होने लगेगा, आपकी तो कथा ही क्या ? श्रीकृष्णचन्द्र जब गोपाल बनकर ब्रज में गो सेवा करते थे तब उसे देखने के लिये शिवजी कैलाश छोड़ कर चले आये, बूढा ब्रह्मा अपना ब्रह्मलोक छोड़कर चला आया और गौएँ चुरा कर लेजाने लगा, परन्तु वहां क्या कमी थी ? जितनी ही गौएँ लेजाता था उतनीही फिर आजाती थीं पारमार्थिक दृष्टि से श्रुतिरूपा गौ अनन्त हैं,

अखण्ड हैं, उनकी कदापि त्रुटि नहीं होसकती, जिस गौ के लिये अचल ब्रह्म चल होगया उसकी सेवा में आपको आनन्द आजाय इसमें आश्चर्य नहीं है, केवल एकवार उसका रसास्वाद मिलना चाहिंये, गोकुल में नन्द के आंगन में भगवान् को गौओं के वीच में नृत्य करते देख गोपियां एक दूसरे से कहने लगीं "शृणु सखि कौतुकमेकं यन्नन्दनिकेतनांगणे दृष्टम् गोधूलिधूसरांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः" इसका आध्यात्मिक अर्थ करने लगें तो सत्वगुणी इन्द्रियें ही गौएं हैं, देखनेवाली दो सत्वगुणी वृत्तियां हैं इत्यादि होगा, इस वार व्याख्यान को समाप्त करने के पूर्व मैं आपसे एक दक्षिणा मांगता हूँ और वह यह है कि जो वातें मैंने आज के व्याख्यान में कही हैं उनको अच्छी तरह ध्यान में रखकर उनके अनुसार यथा शक्ति गो पालन करके भारतवर्ष में दूध दही—माखन की समृद्धि कर दीजिये, पिछले साल जब मैं हैदरावाद गया था वहां कोई २५। ३० व्याख्यान लगातार दिये थे उनमें कितने ही व्याख्यान केवल मुसलमानों की सभाओं में हुए थे, उनसे विदा होते समय मैंने यही दक्षिणा मांगी थी कि यहां एक गोशाला वन जाय. उन लोगों ने मेरे कथन का आदर करके एक पिंजरा-पोल खोला है और उसमें वहुत से मुसल्मानों ने चन्दा दिया है और अपने खर्च से गोशाला के भीतर कुवें वनवा दिये हैं उसके वाद वैसीही दक्षिणा मुझे अमृतसर के लोगों ने दी है और वैसीही मैं आपसे भी मांगता हूँ और आशा करता हूँ कि आप उसको प्रसन्नता से देंगे कलकत्ते में अभी थोडेही दिन हुए गो सेवक स्वामी हासानन्द ने सन्तत परिश्रम करके एक वड़ी भारी गोशाला खोली है और वह दिनों दिन उन्नति कर रही है, यह आनन्द की वार्त्ता आपको सुनाकर मैं अपना आसन ग्रहण करता हूँ।

वम्बई २। १०। १९०४

श्रीमान् पं० दीनदयालु जी महोदय का.
वैश्य धर्म-
पर व्याख्यान.

वर्त्तमान समय में जहां तहां कहा जाता है कि भारतवर्ष की अवनति ब्राह्मणों के कारण हुई है, ब्राह्मणों ने देश का सत्यानाश कर डाला, यदि हम इस कथन को मान भी लें तौ भी इस विषय में केवल ब्राह्मणही दोषीन ठहरेंगे इसका दोष चारों वर्णों पर आवेगा, ब्राह्मणों ने पढ़ने पढ़ाने के सिवाय किसी काम में अपना हाथ नहीं रक्खा, संसार के उपकार का बोझा अपने ऊपर रखकर-अपना पेटतक दूसरों के हाथ रक्खा, फिर यदि उनका यथोचित सम्मान न होने से अथवा विद्वानों का निरादर होने और मूर्खों के पूजने से ब्राह्मणजाति कर्तव्य विमुख होकर देश की अधो गति का कारण हुई तो इसका दोष ब्राह्मणों पर नहीं किन्तु क्षत्रिय और वैश्यों परही है, देश की अधोगति विशेषकर वैश्यों के कारण से हुई है, वैश्य चातुर्वर्ण्य समाज के स्तम्भ रूप हैं, जब स्तम्भ ही अस्तव्यस्त हुवा तब समस्त अङ्ग बेकाम क्यों न होंगे? संसार का व्यापार और संसार परिचालन वैश्यों के हाथ है, ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व, क्षत्रियों के वीरत्व और राजा के कोष तथा शूद्रों के दास्य की कुंजी वैश्यों के हाथ व उनकी वही में है, वह अच्छे रहेंगे तो ही देश अच्छा रहेगा, उनके अधःपात के साथ देश का अधःपात अवश्यम्भावी है ॥

वैश्य के नाम के साथ "गुप्त" इसीलिये रक्खा जाता है कि देशस्थिति का मुख्य साधन जो व्यापार उसके रहस्यों को वह गुप्त रक्खें, परन्तु आज कल वैश्यजाति ईर्षा द्वेष में ऐसी निमग्न होरही है कि गुप्तपन उनके कार्य में नहीं केवल नाम में रहगया है, देखा जाता है, कि विलायत और अमेरिका के व्यवसाई आपस में मिलकर जिस बात का सिद्धान्त

करलेते हैं वह कभी दूसरोंपर प्रगट नहीं होने देते, परन्तु फूट के प्रसाद से भारत की वैश्य जाति ऐसी कर्तव्य शून्य होगई है, कि यदि चार वैश्य मिलकर कोई सिद्धान्त करना चाहैं (पहिले तो कठिनही है) तो उनसे उसका गुप्त रक्खाजाना कठिन होगा एक वैश्य को बढतेहुए देख दूसरा उसका-भण्डाफोड़ करने को उतारू होता है और उसका लाभ विदेशी कम्पनियों के हाथ में जाकर देश के वैश्य दिवालिये बनजाते हैं, वैश्य जाति कभी लक्ष्मी की कृपापात्र थी परन्तु अब वह बात नहीं रही, लक्ष्मी ने वैश्यों को धर्महीन, कर्तव्य विमुख देख पश्चिम की ओर प्रयाण किया, यह सिद्धान्त है कि जिस देश में या समाज में चार करोडपति हैं उस देश या समाज का भार उन करोडपतियोंपर आपडता है, परन्तु आजकल समाज की कौन कहे, पडोस में पडोसी भूखों मरता रहता है और सेठजी के यहां गुलछर्रे उड़ा करते हैं, ऐसे करोड़पति को धिक्कार है जिसके धन से अनाथ और विद्वानों का उपकार न होसके, आजकल वैश्यों के दरवाजे पर चारों वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता पण्डित आवे और भूँख की असह्य वेदना के वश कुछ याचना करे तो सेठ जी उसे दुरदुरा देंगे और कहेंगे तुम हमारे सम्प्रदायके नहीं हो, हमारे गुरु घराने के नहीं हो, इसलिये तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, परन्तु अपने सम्प्रदाय वाले सण्ड मुसण्ड को सैकड़ों रुपये देंगे जिसका परिणाम यह होरहा है, कि स्वर्गीय भारतमार्तण्ड पंडित गट्टूलालजीसे विद्वानों का अभाव होरहा है और अविद्वान् ब्राह्मण बढ़ रहे हैं, जब वैश्यजाति से उनका सब मनोरथ सिद्ध होता है तब वह विद्या क्यों पढ़ने लगें ! यही कारण है कि ब्राह्मण बिगड़ चले और उनके साथही वैश्य जाति का भी अधःपतन होने लगा, अब जो कुछ शेष है उसकी रक्षा करके अपनी उन्नति करनी चाहिये, विद्वानों का आदर करो, और अविद्वान् ब्राह्मणों को विद्या में लगाओ जिससे तुम्हारा कल्याण हो और देशका सुधार हो ॥

कहने में लज्जा आती है परन्तु सङ्कोच छोड़कर कहदेना चाहिये कि आजकल वैश्य थान के थान कपड़े नाप डालते हैं तथा उलट पलट करते

हैं, सैकड़ों मनके गट्ठर उठाते रहते हैं मनों अनाज तौले डालते हैं, तव तो उन्हें वोझा नहीं मालूम होता, परन्तु धेलेभर सूत (यज्ञोपवीत) का वोझा उनसे नहीं सम्हाला जाता, वहुत हुआ तो लडके वाले होजाने पर पंडित जी से यज्ञोपवीत लेने की प्रार्थना करते हैं, पण्डित जी भी कुछ प्राप्ति हो जाने के लालच से जनेऊ पहना देते हैं, किन्तु क्या इसे संस्कार कह सकते हैं। जव ८ वर्ष में ब्राह्मण ११ में क्षत्री और १२ वर्ष में वैश्य कुमार का उपवीत संस्कार करने की शास्त्रों की आज्ञा है तव वह एक तमाशा मात्र समझा जायगा, सच वात तो यह है कि १६ संस्कारों में अव वैश्यजाति में कोई भी अपने असली रूप में नहीं होते, केवल गोदान और कन्यादान शेष रहे हैं सो गोदान में अपात्र और कन्यादानके उत्सव में रण्डियों का घर भरता है, संस्कार हीन होने से वैश्य व्रात्य होरहे हैं और श्राद्ध तर्पण आदि करने पर भी पितरों की तृप्ति नहीं होती है वैश्यजाति को ब्राह्मण कर्म छोडकर सव वैदिक कार्य करने का अधिकार है, अतएव वह वेद पढें, धन लगाकर अपने गुरु ब्राह्मणों को विद्वान् वनावें, १६ संस्कार करें, सन्ध्या गायत्री का अर्चन करें, पञ्चयज्ञ करें और यथार्थ वैश्य वनकर अपने असली प्रभाव को प्राप्त करें, तव अवश्य ही वे अपनी उन्नति के सिवाय देश की उन्नति भी करसकेंगे, यदि ऐसा नहीं करेंगे तो संस्कार हीन होने से उनमें वैश्यत्व का नाम भी नहीं रहेगा ॥

वैश्य का सवसे प्रधान धर्म सत्य वोलना है, सत्य को लेकरही वैश्यत्व है परन्तु आज कल वैश्य जाति सत्य से वहुतही पराङ्मुख होती जाती है, इन दिनों जिस तरह ब्राह्मण का धर्म भिक्षा मांगनाही वाकी रहा है उसी तरह व्यापार में झूँठा व्यवहार करना और वहीमें झूँठ लिखनाही वहुतेरे वैश्योंने अपना धर्म और अपने व्यापारकी उन्नति का सरल उपाय समझ रक्खाहै, वड़े खेद की वात है कि वैश्य जिस हाथ से दिनरात सोना, चांदी और जवाहि-रात तोलते हैं उसी हाथ से सत्यता के साथ धर्म को नहीं तोलते, धर्मका ख्याल न रहने से ही वालक विवाह, वृद्ध विवाह जैसी कुरीतियें वैश्यों में चलपड़ी हैं, वेदाध्ययन के वदले उन्होंने वेश्यागमन, में प्रीति वढाई

है, ब्राह्मण से धर्मतत्व सीखने के बदले पानी भराना और लड़का खिलाना आरम्भ करवाया है, परन्तु भाई तुम्हारी शोभा जब तुम उनसे धर्मामृत भरवाकर पियो. खरे खोटे की पहचान करके शुद्ध ब्राह्मणों की वृद्धि करो; जाति की उन्नति के लिये भाषा, वेश और भाव ये प्रधान हैं, इसलिये अपने देश का वेष बनाये रक्खो, परदेशी देश से लंगूर न बनो, नहीं तो न इधर के रहोगे न उधर के, क्योंकि समाज से स्वयं घृणा करके अलग होजाओगे और जिनकी नकल करते हो उनके यहां से भी दुरदुराये जाओगे. मातृ भाषा का समाज और कुटुम्ब में सदा व्यवहार करो! हां विदेशियों के साथ अथवा आवश्यकता पड़ने पर भलेही विदेशी भाषा का उपयोग किया जाय, किन्तु विदेशी झोंक में आकर अपने कुटुम्ब और माता पिता के साथ अयोग्य वर्ताव नहीं करना चाहिये, आजकल के सुपूत साहबी झोंक में आकर अपनी प्राचीन रीति के वस्त्रभूषण से भूषित माता पिता को देखकर बहुत शरमाते हैं, और उनका तिरस्कार करने लगते हैं, अपना भाव बदलने से जाति की विशेषता जाती रहती है, इसलिये अपना जातीय गुण और भाव स्थिर रक्खो जननी, जन्म भूमि, जाति, जाह्नवी. और जनार्दन पर प्रीति रक्खो जिससे तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि व्याख्यान का मूल यदि यहां के वैश्य समझेंगे तो अपनाही नहीं किन्तु देश का बहुत कुछ कल्याण साधन कर सकेंगे इस गई वीती दशा में भी बम्बई की वैश्य जाति धनवान् है इसलिये यदि वह चाहें तो अपने धनका सदुपयोग करके अपने गुरु ब्राह्मणों में विद्या प्रचार के लिये और धर्म साधन के लिये इस समय कुछ स्थाई प्रबन्ध कर सकते हैं॥

बम्बई १२। ८। १९०४ ई०

वर्ण व्यवस्था।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥

पूर्व पक्ष।

अन्य देश वासियों की दृष्टि में हमारे सब पदार्थ निषिद्ध हैं, ऐसा दर्शाने में उन्होंने कोई त्रुटि नहीं रक्खी, उनके अनुयायियों और अनुचरों की दृष्टि में भी ऐसाही समाया है, जो हमारे ही देशी भाई हैं, इन महात्माओं ने जहांतक (मूर्खता) के शब्द को दृढता से पकड़ लिया है, अब उनको हमारी सब बातों में, सब कामों में और सब रीति नीति में जहालत घुसी हुई दृष्टि पड़ती है, यह लोग अपने व्याख्यानों में अपने लेख में यही प्रकट करते हैं कि हिन्दुओं की सब बातें मूर्खता की हैं। इसी प्रकार वह वर्ण भेद कोभी मूर्खता का केन्द्र कथन करते हैं, इन नव शिक्षित महाशयों का और उनके म्लेच्छ यवन अध्यापक लोगों का कथन है कि सब ईश्वर की सृष्टी है, इनमें वर्ण भेद कैसा ? ब्राह्मण क्षत्रिय क्या ? वैश्य शूद्र क्या ? कायस्थ क्षत्रिय क्या ? डोम चमार क्या ? यह वाहियात भेद क्या है ? यह उच्च और नीच क्या ? ब्राह्मण चांडाल के स्पर्श से क्यों नाक भौं चढ़ाता है और यदि ब्राह्मण किसी चाण्डाल से छू जाता है, तो वह स्नान क्यों करता है ? इन कल्पित उच्च नीच जातियों का खान पान एक क्यों नहीं होता ? जिसने चाण्डाल को सृजा है, उसीने ब्राह्मण को भी उत्पन्न किया है, जब कि सब एक पिता की सन्तान हैं तो भाई भाई में भेद क्यों ?

ऐ ब्राह्मण भू देवो ! समय बड़ा टेढ़ा आया है ? अब हृदय की गांठ खोल डालो, चिरकाल की सञ्चित मूर्खता का भण्डार फूँक दो ? कुलाभिमान को शनैः शनैः कम करो ? अब अपने को उच्चतर मत मानो ! समझलो तुम्हारे बूढे बड़े शास्त्र के बनाने वाले थे औरों के लिखने पढने मार्ग को रोके हुए थे वह लोग जो कहते वही शास्त्र था ? कोई उनसे इनकार नहीं

करसकता था, उन्होंने अपनी लेखनी से अपनी बड़ाई आप लिखी है, उसीके अनुसार अद्यावधि काम चला आता था परन्तु अब न चलेगा ? अब वह समय नहीं है अब सब लिखना पढना सीखते हैं, बहुत से सीख गए हैं और बहुत से पण्डित और विद्वान् भी हो गए हैं। अब टुक मानसिक विचारों को पलट डालो और ऐ शूद्र साहिबो ! अब तुम्हारा नीच दशा में निर्वाह करने का अवसर नहीं है और न कोई कारण है कि तुम अपने को सेवक मानो और ब्राह्मणों को देखतेही प्रणाम करो, क्यों क्या इससे कुछ लाभ है, जिसकी न प्रतिष्ठा है और न श्रेष्ठता वह तृण से भी हलका है, उसकी उन्नति किसी प्रकार नहीं होसकती, इसीसे अपनी प्रतिष्ठा का विचार करो और उच्च बनो और हे नीच जातियो ! ब्राह्मणोंने तुम्हारा बड़ा सत्यानाश किया है तुमको इस अधोगति को पहुँचाया, उन्होंने तुमको शिक्षाध्ययन मात्र से वहिष्कृत किया वह तुम्हारे पूर्ण शत्रु हैं; फिर तुम उनको क्यों प्रणाम करते हो ? तुम्हारे पिता पितामहाओं को इन ब्राह्मणों ने विजय करके दास बनाया, पहिले वह बहुत थे परन्तु अन्त में ब्राह्मणों के अन्यायाचरण से मर खप गए, इससे इन अन्यायी ब्राह्मणों को प्रणाम मत करो ? मूर्खता के कारण प्रथम तुम इनकी बातों को नहीं समझते थे, परन्तु अब वह समय नहीं है शिक्षा तुम्हारे लिए विद्यमान है, नेत्र खोलो और देखो कि तुममें और ब्राह्मणों में क्या अन्तर है ? जो दो हाथ और दो पैर उनके हैं, वही तुम्हारे हैं, जो दो नेत्र और दो कर्ण उनके हैं सोही तुम्हारे भी हैं, फिर क्या तुमसे अधिक उनके सिर पर सींग हैं जिससे वह तुम से श्रेष्ठ बनते हैं ? नहीं वह कुछ भी श्रेष्ठ नहीं हैं। यदि तुम बराबरी का विचार करो तो बराबर ही हो। इसके लिए न तो सेना की आवश्यकता है न युद्ध और न लड़ाई की, ऐक्यता करो ! एक हो जाओ !! जातिभेद को दूर करो !!! तो तुम आजही ब्राह्मणों की समान होसकते हो ?

ऐ क्षत्रिय शूर वीरो ! तुम्हारे पुरुषाओं ने ब्राह्मणों के समान होनेके लिए बहुत युद्ध किया है ब्राह्मणों की चातुर्य्यता से कृतार्थ न होसके

परन्तु अब कृतार्थ होना सहज है तुम ब्राह्मणों के समान होसक्ते हो, इसके लिए तुमको अपने से कम वैश्य शूद्रादि के समान भी होना पड़ेगा। और हे वैश्य धन पात्रीगण! धनके पति तो तुम हो, ब्राह्मण तो तुम्हारे याचक हैं और क्षत्रियों को भी तुम्हारा आश्रय है फिर तुम उसके अधःकोटि में क्यों हो? वैश्यों का उपकार करो पढो, लिखो, पण्डित बनो और स्मरण रक्खो, यदि ईश्वर को उच्च नीच बनाना स्वीकृत होता तो तुमहीं सबसे उच्च बनते, और हे भारतवासी चाण्डाल साहबो! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से बचकर क्यों निकलते हो तुम अपराधी नहीं हो, खूनी नहीं हो! आओ भाई! तुम हम सब ब्राह्मण क्षत्रिय सब समान हैं ऐसे नीचे मत रहो।

उत्तर पक्ष।

शोक! शोक!! महाशोक!!!

हिन्दु धर्म का नाश? इस मूर्खता पर!! कैसे हिन्दू संकुचित चित्त हैं सब भाइयों का ऐक्य और जाति अभेद इनको स्वीकार नहीं इससे अधिक हृदय विदारक और क्या बात होसकती है?

यह हमारे सुसभ्य नवीन रोशनी वाले भाइयों, जेन्टिलमेन बाबुओं, चन्दा मांगकर आश्रम बनाने वाले सपत्नीक संन्यासियों और अपने कन्धे पर रिफार्मेरी का जुआ रखने वाले देशहितैषियों के विचार हैं। विचार उनके कल्पित हैं अथवा यथार्थ यह हम नहीं कह सकते परन्तु यह अवश्य है कि यह बाबू लोग अपने नौकरों पर अवश्य क्रोध करते हैं उनको वैसे कपड़े नहीं देते हैं, जैसे आप पहिनते हैं और न मैले कपड़े वाले नौकर को साथ खिलाते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आप सभी मिल गिद्धों-वाली दावत का मज़ा अवश्य उड़ाते हैं, इनका जाति विचार खाने तक समाप्त है शेष अपने धन का तुल्य भाग यह किसी से नहीं करते हैं अस्तु, इस समय इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, विचार है दूसरी बात पर क्या यह विचार सत्य है? और सच मुच ईश्वर को

जाति भेद अथवा वर्णभेद स्वीकृत है वा पुरुष का बनाया है, परन्तु बात इस प्रकार की नहीं है, वर्णभेद कल्पित नहीं है वरञ्च यह वेद शास्त्र विहित है, और साइन्स से भी यह सिद्ध होता है कि वर्ण भेद प्राकृतिक है, इस समय इस बात का विचार वृथा है कि सृष्टि का कर्ता ईश्वर है अथवा ब्रह्मा, प्रकृति इसे बनाती है अथवा स्वयं बनजाती है, बाबू साहबों और साइन्स के चेलों के बड़े गुरु मिष्टर डारविन से लेकर बड़े बड़े साइन्सवादी और हिन्दुओं के पण्डित सबका कथन है कि पुरुष से पहिले कीटादि जन्तु उत्पन्न हुए और इनसे भी पूर्व वृक्ष बने थे, यथा विष्णुपुराण में लिखा है किः—

पञ्चधावस्थितेः सर्गं ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृत्तात्मा नगात्मकः ॥ १ ॥
मुख्यानगायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततः स्वयम् ॥
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरम्पुनः ॥ २ ॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोताभ्यवर्तत ॥
यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तःसातिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः ॥३॥
पश्वादयोत्रविख्याता स्तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ ४ ॥
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकः ॥
अन्तप्रकाशास्तेसर्वे, आवृताश्च परस्परम् ॥ ५ ॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्धमवर्तत ॥ ६ ॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरंतस्त्वनावृताः ॥
प्रकाशाबहिरंतश्च ह्यूर्द्धस्रोतोभवाः स्मृताः ॥ ७ ॥

तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥
यस्मिन्सर्गेभवप्रीतिर्निष्पन्नं ब्रह्मणस्तथा ॥ ८ ॥
ततोऽन्यं स तदादध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥
असाधकांस्तुताञ्ज्ञात्वामुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ॥
प्रादुर्बभूववाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥
यस्मादर्वाक्प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ॥
तेच प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥
तस्मात् ते दुःखबहुला भूयो भूयश्चकारिणः ॥
प्रकाशाबहिरन्तश्च मनुष्या साधकाश्च ते ॥

विष्णुपुराण प्रथम अंश अ० ९ श्लोक ६ से १७ तक

इसका भाषार्थ यह है कि ब्रह्माने सृष्टि को उत्पन्न करने के लिये विचार किया. तब वृक्ष उत्पन्न हुए । इन वृक्षों में पांचों प्रकार क वृक्ष झाड़ी बेलादि सब आ चुके । यह सब विद्या हीन थे अन्दर बाहिर से सर्वथा अज्ञानी, बेसुध । ब्रह्मा की यह पहली उत्पन्न की हुई वस्तु प्रथम सृष्टि के नाम से प्रसिद्ध हुई, ब्रह्माजी ने इससे अपना मनोरथ सिद्ध होते न देखकर और सृष्टि हुई । कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, सब इसके अन्तर्गत हैं, यह सृष्टि तमप्रधान थी और सत्य के ज्ञान से शून्य कुपथगामी और मूर्खता की बुद्धिमत्ता समझनेवाली, इनको सुख दुःख का बोध होने पर भी यह मूर्ख थे, अर्थात् यद्यपि इनको सुख और दुःख का ज्ञान था परन्तु जान बूझ कर दुःख में फँस जाते थे। दान के लिए जल का विचार न करते थे, इसलिए इससे भी ब्रह्माजी को सन्तोष न हुआ, और दूसरी सृष्टिका विचार किया अर्थात् सत्व प्रधान देवतालोग उत्पन्न हुए । यह लोग अन्दर बाहिर के जानने वाले, और सुख स्नेह प्राप्त करनेवाले और सब स्थानों में

प्रकट होते हुए इनसे ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए फिर मनुष्यों की रचना की यह सत्व, रज,तम, प्रधान दुःख से मिले हुए और अन्दर बाहिर के अच्छी प्रकार जाननेवाले थे। इन लोगों को कर्म अधिकारी और ज्ञान अधिकारी देखकर ब्रह्मा बहुतही प्रसन्न हुआ।और समझा कि यही प्रयोजनकी वस्तु है।

प्रकृति नियम बड़ेही अद्भुत और विचित्र हैं, इसी से सृष्टि और ईश्वर का कौशल प्रतीत होता है कोई वस्तु सृष्टि ऐसी नहीं है कि जिसमें वर्ण भेद और जाति भेद न हो जिस समय जगत् में मनुष्य का नाममात्र भी न था और हमारे सुसभ्य बाबू लोग जिस मनुष्य समुदाय को "सब समान है" कहकर पुकारते हैं भविष्यत्काल के उदर में था उस समय भी जाति भेद और वर्ण भेद विद्यमान था, यह सृष्टिकर्ता अपने मानसिक विचार को नहीं जानते थे क्या वह सर्व गुण-सम्पन्न और सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ जगदीश्वर यह नहीं समझता था कि उसकी अभिलाषा क्योंकर पूरी होसक्ती है अथवा प्रकृति में यह शक्ति न थी कि केवल वृक्षों को ही उत्पन्न करती। मनुष्य और जीवों को उत्पन्न न करती। बात यह कि जगदुत्पत्ति का कारण न कोई जानता है और न किसी में जानने की शक्ति थी, पहले पांच तत्त्व [पदार्थ] थे पीछे पशु हुए, फिर देवता हुए यदि आप देवताओं की शक्ति के भी मानने वाले नहीं हैं तो मनुष्य हुए मनुष्य सब से श्रेष्ठ और वही सब से पीछे हुआ है, अब सृष्टि को चाहे ब्रह्मा ने उत्पन्न किया, चाहे प्रकृति ने, परन्तु यह बात स्पष्ट है कि रचने वाले ने भांति २ की सृष्टि उत्पन्न की, यही तो एक अद्भुत बात है यह भेद ही तो विस्मय जनक है, अब तुम प्रकृति की विचित्र और अद्भुत शक्ति पर विचार करो, देखो सब से प्रथम पांच तत्त्व जो निर्जीव थे उत्पन्न हुए जिनके नाम अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश हैं, अब यदि आप आकाश-तत्त्व को भी न मानें, तो चार पदार्थ अथवा तत्त्व वायु, तेज जल और पृथिवी को तो अवश्य मानेंगे।

इनसे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण प्रकट हुए। और यह विभाग उस समय भी था, जब कि महात्मा मनुष्य संसार में नहीं

पधारे थे; वायु के गुण देखो, शान्त है, कोमल है और वेगवान है तथा बलिष्ठ है, निर्मल है, शुद्ध सर्वोपकारी है, इस की पवित्रता, कोमलता और वेग को देखकर निःसन्देह ब्राह्मण कहने को चित्त चाहता है देखो वायु सब के साथ है परन्तु सब से पृथक् भी है दूसरों को लाभ पहुंचाता है अपने लाभ से इसे कुछ प्रयोजन नहीं यही ब्राह्मणों के गुण हैं।

अग्नि तेजवान है और तीक्ष्ण है इसमें क्षत्रियत्व टपकता है जलते हुए अङ्गार की प्रचण्ड ज्वाला को देखकर कौन कहता है कि वीर क्षत्रियों को इस की उपमा न दीजावे, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अग्नि के और क्षत्रियके एक गुण हैं, वह सदैव उद्योग करती है और यह भी गुण क्षत्रियों का है। इसी प्रकार जल के गुण वैश्य के से हैं, वह खेतों को जल प्रदान करता है, खेतों की उन्नति का कारण है, अधूरे को पूर्ण करना जलही का गुण है, सदा शीतल है, सर्व प्रिय है, आहा! वैश्य के जल से क्या अच्छे गुण की समानता है, अब रही पृथिवी सो वायु, अग्नि, जल, सबको पृथिवी से सहायता मिलती है, चलने का स्थान पृथिवी के बिना और कोई नहीं आदि पुरुष के दोनों चरणों से पृथ्वी बनी है, जैसा कि श्रुति कहती है।

॥ पद्भ्यांभूमिः ॥

और तीनों वर्णों के सेवक चरण हैं, भगवान् के चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति है, इसी से पृथिवी की उपमा शूद्रों से होसकती है और वास्तव में सत्य भी यही है, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के गुणों की समानता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से दिखाई गई है, जबकि पांच तत्त्वों के कथन में आकाश की भी गणना है, इस लिए आकाश की समानता तपस्वी ब्राह्मण की भव्य और पवित्र मूर्ति से देते हैं, चाहे आधुनिक सुसभ्य बाबू मानें, अथवा न मानें, क्योंकि यही वर्णभेद के मूल हैं।

पाठक वृन्द! आप नेत्र खोल कर समस्त ब्रह्माण्ड की ओर देखिए, उसमें किस प्रकार वर्ण भेद और जाति भेद प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है,

ईश्वर ने पञ्चभूत के अनन्तर वृक्ष फल आदि उत्पन्न किये । इनमें वर्ण भेद विद्यमान है । यज्ञ की पवित्र कुशा ब्राह्मण रूप है, ऊँचे ताल खजूर आदि उच्च तन क्षत्रिय हैं, नीम गूलर आदि वैश्य हैं, बबूल जन्टादि दृढ और कुरूप वृक्ष शूद्र हैं । गूढ विचार से देखो कि इसी प्रकार इनका वर्ताव संसार में होता है या नहीं । यही भेद पांचों प्रकार के छोटे बड़े वृक्षों में जारी हैं, इसी प्रकार पशुओं में भी यही भेद विद्यमान हैं । देखिये शास्त्र का यह वाक्य क्या कहता है:—

ब्राह्मणश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठंति हविरन्यत्रतिष्ठति ॥

ब्राह्मण और गौ वास्तव में एकही हैं केवल इनके दो भेद हैं, एक तो यज्ञ करने वाला मन्त्र है और दूसरा यज्ञ करने वाली सामग्री है । अर्थात् ब्राह्मण मंत्र पढ़ता है और गौ से घृत दुग्धादि होम की सामग्रियें उत्पन्न होती हैं, महाभारत में भी जहां च्यवन ऋषि की कथा है, वहां लिखा है कि गौ और ब्राह्मण का एक मूल्य है, अर्थात् अमूल्य पदार्थ हैं इसी से पशुओं में गौ ब्राह्मण है, सिंह क्षत्रिय है, महिष बकरी आदि वैश्य और ऊँट अश्वादि भारवाही जीव शूद्र हैं । पवित्र यज्ञ का कार्य पूरा करने वाली गौ ब्राह्मण हो सकती है या नहीं ? बलवान् सिंह को क्या क्षत्रिय नहीं कह सकते ? सब को लाभ देनेवाली भैंस और बकरी क्या वैश्य केसे गुण नहीं रखतीं ? इसी प्रकार भारवाही ऊंट घोडे आदि भी शूद्र हैं ॥

नवशिक्षित क्षत्रिय महाशय उत्तर दें, कि सिंहकी समानता क्षत्रिय में ठीक नहीं है । कहिए यह "सिंह" शब्द जो आपके नाम के साथ होता है, यह सिंह का पशुओं में क्षत्रिय होना प्रकट करता है या नहीं ?

पाठक महोदय ! आपने देखा पञ्चभूतों में चार वर्ण विद्यमान हैं । फिर वनस्पति में चार वर्ण हैं, सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सिंह, हस्ती, वृषभ, भैंसा, गैंडा, वड, पीपल, खजूर, सर्प, छछूंदर और कपि (बन्दर) सब अपना वर्ण भिन्न २ प्रकट कररहे हैं । अब हे नवशिक्षित

प्रतिष्ठाई महाशयो ! और हे अन्य देशवासी महोदयो ! वताओ यह भेद किसने किया है ? किस की मूर्खता है, यह किस प्रकार भेद हुआ है ?

विचारे पशु और वृक्ष तो यह न समझते थे, कि अपनी पृथक् २ समाज और पृथक् २ आश्रम करलो। लंगूर का मुख काला और पूँछ लम्बी कर देते, सिंह के नख तीक्ष्ण फाडनेवाले और हस्ति की नाक पृथ्वी तक लम्बी लटका देते, अवश्य यह ईश्वर ही ने अथवा प्रकृति ही ने किया है। हम ईश्वरकी शक्ति में दखल नहीं देसकते और नहीं कहसकते कि क्यों नहीं उसने सब जीवों को एकही रूप का बनाया। परन्तु ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्यमेव ईश्वर को वर्ण भेद स्वीकृत है।

आप लोग तो शास्त्र पढे ही नहीं और यदि पढे हों तो उसे मानते नहीं, इसलिए आपको शास्त्रों की दोहाई देना वृथा है। परन्तु आइए. पधारिए ! युक्तिवल से दो २ बातें करें और उनको प्राचीन शास्त्रों से मिलाते जाओ, कि वर्ण भेद और जाति भेद ठीक है या नहीं।वह न्याय से भरपूर है अथवा ब्राह्मणों की स्वार्थता है। देखो वृक्षों के कई प्रकार के भेद हैं। और उनके आहारों से प्रतीत होते हैं। परन्तु क्या वाह्याकार से ही भेद प्रकट होसकता है ? किसी और प्रकार नहीं ? अवश्य होसकता है, इसीलिए तो ईश्वर वनस्पति और पशुओं को वनाकर सन्तुष्ट न हुआ। एक भेद और है उसका नाम अतिरिक्त भेद है। जब ईश्वर ने देखा कि और सृष्टि में यह गुण नहीं है तो उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया, इसका भेद बड़ा विचित्र और अद्भुत है। और सृष्टि में विस्मय जनक है। देवताओं के अनन्तर भी मनुष्य के उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई। यही मनुष्य का गौरव है। इसमें तीन गुण से भरेहुए मनुष्य को अर्थ, काम, और मोक्ष होता है। यह वात देवताओं को भी अप्राप्य है। देवताओं को सुख और आनन्द प्राप्त है मनुष्य उद्योग करके देवताओं के समान प्रत्युत उनसे उच्चतर हो सकता है, परन्तु देवता उद्योग करके मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं होसकता। मनुष्य जो अक्षय पद प्राप्त कर सकता है, उससे कोई बढकर पद नहीं। मनुष्य के समान पद

प्राप्ति के लिए देवता को चिरकालकी आवश्यकता है । इससे मनुष्य की श्रेष्ठता है । जिस आन्तरिक परिवर्तन अथवा आन्तरिक चिह्न का हमने ऊपर नाम लिया था उसके अनुसार मनुष्य ही बनाता है । पांचों तत्त्वों में वह बात नहीं है, वृक्षों में भी न होने के समानही है। पशुओं की अवस्था इनसे कुछ श्रेष्ठ है, क्योंकि इन सब का भेद बाह्य लक्षणों से नहीं है, और यदि कुछ है तो गणना में नहीं, मनुष्यों का वर्णभेद नितान्त आन्तरिक है, इससे भी सृष्टिकर्ता के अद्भुत कौशल का परिचय पाया जाता है। किसी गूढ़ विचार से जीव जड़ सब का भेद परमात्मा ने किया है, परन्तु कहीं आकार में कहीं शरीरान्तर्गत, अन्तिम स्थानही भेदको पूर्ण करता है, यह आन्तरिक चिह्न भी बाह्य चिह्नों की भांति कुल में परम्परा चलेआते हैं अर्थात् जिस प्रकार अन्य जीवोंका बाह्य चिह्न कुलपरम्परा से चला आता है, इसीप्रकार मनुष्यका भी आंतरिक चिह्न कुलपरम्परा से है। सिंह का युवा बच्चा भूँखा प्यासा दुर्बल रोग ग्रस्त होने से भी सिंह का ही पुत्र है, और लोगों को उस आकार मात्रसे ही भय होता है, परन्तु गर्दभ यदि सिंह का मृगान भी ओढकर निकले तो वह गर्दभही रहता है । हस्तीका बच्चा कैसा ही स्थूलाकार और बलवान भी हो सिंहके निर्बल शावक (बच्चे) का सामना कदापि नहीं कर सकता, गौ कैसी निर्बल और बलहीन हो खरी से उसकी अधिक प्रतिष्ठा है ।

कःपरित्यज्यदुष्टांगां दुहेच्छीलवतींखरीम् ।

अर्थात् दुष्टा गौ को त्यागकर कोई सुशीला खरी को न दुहेगा, आन्तरिक चिह्नों से सम्बन्ध होने पर भी पशुओं का जाति भेद बाह्य के चिह्नों से लिया जाता है, उनके आन्तरिक चिह्नों में अन्तर होनेपरभी बाहिर के चिह्नोंसे ही उनकी कुल परम्परा मानी जाती है। मनुष्यों का वर्ण तथा जाति भेद आन्तरिक समझा जाता है, इसलिए वह और जाति को शामिल नहीं कर सकता, कोई पुरुष कैसाही शुद्धाचार और योग्य क्यों न हो, परन्तु इससे वह किसी और वर्ण अथवा जाति में दाखिल होने के योग्य नहीं

होसकता, क्षत्रिय अथवा शूद्र विद्या और अनुष्ठान में बहुत बढजाने से अथवा अपने सदाचार की श्रेष्ठता करने से ब्राह्मणका सवर्णी नहीं होसकता, हस्ती का हृष्ट पुष्ट और वलिष्ट बालक हस्तीका बच्चा कहलाकर शोभा पासकता है, परन्तु कोई उसकी हृष्ट पुष्टता से उसे सिंह का बालक न कहेगा, इसी प्रकार शूद्र यदि बहुत बढ जाय अथवा आचार विचार में ब्राह्मणों के समान होजाय तब भी वर्णमें ब्राह्मण नहीं होसकता, इसी प्रकार निर्बल और अनपढ ब्राह्मण भी ब्राह्मण वर्ण से पतित नहीं हो सकता, इसमें कुछ सन्देह नहीं किन्तु उत्तम कर्मों और शुद्धाचार से अपने वर्ण में श्रेष्ठ होसकता है।

अब एक बात शेष है और वह यह है कि यदि ब्राह्मण वेदाध्ययनादि के न करने से जाति से बहिष्कृत नहीं होसकता, तो म्लेच्छों के साथ खाने से क्यों खारिज होसकता है। इसके विषय में हम इतना कहते हैं कि, जब मनुष्य निर्बल रोगी रहता है उसका शरीर रहता है, परन्तु मर जाता है, तो कोई भी उस शरीर को दाह किए बिना नहीं रहता। इसी प्रकार महा पाप करने से ब्राह्मण और क्षत्रिय का जाति वर्ण नष्ट होजाता है। अर्थात् मरजाता है, और वह बिरादरी से निकाल दियाजाता है, जबतक यह जाति नहीं मरती है, तबही तक वह ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय समझा जाता है (१) सत्वगुण, (२) रजोगुण, (३) रजतमो सत्वगुण, (४) तमोगुण—इन चारों गुणों से चार वर्णों का आन्तरिक चिह्न बनाया गया है, यथा शास्त्र में लिखा भी है।

शुद्ध विचार वाले ब्रह्मा ने सृष्टि को रचने के लिए जब इच्छा की, तो उसके मुख से एक ऐसी सृष्टि उत्पन्न हुई, जिसका स्वभाव सत्वगुण प्रधान था और बाहुओंसे रजोगुणवाली सृष्टि, और जंघाओं से रज और तमगुण वाली और पैरों से तमोगुणवाली सृष्टि उत्पन्न हुई, इनमें पहले ब्राह्मण, दूसरे क्षत्रिय तीसरे वैश्य और चौथे पैरों वाली शूद्र है।

ब्राह्मण चाहे कैसी पतितावस्था में हो, और अपनी विद्या और क्रिया कर्म को भूल गया हो, परन्तु उसकी सत्वगुणी वृत्ति बदल नहीं सकती,

हाँ उसकी शरीर की दशानुसार रुग्ण रहसकती है, इसी प्रकार क्षत्रिय चाहे कैसे ही सत्त्वगुण के लिए उद्योग करै, परन्तु उसकी प्रकृति तो रजोगुण से बनती है वह किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं होसकता। हाँ यदि ब्राह्मण विद्वान् है कर्मकाण्डी है, तो उसका सत्त्वगुण पूर्णमासी के चन्द्रमा की भांति प्रकाशवान् होगा, और क्षत्रिय अपने कर्म में पूर्णरूप से तत्पर होगा और सदाचारी होगा उसकी शूरवीरता मध्याह्नकाल के सूर्य की समान तेजोमय होगी, इसी प्रकार और जातियों के विषय में भी जानलो। यही सृष्टि नियम है और इसी सृष्टि नियम के प्रतिकूल जो लोग हैं, वह चांडाल और वर्णसङ्कर (दोगले) हैं। जैसे ब्राह्मणी और शूद्र का जाया महा नीच चांडाल (भङ्गी) कहा जाता है जबकि सत्त्वगुणवाली ब्राह्मणी तमोगुणवाले शूद्र से मिल दोनों की प्रकृतिका सत्यानाश होकर उच्च कोटि का तम उत्पन्न हुआ, और उससे घृणास्पद भङ्गी उत्पन्न हुआ, यह केवल उदाहरण है और जातियोंपर भी इसी प्रकार अनुमान करलो। स्पष्ट प्रतीत होता है कि जातिभेद ईश्वर को ही स्वीकार है, यहकिसी का गढा या बनाया हुआ नहीं वह मूर्खता से नहीं बना है प्रत्युत हिन्दुओंकी उन्नति के साथ उसकी उन्नति हुई है, पशुओं का वर्ण भेद शारीरिक है और मनुष्य का आन्तरिक, स्वाभाविक कुल परम्परा, परन्तु घोर पाप से प्रकृति और कुल दोनों ही मिट जाते हैं।

इस बातको हम पहलेही कहचुके हैं, कि ब्राह्मण का स्वभाव सात्त्विक है, इसी प्रकार क्षत्रिय का राजसिक, वैश्य का राजसिक और तामसिक और शूद्र का स्वभाव तामसिक है यह स्वभाव भेद हमको चारोंवर्णों के गुण, कर्म और अवस्था से ज्ञात होते हैं, शास्त्रने इसको बड़ी उत्तमता से दर्शाया है, परन्तु आप महाशयों के सामने युक्तिही से काम लिया जावेगा और जैसे आपके प्रश्न होंगे वैसेही उत्तर दिये जावेंगे, देखिये जैसे भारतवर्षमें अनेक प्रकार के पशु और आरण्यक जीव विद्यमान थे, जिनको किसी प्रकार की बुद्धि नहीं थी, यह नंगे फिरते थे और वृक्षों के फल पुष्प खाकर निर्वाह करते थे, इनको खाने, पीने, भूषण पहिनने, पुस्तक पढने

आर्य समाज के दफ्तर में नाम लिखाने, ब्रह्म समाज के मन्दिर में जाकर उपासना करने आदि बातों का कुछ भी विचार नहीं था।

सिंह, रीछ, भैंस, किसी से इनका रूप नहीं मिलता, पुरुषोंके से इनके नेत्र; कर्ण और नासिका थी शृङ्ग पुच्छ से हीन थे, तीक्ष्ण लम्बे डरावने दांत और फाड़ने वाले आंकड़ेदार नख अवश्य रखते थे, जिस समय इनमें मांसों का बल था, उस समय कोई मोलवी अथवा पण्डित इनको शिक्षा देने वाला न था, और न सभ्यता सिखाने वाला। जिसने उनको उस अवस्था में शनैः २ उन्नति के सोपान पर ले जाकर "हजरते इनसान" बनाया हो, केवल काल की विकराल गतिसे प्रकृति के नियम ने ही उनको इस नूतन अवस्था तक पहुंचाया, और उस समय के लोगों की समान अवस्था और एकसी बनावट होने परभी बहुतों को उन सबका शिक्षक बनाया, और उन शिक्षकों ने उस समय के पुरुषों को शिक्षा और सभ्यता से भूषित किया तो क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे, कि उनका स्वभाव अवश्य सामान्य पुरुषों से उत्तम था, अथवा यह कि प्रकृति ने अवश्य इनको और लोगों से श्रेष्ठतर गुणों से भूषित किया था? अस्तु -आप लोगों का यह कथन हम विना किसी प्रकार के तर्क वितर्क स्वीकार करलेते हैं, कि ब्राह्मणों ने वर्ण भेद तथा जाति भेद केवल अपने आपको सर्वोत्तम करने को किया; परन्तु इसके साथ आपको यह तत्काल मानना होगा कि सबसे प्रथम ब्राह्मणही विद्वान् और बुद्धिमान हुए और सब से प्रथम उनको विद्या और बुद्धि पर अधिकार प्राप्त हुआ! अतएव ब्राह्मण वह लोग हैं कि जिस समय मनुष्य वनमानस की अवस्था में अज्ञानी और मूर्ख थे. उनसे उन्नति करके सब से प्रथम मनुष्यों के गुरू बने, केवल इस गुण के प्रताप से जो इस समय और वनमानसों की अपेक्षा प्रकृति ने उनको विशेप प्रदान किया था!

आज कल का समय आप लोगों की मनभावनी उन्नति का समय है, स्कूल कालेज, पाठशालाएं, मदरसें और शिशुशालाएँ विद्यमान हैं, प्रत्येक विद्या के पण्डित महाशय बाहुल्यता से मिल सकते हैं। इस समय विद्या पढना और सीखना सबको सुगम है, ऐसे समय में भी जो विद्या प्राप्त न

करसके, क्या वह नितांत कुबुद्धिवाला पुरुष नहीं है? पाठक वृन्द! आज वह समय है, कि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय सीखने के लिए उपाय विद्यमान हैं, बैठने को यदि उत्तम नहीं तो साधारण स्थान अवश्य मिल-जाते हैं, यह तो नहीं, कि निर्धन विद्यार्थी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा व्याकरण याद कर रहा है, आंधी चलती है और वृक्ष की शाखा के टूटने का भय है वर्षा होरही है और शीत के कारण कप कपी लगरही है भोजन के न मिलने से वृक्षों के फल पुष्प खाकर निर्वाह कररहा है. मनुष्यों की सङ्गति न मिलने से पशुओं में मिलकर रहता है। भाई! अबतो सहस्रों पुस्तकें, सहस्रों स्कूल, सहस्रों पाठशालाएँ लाखों, ग्राम, करोड़ों मनुष्य और मनों खाने पीने की सामग्रिएँ विद्यमान हैं, इससे सहज और सुगम तथा उत्तम अवसर विद्या प्राप्ति करने का क्या और होसकता है? परन्तु इस सुगमता परभी कितने सुशिक्षित ह?

परन्तु उस भूतकाल म जब कि उत्तम अन्न, गाय से दुग्ध और दुग्ध से घृत निकालने का विचार मनुष्य को स्वप्न में भी नहीं था, उस समय में जो लोग उन सब आवश्यकताओं को दूर करके उन्नति के सोपान पर आरूढ हुए हैं, उनके गुण कैसे उत्तम और अपूर्व थे, इस समय की उच्च शिक्षा और सभ्यता की डींग मारने वाले, लोग जो उस समय की प्राचीन विद्याओं को देखकर विस्मित होते हैं, और उनको प्राप्त करने की शक्ति अपने में नहीं पाते, इन अद्भुत विद्याओं को जिन लोगों ने किसी की सहायता के विना प्राप्त किया था वह कैसे अद्भुत गुणों के लोग थे। जिस पर-मेश्वर को "यतो वाचो निवर्तन्तेअप्राप्यमनसासह" कहा गया है, उसके पास जिनका मस्तिष्क यहांतक पहुंचगया है, कि सब मस्तिष्क का घमण्ड उससे चूर २ हो गया और होरहा है तथा और होगा. वह लोग कैसे अद्भुत स्वभाव रखने वाले थे, कि जिनके मस्तिष्क से विज्ञान, ज्योतिष, काव्य, पुराण आदि निकल कर समस्त भूमण्डल में विद्या के प्रकाश फैलाने का कारण हुए हैं, वह किस स्वभाव के लोग थे? अब हम भी तुम्हारे सुर में सुर मिलाकर कहते हैं, कि ब्राह्मणही वर्ण भेद

तथा जाति भेद के कारण हैं, जब कि उन्होंने अपने गुणों से एक अद्भुत गुण पाया तो उसकी सदैव रक्षा के लिए और देशके लाभ के निमित्त जिससे उनका सुस्वभाव साधारण निकृष्ट गुण से मिलकर नष्ट न हो वर्ण भेद को वेदानुसार विख्यात किया इस उत्तम गुण के पश्चात् जो लोग बलवान् हुए उन्हीं को हम क्षत्रिय मानलेते हैं, उन क्षत्रिय और ब्राह्मणों से प्राचीन काल में अपनी २ श्रेष्ठता के लिए झगड़े हुए, परन्तु उससे हानि क्या है? और भी विचार करने की बात है कि "ब्राह्मणस्यमुखमासीत्" इस श्रुति के अनुसार जब कि चार वर्ण की उत्पत्ति है तब मनुजी उनके कर्मोंका विधान करते हैं यह नहीं कहते इन कर्मों का करनेवाला यह वर्ण होता है और गीता में स्वभाव लिखे हैं सो वह प्रमाण नीचे लिखते हैं।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु०

वेद पढना पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना देना यह छः कर्म ब्राह्मणों के वास्ते नियत किये गये- और

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ भ०गी०

मन से किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, इन्द्रियों का रोकना, पवित्रता क्षान्ति (सहना) आर्जव (सीधापन) कोमलता ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ईश्वर का मानना यह ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० ॥१
शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभावजम् ॥ भ० गी०॥२

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, विषयों में नहीं फँसना, वेद पढ-ना यह कर्म क्षत्रिय के हेतु बनाये ॥ १ ॥ और शूरता, तेज, धृति, धैर्य्य, चतुरता, युद्ध से नहीं भागना, दान देना, ईश्वर में प्रीति करना यह क्षत्रि-यों के स्वाभाविक कर्म हैं ॥ २ ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥मनु०॥ १ ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् ॥ भ० गी०॥२

पशुओं की रक्षा करनी, दान करना, वेद पढना, व्यापार करना, व्याज लेना, खेती करना, यह कर्म वैश्यों के अर्थ बनाये ॥ १ ॥ खेती गोपालन व्यापार यह वैश्यों का स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत्।
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयथा ॥ मनु० ॥ १
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥भ०गी०॥२

शूद्र का एकही कर्म है, निन्दा को छोडकर तीनों वर्णों की सेवा करना यह मनुजी ने ठहरा दिया है ॥ १ ॥ गीता में लिखा है शूद्र का सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म है ॥ २ ॥

इससे यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मण को ऐसे, क्षत्रिय को ऐसे वैश्य को ऐसे और शूद्र को ऐसे कर्म करने चाहिये यह अर्थ नहीं है कि इस कर्म के करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होजाता है किन्तु चारों वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सौंपे गये जैसे कोई कहै कि यज्ञदत्त तुम यह काम किया करो तो क्या इसके यह अर्थ होंगे कि जो अमुक २ कार्य्य करै वोही यज्ञदत्त होता है इससे विदित हुआ यज्ञदत्त किसी पुरुष का नाम पूर्वकाल से है, अब उसको कार्य सौंपे गये हैं, यदि कर्म करने से ब्राह्मणादि

होते तो ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादिक करे वह ब्राह्मण होता है, सो यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सौंपे हैं जैसे कि पहिले तो चारों वर्णों के नाम पीछेसे उनके काम और फिर।

अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।

स्वभाव सबसे अधिक बलवान है, जिसके स्वभाव में जो बात है वह कभी नहीं जाती, गुणों से गुण अलग नहीं होता और यह भी तो सोचने की बात है कि बड़ा होना कौन नहीं चाहता यदि उपरोक्त षट् कर्मों से ही ब्राह्मण होता तो वेद तो तीनों वर्ण पढे होते थे, क्या जो पढे हैं सो पढा नहीं सकते, जिसने यज्ञ किया है वह करा नहीं सकता, फिर तो ब्राह्मण के षट् कर्मों को सभी कोई करसकते थे और सभी ब्राह्मण होजाते सो मनुजी ने निषेध कर दिया कि और वर्ण वेद को विद्या की नहीं पढा सकते, इससे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण जाति जन्म से ही होती है नहीं तो विश्वामित्र तप न करते, यदि पढे का नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानवधर्म शास्त्र में नहीं होता और कर्म करने से जाति नहीं बदलती, परशुराम ने इकीसवार पृथ्वी के सब क्षत्री मारडाले वे भी ब्राह्मण थे उन्हें आज तक कोई क्षत्री नहीं कहता, द्रोणाचार्य्य अस्त्र विद्या सिखाते थे उन्हें आज तक कोई क्षत्री नहीं कहता, यह महाभारत में युद्धभी करते थे यहभी क्षत्री नहीं कहलाये ब्राह्मण ही कहलाये, फिर कर्ण जब परशुराम के पास विद्या पढने को गये तो झूँठ बोले कि मैं ब्राह्मण हूँ पीछे परशुराम ने क्षत्री जान कर शाप दिया यदि पढनेसे ही ब्राह्मण होते तो उन्हें क्यों छिपाना पडता, और गुण कर्म से ही उच्च वर्ण होता तो कर्ण में कौन से गुण क्षत्री के नहीं थे सभी थे, ये भी असलक्षत्री पर अपनी जाति की खबर न होनेसे सूत पुत्रनाम से विख्यात हुए थे, जिस समय द्रौपदीके स्वयम्बर में धनुष कर्ण ने उठा लिया तब उस समय द्रौपदी ने कहा कि हम सूत पुत्र को वरण नहीं करेंगी क्यों कि यह क्षत्री जाति नहीं यह सुन कर्ण ने लज्जित हो धनुष रख दिया, अब कहिये यदि गुण कर्म से जाति होती तो

कर्ण धनुष रखता और द्रौपदी क्या आग्रह करती कर्ण में कौनसी बात की कमी थी परन्तु सूत के पालन करने से सूत जाति प्रसिद्ध होगई इत्यादि प्रमाणों से जन्म से ही वर्ण व्यवस्था सिद्ध होती है।

॥ मृत्युपश्चात् जीवन ॥

मिसेज एनी वेसन्ट का व्याख्यान जो महाराजा फरीद कोट के राजभवन में हुआ था,

जिसका अनुवाद।

सम्भलनिवासी श्यामलाल जोशी उपमन्त्री सनातन-धर्म सभा सम्भल से कराकर-

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र मुरादाबाद निवासीने प्रकाशित किया।

महाराज साहब व मित्रगण!

आप का धन से क्या सम्बन्ध है? आपका बान्धवों से क्या सम्बन्ध है? आपका अपनी स्त्री से क्या सम्बन्ध है? हे मनुष्य तेरी मृत्यु निश्चय है। उस कन्दरा विराजित जीवात्मा को खोजकर, आप के पिता और पर पिता कहां चलेगये? यह वह प्रश्न है जिसको महर्षि वेदव्यास ने महर्षि शुकदेव से किया था और अनेक युगान्तरों से मनुष्य जाति में यह प्रश्न उठता रहा है मनुष्य के मनमें यह विचार कभी २ उठा करता है कि जीवन का क्या सुख है? जगत के साधनों और बल पराक्रम कीर्ति से क्या प्रयोजन है? यदि कभी यमराज हमारे हाथों से यह सुख छीन लेगा अतएव अनादिकाल से यह प्रश्न होता आया है कि जन्म और मृत्यु क्या पदार्थ है, हम इस संसार में आते हैं और चले जाते हैं। हम अल्प समय के लिये यहां हैं परन्तु प्रत्येक समय हम में परिवर्तन होता रहता है। जिस वस्तु को हम प्रिय समझते हैं और

जिस पर अपना चित्त लगाते हैं वही हमारे हाथों से यमराज छीन लेता है। समय आने पर स्वयं हम भी मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं। संसार के सारे सन्देह युक्त विषयों में मृत्युही एक निस्सन्देह पदार्थ है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को समझाया है कि "जातस्यहि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच" अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चय है यदि हम अपने आपको संसार में पाते हैं तो हम जानते हैं कि किसी समय हम संसार से अवश्य चले जावेंगे, हम नहीं जानते कि कब और किस अवस्था में हमारा शरीर छूट जावेगा। परन्तु एक समय ऐसा होगा कि कालदेव निश्चयही हमारा ग्रास करेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

विशेष कर मनुष्य इस अवस्था से अपने नेत्रों को फेरलेता है। बहुधा मनुष्य अपने आनन्द के समय को ऐसी वार्ता के विचार करने में नष्ट करना नहीं चाहता, परन्तु यदा तदा जब मृत्यु किसी मनुष्य के घर में घुस जाती है अर्थात् किसी सम्बन्धी की मृत्यु होजाती है तब मृत्यु की ओर मनुष्य को अवश्य ध्यान करना पड़ता है। तब मनुष्य अपने हृदय में घृणा कर मृत्यु पर विचार करता है। कि यदि जीवन का निश्चयही नहीं है तो उसका आनन्दही क्या है?

ऐसी दशा में उसके हृदय में वैराग्य का संसर्ग होता है। जिससे उसको परिवर्तन शील पदार्थों से अरुचि होजाती है, और सांसारिक सुखों से दृष्टी फिरजाती है और उसके चित्त में उस अविनाशी अनादि परमात्मा की प्राप्ति की उत्कण्ठा होती है, जहां आशा निराशा की छाया भी नहीं पड़ती परन्तु यह यथार्थ वैराग्य नहीं है क्योंकि यह तो ऐसे समय में उत्पन्न होता है जब मनुष्य के सुखमार्ग को मृत्यु रोकलेती है अल्प समय के पश्चात् यह क्षणिक वैराग्य जाता रहता है, क्योंकि इस वैराग्य का प्रादुर्भाव जीवात्माकी वास्तविक उत्कण्ठा से नहीं होता। शुद्ध वैराग्य जिसका मनुष्य के चित्त में पूरा प्रभाव पड़ता है जब होता है जब मनुष्य की बुद्धि से प्रेरणा किये जीवात्मा को परमात्मा के प्राप्ति की लालसा होती है ऐसे वैराग्य का

बीज मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति में जड़ पकड़ता है इस वैराग्य का कभी नाश नहीं होता। फिर उसको ऐसा ज्ञान होता है कि संसार भर में एकही जीवात्मा है॥

यथार्थ ज्ञान के बिना सांसारिक पदार्थों की आशा निराशा से उत्पन्न हुआ वैराग्य निराशा के दूर होते ही अपना भयभीत रूप हटा लेता है, ऐसे वैराग्य के समय में जब कि जगत की अनूठी शोभा वैराग्य के बादलों से आच्छादित हो जाती है और संसारी सुख रुचकर प्रतीत नहीं होते मनुष्य को बड़े बड़े लाभकारी उपदेश मिलजाते हैं परन्तु जब बादल हटजाता है और जगत की शोभामयी माया अपना रूप दिखाती है ऐसी दशा का लाभ संकट के समय में उठाना चाहिये, जब अपने मित्रों और कुटुंबियों का वियोग मृत्यु द्वारा हो मनुष्यों को इस वैराग्य से लाभ उठाना चाहिये।

मनुष्य के चित्त में यह प्रश्न उठता है कि जीवन और मृत्यु क्या पदार्थ है? क्या हम मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त जान सकते हैं। इस बात का तो हम को निश्चय है कि शरीर के नाश होने पर सब पदार्थों का नाश नहीं होजाता है। शरीर के पात होने पर हमारा नाश नहीं होता परन्तु मृत्यु के पश्चात् होता क्या है? यमराज से भेंट कर कर हमारी क्या दशा होती है और किन किन लोकों में हमें यात्रा करनी पड़ती हैं, कौन कौन पदार्थ मृत्यु लोक के हमको परलोक में प्राप्त होते हैं?

क्या कोई मनुष्य संसार में परलोक का वृत्तान्त बतला सकता है। क्या कोई मनुष्य संसार में अपने अनुभव से कह सकता है कि मरने वालों की क्या दशा होती है? कौनसी वस्तु उनको संसार में फिर जन्म दिलाती है। इस स्थूल मृत्यु लोक में मनुष्य के पुनर्जन्म का अधिकार किसको है? जन्म और मृत्यु का चक्र क्या है जन्म और मृत्यु का वह चक्र है जिससे हम बँधे हुए हैं। और जिससे हमारा छुटकारा नहीं होसकता और जिस चक्र में घूमते हुए हम और लोकों में चले जाते हैं और फिर लौट आते हैं। हमको तीन लोकों में यात्रा करनी पड़ती है इसी चक्र से जन्म और मृत्यु होतीहै। वह कौन सी शक्ति है जिसने जन्म और मृत्यु को इस

परिवर्तन शील चक्र में बद्ध कर दिया है क्या इस चक्र से छुटकारा पाना सम्भव है ? क्या हम उन बन्धनों को तोड़ने में समर्थ हैं, जिससे हम छुटकारा पासकें ? क्या कोई ऐसी स्थायी दशा भी है जिसको पाकर हमको पूर्णशान्ति और अनन्त सुख प्राप्त हो और जहां दुःख कुछ भी न हो ?

बारम्बार मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठा करते हैं । आज की रात्रि के विचार में इसी प्रश्न के उत्तर देने का मैं उद्योग करना चाहती हूँ और मैं देखना चाहती हूँ कि प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्तों से यह प्रश्न समाधान होता है कि नहीं । प्राचीन ऋषियों के उपदेशों को प्राप्त किये हुए विद्वानों के विद्याबल से मैं आपके प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ ।

हम लोग उस निश्चित अवस्था की खोज करना चाहते हैं, जिसमें रहकर मनुष्य बारम्बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है और किस प्रकार इस चक्र से छुटकारा पाकर उस अचल और अनन्त शान्त अवस्था को प्राप्त करता है ॥

पहिले हमको इस प्रश्न के प्रथम भाग अर्थात् जन्म और मृत्यु के चक्र पर विचार करना उचित है । यह प्रश्न अति आवश्यक है क्योंकि हम लोगों में से अधिकांश इस चक्र से निकलने में समर्थ नहीं हैं । पूर्ण मुक्त दशा को प्राप्त होने से पूर्व बहुत कुछ साधनों की आवश्यकता है और मुक्ति प्राप्त होने से पहिले हममें से बहुत लोगों को बहुत बार जन्म लेना है परन्तु इस बन्धन को तोड़ना और किस मार्ग पर हमको चलना चाहिये सो एक गूढवार्ता है ।

मैंने अभी कहा है कि जीवन और मृत्यु के चक्र में मनुष्य को तीन-लोक में जाना पड़ता है, सबसे पहिले मृत्युलोक है परन्तु इसका वृत्तान्त लिखने की अधिक आवश्यकता नहीं क्योंकि इसलोक के वृत्तान्त को हम सब लोग जानते हैं परन्तु इस विषय में एक बात कहनी है जिसके कारण से मनुष्य इस चक्रसे नहीं बचते, हम सब सुख पाने की इच्छा

करते हैं और यदि आप इस पर विचार करें तो यह मनुष्य जन्म का एक परम सिद्धान्त भी है कि मनुष्य सदा सुख पाने की इच्छा करता है परन्तु इसको सन्तोष और शान्ति कभी नहीं होती। यदि वह किसी वस्तु को ग्रहण करता है और उसमें सुख नहीं पाता तो अपने मनमें कहता है कि मुझ से भूल हुई मैंने अविचार से उस वस्तु में सुख चाहा अब मैं दूसरे मार्ग से सुख पाने का उद्योग करूँ, तब वह उस मार्ग से लौटता है और फिर भी सुख पाने का विचार करता है। परन्तु उसके मन को किसी प्रकार से शान्ति नहीं होगी। यह स्वाभाविक बात है क्योंकि सुख पाने की इच्छा ईश्वर देता है परमेश्वर ही हमसे सुख प्राप्ति की इच्छा कराता है क्योंकि इसी चेष्टा के द्वारा हम उसको प्राप्त होसकते हैं। हम स्थूल पदार्थों में सुख प्रतीत करते हैं अर्थात् सांसारिक वस्तुओंको सुख पानेकी इच्छा करते हैं यह सारे जगत का अनुभव है। जिस समय इस शरीर को शान्ति नहीं मिलती है तब यह बड़े बड़े अधिकार चाहता है। यह लालची शरीर वस्तुओं की ओर दौड़नेवाला है इसको खान पान और स्त्री विषय के सुख की इच्छा होती है इस कारण सदा किसी न किसी वस्तु के ग्रहण करने का उद्योग किया करता है सब से पहिले मनुष्य शरीर में सुख पाना चाहता है इसका अधिकार इसके चित्त में बड़ा प्रबल होता है परन्तु यह नहीं समझता कि थोड़े समय में यह इच्छा जाती रहेगी। अतएव अज्ञान से इसके प्रवेश को मार्ग देता है। जब उस को भोजन की इच्छा होती है वह लालच से अधिक भोजन की इच्छा करता है। जब उसको स्त्री विषय की इच्छा होती है तब भी वह अधिक ही चाहता है परन्तु परिणाम क्या होता है रुचि और अनेक रोग शरीर में उत्पन्न होजाते हैं। अतएव परमेश्वर जीवों को उपदेश करता है कि इन्द्रियों के विषय शान्ति वा शरीर में सुख पदार्थ वर्तमान नहीं है। इन्द्रियों के विषय से उसकी तृष्णा अधिक बढ़ती है। जितना अधिक वह पीता है उतनीही अधिक उसकी पीने की तृष्णा बढ़ती है, जितना अधिक वह भोजन करता है, उतनीही अधिक उसको भोजन तृष्णा

बढ़ती है। ऐसेही जितना अधिक वह स्त्री विषय करता है उतनीही अधिक उसकी इच्छा बढती है। यह लिखा हुआ है कि अग्निपर घृत डालकर उसका बुझाना सहज है परन्तु प्रबल इन्द्रियों का दमन करना सम्भव नहीं। इस प्रकार कहीं सुख नहीं मिलता है, और ईश्वर हमको समझाता है कि "तुम्हारा सुख तुम्हारे शरीर में नहीं है, यदि तुम सुख की खोज शरीर में करोगे तो तुमको बारम्बार निराशा होगी। तुमको सुख प्राप्त नहीं होगा परन्तु तुम्हारा अधःपतन होगा"॥

तब मनुष्य महान और अचल सुख के लिये मानसिक विचारों में उपयोग करता है परन्तु कभी क्लेश और दुःख आपडने से बुद्धि विचार का आनन्द जाता रहता है और फिर उसके मनमें विचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती और यदि वह दुःख में भी वीरता से ऐसे विचार करता रहा तो बुढापा आजाता है जब उसके मस्तिष्क में शुद्ध विचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती तबही मानसिक सुख का अन्त होजाता है। यद्यपि यह मानसिक सुख शारीरक सुख से बहुत उत्तम है।

इस प्रकार सब मार्गों से मनुष्य टक्कर खाकर लौटता है। स्वाभाविक रीति पर मनुष्य को परमात्म तत्व में सुख प्राप्ति की खोज होती है। यहही एक ऐसा सुख है जहां आशा निराशा घृणा अरुचि नहीं होती। यहही केवल ऐसा सुख है जहां विषय और रोग का संसर्ग नहीं, इस स्थान पर उसको ज्ञान होता है कि जीव और ब्रह्म एकही तत्व है और वह उस आनन्द अवस्था का भागी होता है जहां पर आनन्द और प्रेम का स्रोत है।

परन्तु अब हमको एक ऐसे मनुष्य की मृत्यु पर विचार करना चाहिये जिसने अपनी जीवित अवस्था में शारीरक सुख चाहा है जब मृत्यु से उसका शरीर नष्ट होजाता है तो वह फिर उस शरीर को अपने सुख भोगनेमें यन्त्र की भांति काम में नहीं लासकता। अब मैं आपको ठीक २ बतलाती हूँ, कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? मैं दो दृष्टान्त लेती हूं, एक दृष्टान्त ऐसे मनुष्य का जिसने सारे सुखों को अपने शरीर में ही पाया है,

दूसरा ऐसे मनुष्य का जो सदाचारी और सन्तोषी है। और उसको मानसिक विचारों के अभ्यास में सुख होता है। अब देखना चाहिये कि मृत्यु के पश्चात् इन दोनों भिन्न मनुष्यों की क्या दशा होती है॥

दो लोकों में होकर इन मृत मनुष्यों को जाना पड़ेगा परन्तु इन दोनों मनुष्यों की दशा भिन्न २ होगी एक मनुष्य विषय सुख को लियेहुए शरीरको छोड़ता है, पहिले उसकी अचेत दशा होती है और निद्रा आजाती है और शरीर के नष्ट होनेपर थोड़ी देरतक अचेत रहता है। जागने पर अपने आपको प्रेत लोक में पाता है यही लोक भूतों का लोक है और इसको काम लोक वा इच्छा लोक भी कहते हैं; जिस समय वह जागता है उसको प्रथम अपने विषय सुखों की याद आती है जिनको जीवित अवस्था में अपने विषय सुख की शान्ति के लिये पालन किया था, अब यह विचार इस समय भड़कते हैं, और अपने विषय की पूर्ती चाहते हैं। यदि उस मनुष्य को सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन और पीने या स्त्री विषय का अभ्यास है तो यह कामना मृत मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् जागने पर भड़कती है। परन्तु उस का सूक्ष्म शरीर ऐसा है जो उसकी इच्छाओं को शान्त करने में समर्थ नहीं है यदा तदा इस शरीर को बलिष्ट शरीर भी कहते हैं, क्योंकि यही शरीर जीवात्मा को बद्ध किये हुये है। वह क़ैदी की समान बन्दी गृह (Jail) में बद्ध है यह बन्दीगृह (Jail) जिसमें वह बद्ध है विषयों और कामनाओं का बना हुआ है मृत्यु लोक में उसने इन विषयों को भोग करने से इस शरीर को बलिष्ठ कर दिया है॥

इन विषयों का तुम्हारे स्थूल शरीर से कुछ सम्बन्ध नहीं है।यह स्थूल शरीर तो इन विषयों के भोगने का एक यन्त्र मात्र है। यह विषय कामनायें सूक्ष्म शरीर में होती हैं, इसही सूक्ष्म शरीर में इन विषय कामनाओंकी जड़ होती है और इसी स्थान पर इनके केन्द्र (Centre) हैं और यह स्थूल शरीर उनके भोगने का एकयन्त्र है इस यन्त्र में कर्मेन्द्रियां हैं जिनसे इन्द्रियों को भक्ष्य कराया जाता है। स्थूल शरीर इन इंद्रियों की इच्छा पूर्ती का एक यन्त्र है॥

इस प्रकार मृत्यु के पश्चात् ऐसे मनुष्यों की इन्द्रियां बड़ी बलवान होती हैं और जीवात्मा को बांध लेती हैं। उसको उन भोगों की इच्छा होती है जो उनसे मृत्युलोक में भोगे थे और भोगों के अभाव से इस समय उसको क्लेश होता है क्योंकि जिन भोगों को वह चाहता है वह मृत्युलोक से सम्बन्ध रखते हैं, और इसलोक में वह उनको भोग नहीं सकता। इस प्रकार उसको उन विषयों की इच्छा होती है, जिसको शान्त करने में वह समर्थ नहीं है ॥

मृत्यु के पश्चात् यह दशा उन मनुष्यों की होती है जिन्हों ने मृत्यु लोक में अपनी इन्द्रियों से विषयों को भोगा है अन्त में भोगों का यन्त्र अर्थात् स्थूल शरीर नष्ट होजाता है। वह ठीक ऐसा है जैसे कि एक अत्यन्त भूखा मनुष्य किसी दृढ जगह पर बांध दिया जावे और एक भोजन की थाली उसके सामने रख दीजावे परन्तु बँधे होने के कारण वह भोजन तक नहीं पहुंच सकता उस मनुष्य की जिसने अपने जीवन को इद्रियों के विषय में व्यतीत किया है। अब इन्द्रियों के भोग का यन्त्र स्थूल शरीर मृत्यु द्वारा नष्ट होगया, अतः मृत्यु ऐसी असन्तोष युक्त बुरी दशा मनुष्य की मरने के पश्चात् होती है स्थूल शरीर को नष्ट करदेती है परन्तु इन्द्रियां वर्तमान रहती हैं। यदि किसी बुद्धिमान मनुष्य को इस बात का ज्ञान होजावे तो वह प्रेत लोक में ऐसी भाग्यहीन वा दुखदायी दशा को न भोगेगा। इस जीवन में आप मीठा होने परभी विषको नहीं खावेगा। आप मूर्खता से भी विष ग्रहण नहीं करेंगे। आप यही कहेंगे कि नहीं मैं ऐसी वस्तु को ग्रहण नहीं करूँगा जिससे अन्त में दुःख होवे तो आप इन्द्रियों को ऐसा क्यों बलिष्ठ करते हैं। जो मृत्यु के पश्चात् आपको प्रेत लोक में कष्ट दें जहां आपको भूखों मरना पड़ेगा क्योंकि वहां पर यह विषय आप नहीं भोग सकते ॥

वारम्वार मनुष्य समुदाय में मैंने इस वृत्तान्त को समझाया है। मैं इन बातों को केवल इसी रीति पर नहीं जानती हूँ कि मैंने उनको धर्म ग्रन्थों में पठन किया है परन्तु मैं उसके देखने के योग्य भी हूँ

जैसा अभ्यास करने की मुझे शिक्षा दीगई है मनुष्यों को ऐसे क्लेश में देखते हुए मुझे बडा दुःख होता है और वास्तव में प्रत्येक मनुष्य को यह देखकर दुःख होगा कि मनुष्य उस बन्धन को नहीं तोड सकते कि जिसको उन्होंने स्वयं बनाया है। जो मनुष्य इन्द्रियों का विषय भोग करते हैं उनकी शरीर छूटने पर यह दशा होती है परन्तु प्रेतलोग में मृतक मनुष्य को मृतलोक के शरीरधारी निवासियों से भी कुछ सहायता मिलसकती है और मृतक श्राद्ध जिसके करने की आपको शिक्षा दीगई है यह प्रेतों की सहायता का उपाय है और इस सहायता से वह प्रेत उस बन्धन से छुटकारा पाकर स्वर्ग लोक को जासकते हैं। श्राद्ध में मन्त्रों का प्रयोग कियाजाता है जिनका प्रयोजन यह है सारे शब्दों से वायु में (Vibration) हरकत होती है और यह हरकत वायुसे टक्कर खाकर सूक्ष्म परिमाणुओं को इधर उधर छिन्न भिन्न करती है और यह हरकत शरीर से टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेती है। अब मैं आपको मृत्युलोक का एक उदाहरण भी सुनाती हूँ यदि आप एक समूह सैनिकों (Soldiers) का एक साथ आगे पीछे कदम ब कदम चलते हुए देखें इनके चलने से एक हरकत होगी और यदि यह सैनिक किसी जीर्ण पुल पर होकर जावेगा तो मैं साहससे कहती हूँ कि आप इस बात को जानते हैं कि सेनापति (Commander) उन मनुष्यों को आगे पीछे छितराकर चलने की आज्ञा देवेगा. क्यों? इस लिये कि यदि यह सेना इकट्ठी होकर क्रमानुसार चलेगी तो इसमें पुल के टूट जाने का भय है, कदम ब कदम क्रमानुसार चलने से जो हरकतें (Vibrations) होती हैं यह बड़ी बलिष्ठ होती हैं यह जिस वस्तु से टक्कर खाती हैं उसको तोड़ डालती हैं इस प्रकार पुलपर चलती हुई सेना को छितेरा कर चलने की आज्ञा दीजावेगी।

मन्त्र भी बड़ी बलिष्ठ हरकतें (Vibrations) उत्पन्न करके जीवात्मा के बन्धक शरीर से टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेने का उपाय करते हैं इसी प्रयोजन से श्राद्धयज्ञ किया जाता है और मन्त्रों का उच्चा-

रण किया जाता है परन्तु इस यज्ञ को बड़ी सावधानी से करना चाहिये । पुरोहित विद्वान् और सदाचारी हो नहीं तो उसके मन्त्रों में कुछ सामर्थ्य नहीं होगा । दुराचारी और अपढ अर्थात् निरक्षर पुरोहित के मन्त्र उच्चारण में वह हरकत नहीं होती इस लिये मूर्ख पुरोहित से श्राद्ध कराना निरर्थक है और यदि आप विद्वान् और सदाचारी पुरोहित से श्राद्ध कराते हैं तो वास्तव में आप अपने मित्र और कुटुम्बियों की प्रेतलोक में बड़ी सेवा वा शुश्रूषा करते हैं इससे उनको उस बन्धन से छुटकारा पाने में सहायता मिलजावेगी ।

अब तनिक उस मनुष्य की ओर भी ध्यान देना चाहिये जिसने इस मृत्यु लोक के जीवन में इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त नहीं किया है यह मनुष्य भी प्रेत लोक वा कामलोक को जाता है इस मनुष्य की क्या दशा होती है ? अपने जीवन में ही इस मनुष्य ने इन्द्रयों को दमन कर विषय वासनाका नाश कर दिया है । उसका परिणाम यह होता है कि इस मनुष्य के बन्दीगृह (Jail) के बनने के लिये बहुत थोड़ा मसाला रहजाता है । जिस प्रकार कि आप कोई मकान बिना ईंटों और मिट्टी के नहीं बना सकते इसी प्रकार प्रेतलोक में आप का वासना रूपी शरीर नहीं बन सकता, यदि आप विषय वासना में वृप्रत्त नहीं । सारांश यह है कि जितेन्द्रिय मनुष्य का सूक्ष्म प्रेत शरीर सुगमता से खण्डित होसकता है और वह शरीर बहुत शीघ्र स्वर्गधाम की यात्रा करसक्ता है वह मनुष्य प्रेतलोक में रोका नहीं जाता और बहुत शीघ्र वैकुण्ठधाम को गमन करता है, उसको वहां दुःख नहीं होता, क्योंकि उसका शरीर दुःख के बदले उसकी सहायता करता है और वह बिना किसी क्लेश और दुःख के आनन्द के साथ स्वर्गधाम वा सुखलोक में देवताओं के सत्सङ्ग से पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होता है ।

अब इस स्थान पर बुद्धि का काम पड़ता है जिस मनुष्य ने अपनी मानसिक शक्तियों को सूक्ष्म विचार द्वारा शुद्ध किया है और मनुष्यों का बड़ा उपकार किया है और सदा दयावान और सदाचारी रहा है वह वहां

पर अपने सारे सत्कर्मों को अपनी बाट देखता हुआ पाता है। उसके सारे शुभ विचार और सत्कर्म उसके निकट आकर उस का ऐसा सुन्दर शरीर रचते हैं जिसको पाकर वह ब्रह्मलोक के सुखों को भोगता है उसके सारे सत्कर्म शुभ कामना और शुभ विचार उसके पूर्व जन्म के स्वर्गीय शरीर को रच देते हैं जिसके द्वारा वह देवलोक के सारे आनन्दों को भोगता है।

इस प्रकार का शरीर आपको बनाना चाहिए जिसको मृत्यु के पश्चात् आप धारण करसकें यह शरीर शुभ कामना सत्कर्म शुद्ध विचार और परोपकार करने से बनता है। आप विचार (Thought) की प्रबलता को नहीं जानते हैं जिस समय आप सुन्दर वस्तु विचार करते हैं तो आप एक सुन्दर शरीर रचते हैं जो जीवित अवस्था में आप के निकट रहता है और सन्मार्ग प्रवृत्त होने में सहायक होता है। प्रत्येक दिन कुछ थोड़ासा समय आप को सुन्दर विचारों में लगाना चाहिए। प्रातःकाल को नित्य कर्म करने के पश्चात् शुभ विचार और सुन्दर पदार्थों का ध्यान किया करो।

इस प्रकार आप ऐसा शरीर रचते हैं जो मृत्यु के पश्चात् आपको स्वर्ग में लेजाने के लिए बाट देखेगा, अपने नित्य ध्यान के लिये किसी सुन्दर विचार को अपने ध्यान में स्थिर करलो जिससे अन्त समय में यह विचार तुमको अपने लोकों में लेजावेंगे भगवद्गीता में आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जीवन में जिस वस्तु में मनुष्य की वासना होती है मरने पर उसी वस्तु के लोक को वह जाता है, स्वर्गीय शरीरको आप उतने समय तक धारण कर सकेंगे कि जितने दिनों वह ठहरेगा अर्थात् आपके सत्कर्मोंकी अवधि तक वह शरीर रहेगा जो आपने सत्कर्मों द्वारा बनाया है जितने अधिक आपने सत्कर्म किये हैं उतने अधिक समय तक आपका स्वर्गीय शरीर बना रहेगा और फिर नियमानुसार आप इसी लोक में आवेंगे जहां की आपकी वासना थी।

ऋषियों अर्थात् महात्माओं का कथन है कि यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है यह बात सत्य है। यदि कोई मनुष्य यज्ञ करे और वह स्वर्ग के सुखों को भोगे जो पदार्थ मनुष्य यज्ञ में अर्पण करता है वह पदार्थ उसको लौटकर मिलता है। मनुष्य गहने आभूषण और पृथ्वी और बड़े २ मकानों में रुपया खर्च करते हैं और उनको उसका कुछ पछतावा नहीं होता इन वस्तुओं से थोड़ी देर के लिए उनको सुख मिलजाता है परन्तु जिस समय यह सुख जाता रहा फिर कुछ नहीं रहता। परन्तु जो पदार्थ मनुष्य ईश्वर के निमित्त अर्पण करता है उसका उसको पछतावा होता है देवता मनुष्य से यज्ञ दान चाहते हैं। वे ऐसा दान चाहते है जिससे औरों-का भी उपकार हो। कूपों का बनवाना वृक्ष लगाना और मनुष्यों का उपकार करना और फिर देवता लोग जो न्यायकारी है इस स्वर्गीय शरीर में उसको वह पदार्थ पहुँचाते हैं यदि मनुष्य अधिक दान करेगा उस क स्वर्गीय शरीर भी अधिक दिनों तक रहेगा।

यह नियम है कि मनुष्य उस स्थान पर जन्म लेगा जहां उसके वांछित पदार्थ वर्तमान होते हैं।

एक उपनिषद् में ऐसा लिखा है कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार एक लोक से दूसरे लोक में जाता है। अधिकतर मनुष्यकी इच्छायें स्थूल मृत्युलोक से सम्बन्ध रखती हैं इसीलिए वह शीघ्रही मृत्यु लोकमें जन्म लेता है।

तीन कारणों से पुनर्जन्म की इच्छा और पूर्वजन्म के विचार मैंने आप को बतलाए हैं कि इन बातों का काम, काम लोक तथा स्वर्ग लोक में किस प्रकार पड़ता है। कुछ कर्मों का फल तो इन दो परलोकों में भोग-लेता है और शेष कर्मों के निमित्त पुनर्जन्म होता है।

जब मनुष्य का पुनर्जन्म होता है उसकी प्रकृति उसके पूर्वजन्म के विचारों के अनुसार बनती है जो उसके जन्मका मूल कारण है।

आप जानते हैं कि जन्म के समय मनुष्य भिन्न २ प्रकृति के होते हैं। दो बच्चे भिन्न २ प्रकृति लिए हुए जन्म लेते हैं। एक बच्चे को आप लालची

पावेंगे किसी बच्चे को आप स्वार्थी प्रकृति पावेंगे और कोई बच्चा बहुतही क्रोधी होगा। कोई बच्चा प्रेमी होता है और कोई बिलकुल कमी और रूखी-प्रकृति होता है। यद्यपि यह सब बच्चेही हैं परन्तु प्रकृतियां भिन्न २ हैं। यह उनके स्वभाव उनके पूर्वजन्म के संस्कारों से हैं।

आप जानते हैं कि कितना अधिक मनुष्य का सुख उसके स्वभाव वा प्रकृति पर निर्भर करता है यदि कोई मनुष्य सदाचारी और साधु स्वभाव नहीं है तो वह चाहे धनवान वा राजा क्यों न हो उसको सुख नहीं होगा॥

तो आपका स्वभाव आपके विचारों से बनता है जैसा आप ध्यान करेंगे वैसेही आप बन जावेंगे। छान्दोग्य उपनिषद् का वाक्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति उसके विचारों से होती हैं। जैसा मनुष्य विचार करेगा वैसा ही बनजावेगा। विचारों से केवल स्वर्गीय शरीर ही नहीं बनता है। परन्तु तुम्हारा स्वभाव भी उसी से बनता है यदि तुम साधुत्व का विचार करोगे शुद्ध स्वभाव धारण कर जन्म लोगे। यदि कुत्सित प्रकृति का ध्यान करोगे तुम्हारा कुत्सित स्वभाव के साथ जन्म होगा। यह वह नियम (Law) है जिसमें परिवर्तन नहीं होसकता॥

दूसरी वस्तु आपकी इच्छायें हैं आपकी इच्छाओं से यह स्थिर होजाता है कि कौन २ पदार्थ आपको आगामी जन्म में प्राप्त होंगे। यदि आपको रुपये का बहुत कुछ ध्यान है तो आपको आगामी जन्म में धन मिलेगा परन्तु सोचिये कि कौनसा पदार्थ ग्रहण करने योग्य है। बहुत धन और उच्च पदों से ही केवल सुख प्राप्त नहीं होता है। अब मैं आपको एक ऐसे मनुष्य का दृष्टान्त सुनाती हूँ जिसकी अवस्था आश्चर्य जनक थी। वह मनुष्य बडा धनहीन था उसने ठेकेदारी का काम किया और बडा धनवान होगया। जो काम उसने किया उसमें सफलता प्राप्त की इस प्रकार उसने लाखों करोडों रुपये संग्रह कर लिये और एक बडा सुन्दर भवन बनवाया व उसको खूब सजाया परन्तु ऐसा सुन्दर भवन होने पर भी उसने उसमें निवास नहीं किया वह बडे क्लेश में रहता था और दरिद्री रहता था। उसके बच्चे बेपरवाह थे उसकी स्त्री मरगई थी और उसके कुटुम्बी उससे

घृणा करते थे इतने वडे धन कुवेर होने पर भी वह दुःखी रहता था वह एक छोटी सी झोपडी में रहता था और उसके पास एक नौकर था, और वह भी रोगी था, अब इसके पूर्वजन्म की अवस्था विचारने योग्य है, उस मनुष्य की रुचि सदा रुपये में रहती होगी काम के अटल नियमानुसार उसको धन मिला उसकी पूर्वजन्म की अवस्था वहुतही क्लेश जनक थी। यह वहुतही स्वार्थी और लालची था और उसको धन भी मिला परन्तु भलीभांति भोग न सका। इस जीवन का परिणाम यह हुआ कि उसको धन मिला परन्तु इसपर भी उसको क्लेश रहता था॥

अव कर्म फल को विचारिये यदि इस जीवन में इस संसार में आप औरोंको शारीरक सुख देवेंगे तो पूर्वजन्म में आपको शारीरक सुख मिलेगा यदि आप अपने निकटस्थ को धन प्रदान करेंगे तो आपको भी धन मिलेगा यदि आप दूसरे मनुष्यों को सुख देंगे तो आपका स्वयं परिश्रम करना चाहिये। कल्पना कीजिये कि कोई धनवान मनुष्य सर्व साधारण के लिये एक वाटिका (Park) वनवाता है यह वहुत अच्छी वात है क्योंकि इससे मनुष्यों को वहुत कुछ सुख मिलता है वहां पर उनको ताजी हवा अर्थात अच्छी वायु मिलती है वैठने के लिये वृक्षों की छाया मिलती है यह शारीरक सुख उसको लौट कर मिलेगा जो सत्कर्मों का और उपकारों का वीज उसने वोया है वह उसको लौटकर मिलेंगे परन्तु यदि उसको आत्मिक सुख के करने की अभिलाषा है तो उसको निष्काम दृष्टिसे कर्म करने चाहिए। उसको निष्काम वुद्धि से दूसरों का उपकार करना चाहिये॥

यह निष्कामत्व उसकी प्रकृति में मिलजावेगा, और उसको सुखी वनावेगा। मनुष्य को अपने कर्मों और स्वभाव दोनों का ध्यान रखना चाहिये, परन्तु अपने कर्मों को भूलना नहीं चाहिये। यदि कोई मनुष्य किसी के साथ अन्याय करता है तो वह अन्याय लौटकर कर्म शास्त्र के अनुसार उसको मिलता है॥

यदि वल को उचित रीति से काम में नहीं लाया जाता है यदि इस वल को दूसरों के कष्ट पहुंचाने में वरता जाता है तो ऐसा अन्यायी राजा आगामी जन्म में कष्ट भोगेगा अर्थात् उस वीज के फल काटेगा

जो उसने स्वयं बोया है यह कर्मशास्त्र का नियम है। जिसके द्वारा मनुष्य को उसके कर्मों का फल मिलता है और उसकी सामर्थ्य के अनुसार उसपर जिम्मेदारी का बोझ है।

परमेश्वर मनुष्यों को उच्च अधिकार देता है और उनको जगत अपना प्रतिनिधि रूप बनाकर भेजता है हिन्दू शास्त्रों में यह उपदेश दिया गया है कि राजा ईश्वर का रूप होता है। जैसा कि भगवद्गीता में कहागया है कि "नराणांच नराधिपः" और राजों में ईश्वरीयशक्ति होती है। उनमें ईश्वरीय शक्तियां और उसकी मान प्रतिष्ठा ईश्वर समान की जाती है। और उसके बदले में उसको रक्षा करना, न्याय करना, धनवानों से दीनों की रक्षा करना, और बलवानों से निर्बलों की रक्षा करना, उचित है। निर्बलों की रक्षा उसमें मिलती है क्योंकि महाभारत में ऐसा लिखा है कि दीन दुःखी मनुष्य के आंसू बड़े २ बलवानों की शक्ति को नाश कर सकते हैं। परमेश्वर सारे संसार के भूपतियों का राजा है। वह इन भूपों के अन्यायं व कानूनी वेपरवाइयोंका हिसाब मांगता है प्रत्येक शक्ति को महाशक्ति का स्मरण रखना चाहिये, जिसके सन्मुख उनको हिसाव देना है। जीवन और मृत्यु का नियम यही है। इसी चक्र में जीवात्मा को घूमना पड़ता है॥

इस चक्र के विषय में एक बात कहना और है जिससे छुटकारा नहीं पासकता। हमको इस चक्रमें घूमने और बारम्बार जन्मलेने और शरीर त्यागने की आवश्यकता नहीं। हम इससे थक गये और छुटकारा चाहते हैं। ऐसे समय पर हम मुक्ति मार्ग की खोज करते हैं। आपको नाचकेत की कथा याद होगी जब उसका पिता हवन कर रहा था पुत्र ने पूछा पिता तुम मुझको किसकी भेंट करोगे? पिता ने उत्तर दिया कि बेटे मैं तुझे यमराज की भेंट करूंगा इसलिए वह यमराज के लोक को गया और बिला आदर सत्कार पाये तीन दिन और तीन रात खड़ा रहा। जब यमराज लौटे उन्होंने नाचकेत को अपने पिता की आज्ञानुसार बाट देखता हुआ पाया। उसके आदर सत्कार के बदले में यमराज

ने उसको तीन वरदान दिए। पहिला वरदान नाचकेत ने यह मांगा कि मेरा पिता मुझसे प्रसन्न होजावे, दूसरा वर यह मांगा कि स्वर्ग की अग्नि मुझको प्राप्त होजावे और मेरे नाम से पुकारी जावे, तीसरा वरदान उसने यह मांगा कि मृत्यु का गुप्त भेद जानूँ, बहुत मनुष्य कहते हैं कि मनुष्य अमर है कुछ कहते हैं कि वह अमर नहीं है इसलिए हे यमराज! अपने गुप्त रहस्य को प्रकट कीजिये—क्या मनुष्य आप से बच सकता है? यमराज ने कहा हे पुत्र! इसको न पूछ सिवाय इसके और कोई वरदान मांग मैं तुझको संसार का धन और सब प्रकार के सुख दे सकता हूँ परन्तु मृत्यु का भेद नहीं बतलाऊँगा। लड़के ने कहा कि आप संसार के सुख और स्वर्गलोक के भोग स्वर्ग की अप्सरा रहने दीजिए इनके बदले मुझे केवल वही वरदान दो कि ऐसा क्या उपाय है कि मनुष्य काल का ग्रास न बने इस प्रकार नाचकेत के बारम्बार प्रश्न करने पर यमराज मृत्यु का भेद बतलाने को विवश हुए मनुष्य का बन्धन वासना है। यह वासनायें वा इच्छायें इन्द्रियों से उत्पन्न होती हैं और यही बारम्बार जन्म मृत्युकी कारण हैं। मनुष्य को इन्द्रियों का दमन करना चाहिए सब से पहिले इसी मार्ग को ग्रहण करना उचित है। सब से पहिला यही काम है। जैसे कि: इन्द्रियां मनुष्य को जन्म और मृत्यु में बांधती हैं प्रथम इनको दमन करके अधिकार में लाना चाहिए यह शरीर रथ के समान है इन्द्रियां अश्व रूप हैं। मन उसकी बागें हैं। बुद्धि सारथी है। जीवात्मा इस सारथी से ऊपर रथ में विराजमान है। बुद्धिरूपी सारथी के मनरूपी बाग को पकड़ कर इन्द्रियरूपी घोड़ों को रोके हुए जो अपनी विषयी वस्तु की तरफ दौड़ते हुए जाते हैं इस शरीर रूपी रथ को हांके। इन घोड़ों को सत्मार्ग में हांकना चाहिए। अर्थात् इन इन्द्रियों को सन् मार्ग में प्रवृत्त करना चाहिए बुद्धि द्वारा मन को अधिकार में लाना चाहिये जिस प्रकार कि इन्द्रियों को मन के अधिकार में लावे। प्रत्येक कार्य्य में मन और इन्द्रियों को अधिकार में लाना उचित है। इन मार्गों में प्रवृत्त होने

से मन की शान्ति पर जीवात्मा के दर्शन होते हैं। तब योग विद्या सीखनी चाहिए। इस हृदय रूपी गुफा में उस अनादि आत्माका ध्यान करना उचित है। यह आत्मा इस हृदय मन्दिर में विराजती है और जिज्ञासु उस पर ध्यान को स्थिर करे। इस हृदय मन्दिर में उस पुरुषतत्व का ध्यान करना चाहिये। आत्माके लक्ष्य करनेवाले मन को शुद्ध निर्भय स्थिर रखना चाहिए इसके अनन्तर ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करना चाहिये क्यों कि भक्ति द्वारा ही जीवात्मा की एकता का लक्ष्य होता है। इस प्रकार मनुष्य कालको जीत सकता है जब सब इच्छाओं का नाश होजाता है तब मन अमर होजाता है। जिस समय मन को परमात्मा के दर्शन होजाते हैं वह फिर कालका ग्रास नहीं बनता।

यह गुप्त भेद बतलाया गया, मोक्ष की प्राप्ति का केवल यही एक गुप्त रहस्य था जो कहा जा सकता है। हम इसको किस प्रकार प्राप्त हों वा सीखे अब भी उपदेश गुरु वर्त्तमान है और यमराज कहते हैं कि सतगुरु की खोज करो और उनकी सेवा करो वे अब भी संसार में जीवित हैं और संसार में उपदेश करते हैं और जो मनुष्य सीखना चाहते हैं उन को खोज करते हैं जैसा मैं जानती हूँ वैसा आपको बतलाती हूं वे उसी सूक्ष्म मार्ग का उपदेश करते हैं जो अब भी खुला हुआ है। यह मार्ग ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु यदि गुरु प्राप्त होजावे तो शिष्य को भी शिष्यही के समान हो जाना चाहिये। इस प्रकार आप सत्य ज्ञान को प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि आत्मा की प्राप्ति इन्द्रियों के विषयों से नहीं होती। तर्क वितर्क और वादानुवाद से उसकी प्राप्ति नहीं होती जीवात्मा अपने अधिकारी को ही दर्शन देता है और यह अधिकार शुद्ध स्वभाव और निष्कामतासे प्राप्त होता है॥

इति।

॥ सम्प्रदाय भेद क्यों ? ॥

लीजिये ! अब यह प्रश्न आया कि "सम्प्रदाय भेद क्यों ?" जो यह पूछता है जान पड़ता है, कि उसे मूर्ति पूजा पर तो कोई आपत्ति नहीं उसे केवल इतनाही पूछना है कि यह कै एक भिन्न २ प्रकार से क्यों होता है ? यह भी पूछने वाले की मन की बात प्रगट होती है कि [क] "भगवत्प्राप्ति का मार्ग एकही प्रकार सब के लिये चाहिये" और कदाचित् पूछने वाले ने (ख) सम्प्रदाय भेद के कारण कुछ हानि भी समझी हो ॥

(क) अच्छा तो यह जो भाव झलका कि "सब के लिये एकही प्रकार चाहिये भिन्न २ क्यों ?" इसी को कुछ देखिये, क्योंकि हमारे मुसल्मान, क्रिस्तान, ब्राह्म, और आर्या भी इसी बात का झगड़ा उठाते हैं सब के लिये एक और एकही प्रकार का धर्म्म हो क्योंकि जब सबका भगवत्प्राप्ति रूप एकही उद्देश्य है तब एक प्रकार क्यों न हो ? इसकी समालोचना में पहले यही देखिये कि (१) यदि एकही उद्देश्य हो तो एकही प्रकार होना अत्यावश्यक है कि नहीं और फिर यह भी देखेंगे कि (२) सब हिन्दू मुसल्मान क्रिस्तान बौद्ध ब्राह्मो आदि का एकही उद्देश्य है कि नहीं (३) फिर आप लोगों की दृष्टि इधर भी फेरेंगे कि सब एक प्रकार से चले यह सम्भव है कि नहीं ?

[१] देखिये तो क्या बच्चों की सी बात है कि एक उद्देश्य हो तो एकही प्रकार उपाय भी होना चाहिये। देखिये न तो इसकी कोई प्रबल युक्तिही है और न ऐसा व्यवहारही देखते हैं प्रत्युत संसार की प्रकृतिही इससे उलटी देखते हैं। देखिये भूख लगने पर कुछ भोजन कर उसे शान्त करना यह उद्देश्य सब का एक है। पर इसके पूरे करने के भिन्न व्यापार हैं, कहीं रोज पूरियें छन्ती हैं, कहीं प्रति दिन भात पसाया जाता है, कहीं लड्डुए ढलते हैं और कहीं चूड़े सांदे जाते हैं, कहिये तो यह प्रकार भेद क्यों ? शीत वातादि के निवारण के लिये वस्त्र धारण

करना यह एक उद्देश्य है, फिर कहीं मखमल, कहीं छींट, कहीं पगड़ी, कहीं टोपी, इत्यादि सहस्रों प्रकार क्यों ! ! और उनमें भी एक एक पगडी, आदि के सहस्रों प्रकार क्यों ! ! यदि एक उद्दश्य से एकही प्रकार से कार्य सम्पादन किया जाय तब तो घर बिछौने ओढने पलङ्ग, मचिया, खटिया, आदि सब पदार्थ एकही एक प्रकार के होने चाहिए । और आज कल के विज्ञों के समाज में तो उसका उलटाही सिद्धान्त देखतें हैं, वे तो एक उद्देश्य के एक पदार्थ को सहस्रों प्रकार से सिद्ध करनाही अपनी विद्या की सफलता समझते हैं, और तो जहां तहां पेन्सिल, कलम, स्याही, और कागज के प्रकारके हैं । क्या एक प्रकार की बोताम से कुर्ता नहीं अटक सक्ता ? क्या एकही ढङ्ग की चेन से घड़ी नहीं झूल सक्ती ? और क्या एकही प्रकार की छींट से अंग नहीं ढपसक्ता ? पर नहीं ! आज कल के विद्वान् लोग इसी बात को विद्या की पराकाष्ठा समझते हैं कि एक काम सैकड़ों रीति से हो, और इसी बात पर लोग अपनी अपनी चतुराई और विद्या झाड़ते हैं कि हम और एक नया ढंग निकालें ? अच्छा कुछ गान की ओर तो ध्यान दीजिये, गान विद्या की मूलकारिका तो इतनी ही हैं कि एक किसी प्रधान रीति से कुछ नियत स्वरों पर आरोह अवरोह करते रहना, पर गाने बजाने वालों की प्रशंसा इसी बात में है कि वे नये२ ढंग से आवें । जो सितारिया एक ही गत को घण्टों तक बजावे और बार २ नईही नई तानें निकाले उसी की अधिक वाह २ होती है यह बात तो अशिक्षित जंगलियों में है कि वे प्रायः एकही प्रकार के झोंपड़े बनाते हैं और एकही प्रकार से धोती मुरेठा लपेटते हैं अथवा यह बात पशु पक्षियों में है कि वे एकही प्रकार के व्यापार से जन्म बिताते हैं और एकही प्रका-रके खोते बनाते हैं । तब जहां के निवासियों ने थोडे समय से पढना लिखना सीखा है और थोडेही दिनों से मनुष्यता पाई है वे यदि ईश्वर पाने के शास्त्र की उन्नति न करसके हों और एकही मोटे से पथ को मोक्ष पथ कह के मान छोड़ा होतो हो ! पर जिन भारत निवासियों ने और शास्त्रों को भी भगवत्प्राप्तिही में सहायक समझ आदर किया और उपासना

के शास्त्र को अन्तदर्जे तक पहुंचा दिया उनका उसी उद्देश्य के साधन के अनेक पथ निकालना क्या बुरा है ?

यदि एक उद्देश्य से एकही उपाय ठीक समझा जाता तो, वैद्य, कविराज, हकीम, और डाक्टर लोग एक २ रोग की एकही एक दवा रखते, पर कहिये तो यह कहां की युक्ति है कि एक साधारण ज्वर की तो दस दस पन्द्रह२ बीस२ प्रकार की दवाइयां होसकें और इस संसार के जन्म मरण के महाज्वर की मोटी मोटी एकही दवा हो और उसका एकही अनुपान हो ! और यदि उस दवा के सेवन का भी किसी ने भिन्न २ अनुपान और प्रकार निकाला तो नवीन समाजी लोगों को सन्देह ज्वरका सन्निपात हुआ?

[२] और यह ही आपने क्योंकर समझा कि सब का एकही उद्देश्य है? कोई स्वर्ग चाहते हैं कोई सायुज्य चाहते हैं, कोई सालोक्य चाहते हैं कोई कैङ्कर्य चाहते हैं। कोई सांसारिक पुरुष इतनी ही मेहरबानी चाहते हैं कि इनसाफ़ के दिन कुसूरमुआफ हो, कोई चाहते हैं कि ईसा ने जो सब के बदले सजा पाली है इस लिये हमें छुडादे, कोई चाहते हैं कि देह त्याग के अनन्तर हम वासना रहित शुद्ध चेतन रहजायँ, कोई चाहते हैं कि हम तो ब्रह्मरूप हैं ही पर जिस अज्ञान बन्धन से हम जीव कहला गये वह बन्धन किसी प्रकार छूट जाय इत्यादि सैकड़ों उद्देश्य भिन्न २ कहां तक गिनाये जांय फिर जब एक एक प्रकार के उद्देश्य साधन के लिये अनेकानेक उपाय हो सक्ते हैं तो अनेक उद्देश्यों के लिये तो भला कितने उपाय होंगे?

अच्छा अब यह ही देखिए कि सब एकही प्रकार से चलें तो यह कहां तक सम्भव है। और लम्बे २ बडे २ द्वीपों में कुछ सम्भव हो तो हो भी पर क्या भारतवर्ष में भी सब प्रान्त और सब वर्णों का सामान्य भाव संभव है ? यह वह भारतवर्ष है जिसके मारवाड़ देश में आफ्रिका का मजा धूल खाता है कश्मीर की ढंड पर यूरप की ठंड भी ठण्डी होजाती है, और वनस्पतियों की शोभा पर काबुल के अनारों की छाती फटती है, और छुहारे छिछोरे पडी सकुडे जाते हैं, इस भारतवर्ष में एक प्रान्त ऐसा भी है जहां ४०० हाथ गहरे कुवें में पानी का दर्शन हो और एक प्रान्त ऐसा

भी है जहां डुपट्टे में लोटा बांध पानी निकाल लीजिए एक प्रान्त ऐसा भी जहां चारों ओर पहाड़ और घोर जंगल की घूम से एक कोस भी सरल भूमि नहीं है और जहां कि पर्वत के ऊपर की बस्तियों में ऐसे हजारों वुड्ढे रहा करते हैं जो कभी पहाड़ से नीचे उतरे ही नहीं, और इस भारत में कोई प्रान्त ऐसे भी हैं जहां के लड़के पुस्तकों में पहाडों का नाम पाते हैं पर पहाड देखने को तरसा करते हैं। इस भारत में थोडी २ दूर पर बोली बदलती है, वेष बदलते हैं, और व्यवहार बदलते हैं जिन्होंने भारत के अनेक भिन्न भिन्न प्रान्तों में सभा की होंगी उन्होंने देखा होगा कि पञ्जाब की सभाओं में लम्बे २ चोगे और घनी डाढी वाले ऐसे पचहत्थे ज्वान जुटते हैं कि उनके सफेद २ भारी २ मुरेठों की ऐसी कतारें बँधती हैं जैसे, किसी तड़ाग के उपवन में हजारों हंस इकट्ठे हुए हैं ?. राजपूताने की सभाओं में रङ्ग बिरङ्गी पगड़ी कसे गले में वलेवाड़ा झुलाये तुर्रा झुमाते ढीला पेच डुलाते छूँछां करते; ऐसे छैल छवीले जमते हैं कि मानो किसी वगीचे में विचित्र वसन्त ऋतु आया हो जिससे सहस्रों फूलों के रङ्ग विरंगे गुच्छों से सब पौदे लद फद होगए हैं। अब कुछ बङ्गदेश की ओर दृष्टि दीजिये तो वहां की सभाओं में जिन्हें देखने से दयाका उद्वेग हो ऐसे कोमल कोमल अङ्ग वाले छोटे कुरते और लम्बी धोती वाले बाबू लोग इकट्ठे होते हैं उनके चिकने २ घुंघरारे कारे२ केशवाले उघाड़े मस्तकों से सभा एकदम श्रीकृष्णमय होजाती है और ऐसी सभा दीख पड़ती है कि मानों किसी खिले हुए रङ्ग विरङ्ग कमलों से भरे तालाब पर करोड़ों भौरों के झुण्ड आपड़े हों, उनके सब कमल दप-गये हों, ! तो क्या ऐसे भारत में सम्भव है कि सब एकही प्रकार चलें और केवल देश भेद क्या ? जाति भेद, वर्ण भेद, आश्रम भेद आदि के कारण से भी क्या अधिकारी एक प्रकार के ठहर सकते हैं। इत्यलम्.

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ धैर्य्य ॥

यह भी मनुष्य में एक विलक्षण गुण है । जितने काम हैं वे धीरज ही से अच्छे होते हैं । चपल पुरुष से प्रायः काम बिगड़ते हैं । जिसको धैर्य्य नहीं वह थोड़ी ही बात में घबरा जाता है और घबराने के कारण फिर उसको वह विवेक नहीं रहता कि क्या हमारा कर्तव्य है और क्या नहीं, तब फिर बिना विचारे और बिना समझे चाहे जो कर गुजरता है तो यह कब सम्भव है कि इस प्रकार के काम ठीक ही उतरें । ऐसा प्रसिद्ध है कि--

बिना बिचारे जो करै, सो पाछे पछताय ।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय ॥

जो लोग थोड़ी ही सी घबड़ाहट में अपने से बाहर हो रोते हैं आदमीर के पांव पडते हैं, तथा सन्देह और चिन्ता के ज्वर से ज्वरित होते हैं उनसे अधिक और कौन दुःखी होगा ? इसलिए सदा धीरज ही धरना चाहिए ।

॥ कवित्त ॥

कैसे काज है है सब बात सब बूड़ि जैहै, कादरता ऐसी कबो भूलि हू न करिये । करिके विवेक को समाज निज जो मैं पचि रचि कै उपाय निज व्याकुलाई हरिये ॥ ईश्वर को याद कै जनैये पुरुषारथ की, दच कहै काहू के न जाय पांय परिये । हारिये न हिम्मत सु कीजै कोरि किम्मत को, आपति में पति राखि धीरज को धरिये ॥

इस संसार में ऐसे क्षुद्र अनेक हैं, जो कुछ शोक उपस्थित होने से घबरा-के कुएँ में गिर के प्राण दे देते हैं अथवा और किसी प्रकार से आत्मघात कर लेते हैं, अथवा कितनेही आग लगी देख घबरा के घर के कोने में बैठ जाते हैं और निकलने का रास्ता भूल प्राण देते हैं, कितनेही जङ्गल में शेर और भालू का नाम सुनतेही काठ हो खिलौने से खड़े होजाते हैं और

उन्हें अन्य पशु भोजन करते हैं, कितनेही घबराय पथिकों के समूह अल्प सामर्थ्यवाले तीन चार डाकू लूट लेते हैं और वे विचारे धीरज विहीन हो आपस में एक दूसरे को धरते पकड़ते रोते हा हा करते लुट जाते हैं। धैर्य-के छोड़ देने से कितने अनर्थ होते हैं जो कहे नहीं जासकते। देखिए धीर और अधीर का कितना अन्तर होता है एक धीर पुरुष को दूसरे सिंह को देखतेही दस्त होजातेही हैं और दूसरा धीर पुरुष जब तक सिंह लपक के अपने पास आवे तब तक एक गोली भर के उसे मारते हैं॥

किसी एक पुरुष ने सिंह का बच्चा पाला और सदा उसपर हाथ फेरता प्यार करता अपने साथ रखता उससे ऐसा हिलमिल गया था कि उस सिंहके बच्चे को कुत्ता सा बना लिया था। धीरे २ वह सिंह का बच्चा बड़ा हो पूरा जवान सिंह हुआ। पर तो भी उस सिंह का अपने स्वामी पर वैसाही प्रेम था मानो उस सिंह को यह ज्ञानही न था कि यह स्वामी भी वैसेही रुधिर मांस का पिंड है जैसा मैं प्रति दिन बड़े प्रेम से खाता हूँ। वह सिंह अपने स्वामी को दूर से देखतेही दौड के आता और पूँछ सटका पांव चाटने लगता उसके पीछे २ फिरता और हर बात में प्यार की आंख से देखता था।

एक समय एक कुरसी पर उसका स्वामी बैठा था और हाथ में एक छोटी सी किताब लिये पढ रहा था भोरका समय था, ठण्डी हवा चल-रही थी। सामने बगीचे के हरएक पौधों के पत्ते ओस की छोटी बूँदों-का बोझा उठा रहे थे, कुन्द और सदा गुलाब की सुगन्ध से आकाश भी प्रसन्न दीख पड़ता था। इतनी देर में सामने का पिंजरा उसकी आज्ञा से खोलागया और सिंह भी पूँछ हिलाता उसके पास आया। उसके स्वामी ने पहिले उसके शिर पर हाथ फेरा फिर पुचकार पुचकार गर्दन झाड़ अपनी बांई ओर बैठाया वह भी उबासी ले कुछ बांई ओर-से कुछ पीछे तक कुरसी घेरता हुवा बैठगया।

उसका स्वामी किताब पढता जाता था कभी कभी अपने पाले हुवे, शेर के बच्चे को देखता और कभी बांयां हाथ उसके कान और शिर पर

फेरता और कभी उसकी ओर अपने को देख, चारों ओर इस भाव की आंख पसारता कि "मेरे ऐसा संसार में और ऐसा कौन है, जिस सिंह का नाम सुनते लोगों को दस्त होता है वही मेरे साथ बकरी की भांति पूँछ हिलाता दौड़ता है। किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे समय मेरे सामने आवे मैं अँगुलीसे भी इशारा करूँ तो यह बड़े २ गजराजों का भी कुम्भ-स्थल व अस्थि चीर डाले और रुधिर की नदी बहादे" इन्हीं घमण्डों में भर इधर उधर देख भाल वह फिर अपने हाथ की किताब पढने लगा। उसका बांया हाथ बाईं ओर कुरसी के नीचे लटकता था। यह सिंह उसी हाथ के पास मुँह किये बैठा था और धीरे धीरे उसका हाथ चाटता जाता था।

उसके स्वामी की कुछ भी उधर दृष्टि न थी यहां तक कि उसे हाथ चाटते चाटते लगभग आधा घण्टा होगया। तब उसकी जीभ के रगडेसे हाथ में कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह की भी जीभ में कुछ स्वाद लगने लगा। जब इसका हाथ कुछ छर छराया तो उसने अकस्मात् अपना हाथ खींचा उस समय पहिले तो सिंह ने जीभ की अलसेट से हाथ खींचने न दिया और इसने झटका तो सिंह गरज उठा। इसने देखा कि सिंह की त्यौरी बदली तब यदि उसी समय घबरा फिर हाथ खींचते तब तो समाप्त थे पर उन्हों ने धीरज को स्थान दिया और हाथ वैसेही सिंह-के मुँह के पास रक्खा और किताब की ओर मुँह कर अपने नौकर को पुकारा। नौकर के सामने आतेही उस सिंह के प्रेमी ने कहा कि चटपट जाओ और बङ्गले में भरी हुई दुनाली बन्दूक धरी है सो लाकर मेरे पीछे-से झुककर इस पाजी के पेट में और खोपडे में मारो नहीं तो दो मिनट में यह मुझे खाजायगा। वह नौकर भी रंग देख कांप उठा पर धीरज धर चट घर में गया और बन्दूक ले आया। कदाचित् देर तो आधीही मिनट की हुई होगी पर सब कोई समझ सक्ते हैं कि जिसका रुधिर सिंह चाट रहा था और जिसे पलक पलक मौत का भय पूरा पूरा होता था उस बिचारे को वह अल्प क्षण भी कितना बडा और कडा जान पडा होगा

इतने में उस चतुर नौकर ने आंडही आड समीप आय हाथ डेढ हाथ की दूरी से सिंह के पेट पर ऐसी गोली लगाई कि वह मछली की भांति भूमि में लोट गया और दूसरी उसके कपाल पर ऐसी दी कि विचारे ने सांस तक न लिया ॥

देखिये यदि यह विचारा पहले ही घबरा जाता तो प्राण जाने में क्या सन्देह था ॥

पुराणों में जितनी नल, राम, युधिष्ठिरादि की कथा हैं उनमें आदि से अन्त तक धैर्य का प्रकरण भरा है और जितने आज तक एक से एक पराक्रमी और वीर, प्रतापी, तथा यशस्वी पुरुष होगये हैं उनकी उन्नति का प्रधान कारण धर्यही मिला है ॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ क्षमा ॥

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति क्षुद्र समझाजाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसी से कुछ अपकार की शंका हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसी के मुँह से भ्रम से भी कुछ कड़ा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे । किसी ने अल्प अपराध भी किया तो उसपर टूट पडे वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिन को क्षमा नहीं उनके लडकेवाले दुर्बल होते हैं क्योंकि वे बात २ में घुसे और घुडके जाते हैं और बात बात में मार खाते हैं । उनसें जी खोल कर कोई बात नहीं करता क्योंकि यह सबको आशंका रहती है कि बातों में कोई अनुचित न होजाय। जिसको क्षमा नहीं है उससे कितनेही काम चट पट में ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्म भर उसका पछतावा रह जाता है। क्षमा रहित पुरुष राज सभाओं में तो कभी टिकही नहीं सकते। जैसे किसी कटोरेमें जल हो तो उस में जहां कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला यह स्वभाव अक्षम पुरुषों का है समुद्र में पहाड आपडै तो भी उसका बढना घटना फैलना कुछ नहीं विदित होता, यह

स्वभाव क्षमावान पुरुषों का है। जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूँकता चलै और गजराज उस पर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं विगड़ता वैसे ही क्षमा शील पुरुष यदि तुच्छों की बक बक पर ध्यान न दें तो उनकी क्या हानि है ? यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों समझ लेना कि–

जाके ढिग बहु गारी है हैं, सोही गारी दै है।
गारी वारो आप कहै है, हमरो का घटि जै है॥

कोई कोई समझते हैं कि "जो हमको गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तब तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी" पर यह उलटी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा झगड़ा चला, झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिए पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को पसन्द न पडी वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय हैं पर तपस्वी हैं इसलिए राजर्षि कहला सकते हैं परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं, इसी बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से शत्रुता बांधी विश्वामित्र वार २ अधिक २ करके आते थे और वशिष्ठजी से झगडा करते थे पर वशिष्ठजी उनपर क्षमा ही रखते थे पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक वार विश्वामित्र वहुत तप करके आये और वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमें ब्राह्मण कहो नहीं युद्ध करो वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े होगए, विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र चलाने लगे परन्तु वशिष्ठ जी ने अपने तपोबल से सब को उसी दण्ड पर रोका, जब विश्वामित्र कोटि कला कर हारे, तब वशिष्ठ जी ने कहा कि भाई और कोई शस्त्र अस्त्र बाकी हो तो चलालो फिर हम भी आरम्भ करेंगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोडे और वशिष्ठजीने क्षमा किया। कालान्तर में वशिष्ठजी एक समय अपनी कुटी में बैठे आंख बन्द किये ध्यान कर रहे थे और अन्धेरी रात थी चारों ओर

मारे अन्धकार के ऐसा जान पड़ता था कि काजल की आंधी चल रही है अथवा स्याही की वर्षा होरही है। काले मेघ मण्डल से तारों का भी प्रकाश बन्द होगया था। उस समय विश्वामित्र के चित्त में यह बात आई कि जितने ब्राह्मण हैं वे वशिष्ठ ही पर ढलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ ब्राह्मण कहैं तो हम लोग भी ब्राह्मण कहैं और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो हमें ब्राह्मण न कहैगा। तो इस अन्धेरे में वशिष्ठ का शिर काट डालना चाहिए। यह विचार चोर की भाँति तलवार ले वशिष्ठ की कुटीमें घुसे, दैवात वशिष्ठ की समाधि खुली, वशिष्ठ ने पूछा कौन है? तो विश्वामित्र ने कहा कि तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते इसलिए मैं तुम्हारा शिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा कि आपही सोच लीजिए क्या जो पाप करने आप आये हैं ऐसेही ब्राह्मणों के कर्म होते हैं? क्या ऐसेही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं? यह सुनतेही विश्वामित्र लज्जित होगए, और तलवार दूर फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपने अपराध क्षमा कराने लगे, वशिष्ठजीने कहा कि हमें कुछ बदला नहीं लेना है कि आप क्षमा मांगें पर देखिए जिस समय आप अहङ्कार से ऊँचे बनने का डङ्का दे युद्ध का डौल बांधते थे तब सबकी दृष्टि में आप छोटे जँचते थे और अब आप हाथ जोड़े अपने को तुच्छ समझे बैठे हैं तो हमारी दृष्टि में ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आपके हृदयमें अहङ्कार नहीं क्रोध नहीं, छल नहीं, ईर्षा नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं, बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सबसे बड़े हैं विश्वामित्रजी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठजी का इतना भारी क्षमा गुण देख सबको आश्चर्य हुआ,। इस लिए यही चित्त में जमा के रखना चाहिए कि—

दो०—क्षमा सकल गुण में बडो, क्षमा पुण्य की मूल।
क्षमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत वसु जाम।
क्षमा शील निज गुनन तें, सुखी रहत सब ठाम॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ उपनयन ॥

हिन्दू धर्म्म में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिये उपनयन भी एक प्रधान धर्म्म है। उपनयनही के कारण ये लोग द्विजाति कहलाते हैं क्योंकि एक जन्म तो माता के गर्भसे और दूसरा जन्म उपनयन संस्कार समझा जाता है। उपनयन संस्कार में कोई यद्वा नहीं और उपनयन संस्कार में कोई अथवा नहीं। यहां तक मनुने लिखा है कि "इतऊर्द्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः" नियत समय पर उपनयन न करने ही से मनुष्य पतित होजाता है और समय विता के करने से फिर प्रायश्चित्त करना पडता है। देखने में तो यह छोटासा नौ तार का डोरा है पर सब विद्या और मतों का मूलभूत वह, उपनयन विना काम में नहीं आसक्ता। अर्थात् उपनयन के अनन्तरहीं वेदारम्भ की विधि है और उपनयन के अधिकारी न होने से ही शूद्रों के मुख कमल पर वेद के भौंरे का झङ्कार नहीं होता।

इसी उपनयन के लिये उपनयन के अनधिकारी लोग मरे जाते हैं, किं "हाँ" हमको उपनयन नहीं। कोई २ गम्भीर हृदय होंतो उनके लिये हम लोग नहीं कहते परन्तु प्रायः ब्रह्म समाज और आर्य समाज में छोटेंही वर्ण वालों ने अधिकांश आश्रय लियाहै और "जनेऊ जनेऊ" ले के भारी हल्ला होरहा है। ब्रह्मसमाज ने तो द्विजाति अद्विजाति को एक तराजू पर तोलने का यह ढङ्ग निकाला है किं सबको वे जनेऊ का नङ्ग मुनङ्गा कर बन्धन रहित कर डाला। क्या जानें क्या समझके उन लोगों ने अभी तक बनर्जी मुकर्जी, आदि ब्राह्मण वंश बोधक नाम नहीं बदले हैं परन्तु शूद्रसे ब्राह्मण तक सब धान बाईस पसेरी होरहे हैं॥

आर्य समाज वालों ने जनेऊ कुछ अच्छी समझी सो हेतु वाद के झोक में एक वेर विचारी सूथन के ईजारबन्द में फँसा दी कुछ समझ बूझ तोड के न फेंकी। पर इतने से जिन महाशयों का प्रधान मण्डल इस समाज में आ फँसा है और जिनके ही द्वारा समाज का श्वेत

कृष्ण रूप झलकता है उनको द्विजों से कम रखने में उनका कैसे उत्साह बढेगा यह विचार सबकी समता के लिये उन्होंने सबको उपवीत का अधिकार दिया और सबको इसी के द्वारा वैदिक बनाना चाहा ॥

अब आप लोगों को विस्तार से कुछ नहीं कहना है। आप लोग स्वयं समझ गये हैं कि यह जनेऊ किस बड़े मोलकी चीज है। इसी जनेऊ के छीनने को मुगलों ने सैकडों बेर रुधिरों की नदियां बहाईं, और हाडों के पहाड़ चुने और इसी जनेऊ को बनाने के लिये लाखों सिक्ख राजपूतानी और मरहटों ने अपने सिरों को अपनी हथेली पर रख वीररस की वृष्टि की इसी यज्ञोपवीत के विषय में नागेश भट्ट ने बड़ा पोथा बनाया और यह सिद्ध किया कि कलयुग में केवल ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण हैं इस कारण ब्राह्मण छोड़ और किसी का उपनयन न हो। इसी उपनयन के विषय में काशी के पण्डित घनश्याम जी गौड़ने बडी धूमधाम की सभायें कीं और महाराष्ट्र लोग देखतेही रहे पर उन्होंने सैकड़ों अग्रवाल वैश्य और क्षात्रियों को जनेऊ देही दी। इसी यज्ञोपवीत के विषय पर पण्डित रामामिश्र शास्त्री जीने व्रात्य संस्कार मीमांसा नामक धूमधाम का ग्रन्थ बनाया और जो लोग क्षत्रियों तथा वैश्यों के उपनयन के विरोधी थे उनको चुपाकिया, जिसके खण्डन के लिये आजतक किसी के सिर में खुजाल भी न चली। हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से कहते हैं कि बाबा अब भी तो समझो, जिस अमृत के लेने को चारों ओर सहस्रों कङ्गले झुक रहे हैं और जिसमें केवल विघ्न डालने को बड़े २ राक्षस दांत कटकटाते फिरते हैं वह अमृत की थाली आप लोगों के लिये परोसी है। आप इसे लात मार न हटाइये। आप के कुल में कुछ काल से उपनयन छूटगया हो तो भी हानि नहीं है. प्रायश्चित्त करके जनेऊ लीजिये और कुल तारिये ॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति ॥

इस लेख में इस बातका विचार किया जायगा कि हमारे प्राचीन लोगों की उन्नति और अर्वाचीन पाश्चात्य लोगों की खोज में बराबरी कहां है और भेदका कहांपर आरम्भ होता है ? जिनका वर्णन रामायण महाभारतादि ग्रन्थों में अलौकिक प्रकार से किया जाता है, सम्भव नहीं कि वे महात्मागण बिना किसी अलौकिक साधन के उन्नति को पागये हों. आजकल के पश्चिमी लोग जिन यन्त्रादि साधनों से उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं वे साधन उन प्राचीन महात्माओं के पास नहीं थे ! इससे अनुमान होता है. कि एक ही परिणाम को उत्पन्न करनेवाले दो भिन्न भिन्न प्रकार के साधन अर्वाचीन और प्राचीन लोगों को प्राप्त होंगे ! अब इस बात का विचार करना उचित जान पडता है। कि हमारे उस अनुमान को प्राचीन ग्रन्थों से कितना अवलम्ब मिलता है।

आज कल ऐसी २ अद्भुत खोजों का पता लगता है और ऐसी ऐसी युक्तियां निकलती रहती हैं कि उनको देखकर मनुष्यों का मन चकित होजाता है ! निःसन्देह इस समय की खोज और युक्तियां सही हैं, तथा उनका प्रचार करनेवाले सर्वथा प्रशंसनीय हैं । परन्तु आज कल की खोज से जो बातें सिद्ध हुई हैं, अथवा जिनका सिद्ध होना सम्भव है उन बातों को प्राचीन लोग भी भली भांति जानते थे। इसमें कोई शङ्का नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार इस समय के पश्चिमी लोग अपने मनोगत कार्यों को सफल कर लेते हैं, वैसे ही हमारे पूर्वजभी अपने इष्ट हेतु को सिद्ध कर लेते थे, परन्तु दोनों के मार्ग अलग २ हुए ! आजकल के मनुष्योंको एक घण्टे में दस या बीस कोस जाता हुआ देख कर आश्चर्य हुआ करता है, परन्तु पहिले महात्मा भी अल्प काल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते थे, इसमें कोई शङ्का नहीं कि बिना यन्त्र का और बिना तारके तार का आविष्कार करनेवालों का बारम्बार बखान किया जाता है, परन्तु प्राचीनकालके विद्वानगण इन यन्त्रों के न जानने परभी

हजारों कोसपर रहते हुए मनुष्य का वृत्तान्त पलक मारने में जान लेते थे। परन्तु दोनों का मार्ग अलग २ था, इस पुराने और नए मार्गको अलग २ करके देखनेपर यह ज्ञात होजाता है कि इस समयका मार्ग भौतिक है। और उस समयका मार्ग मानसिक था। पानी, पवन, बर्फ, बिजली इत्यादि सृष्टि के जड पदार्थों के गुण धर्म को अत्यन्त सूक्ष्म रीति से अनुशीलन करके पश्चिमी लोगों ने उनपर पूर्ण विजय पाई है, और उन सब पदार्थों को अपना दास बनाकर इच्छानुसार कार्य कराते हैं।

इधर धर्म ग्रन्थों में रावणादिक दैत्यों के और राक्षसों के वैभव वर्णनसे बोध होता है कि उनके घरों में पवन देवता बुहारी देते थे और मसालची का काम सूर्य को सौंपा गया था, पुराणों के इस सत्य वर्णन को जो नई रोशनी वाले कल्पना प्रसूत बताया करते हैं उनको उचित है कि आज कल के विज्ञान को देख कर उन सब बातों को यथार्थ जानें। आज कल के विज्ञान को पञ्च महाभूतों के ऊपर स्वत्त्व प्राप्त कर लेने का फलही समझना चाहिए।

इस समय के विद्वानों ने इन महा भूतों के गुणधर्म को खोज करनेमें अपना सारा सामर्थ्य लगा दिया। परन्तु हमारे पूर्वजों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मानसिक गुणधर्मकी खोजमें व्ययकी थी और उन शास्त्रोंके अभ्यास से मानसिक सामर्थ्य को जान लेने के कारण उस शक्ति के बलसे इस समय की अपेक्षा सौ गुने व हजार गुने आश्चर्यकारक कार्य कर गए हैं। पूर्व कालीन महात्मागण योग का ही पदार्थ विज्ञान शास्त्र समझतेथे। पदार्थ विज्ञान शास्त्र तथा आधिभौतिक सृष्टि से व्यवहार रखनेवाले इतर अर्वाचीन शास्त्र निम्न श्रेणीके माने जाते थे। परन्तु योग शास्त्र उच्च श्रेणी का समझा गया है। पदार्थ विज्ञानादिक शास्त्रों से ईश्वर बहुत ही दूर है। परन्तु योग शास्त्र ठीक २ परमेश्वरके निकट ही अपने साधक को पहुंचा देताहै। यदि परमेश्वर को कोई कार्य करना होता है तो वह लोहे के बडे २ डन्डों पर फौलादी

पहियों को जोर के साथ नहीं घुमाता है, मनमें विचार करते ही वह अपने कार्यको पूर्ण कर लेता है, और यही तत्त्व योगशास्त्र का अनुसरण करता है। इसही कारण से यह शास्त्र ईश्वर के निकट का शास्त्र माना गया है। हमारे पूर्वजों ने इस शास्त्र का अभ्यास दीर्घ काल तक किया था, यह शास्त्र अधिक व्यापक है, इस एकही शास्त्र को सीख लेने से समस्त शास्त्रों के सीख लेने का फल होता है। यदि कोई रेलगाड़ी और ऐंजिन बनाना जानता हो तो उसको बिना सीखे हुए मार्कोनी के अभ्यास किये तार का काम कदापि नहीं आसकता। परन्तु जिसके मनमें योग के द्वारा सामर्थ्य उत्पन्न होगई है, वह पलभर में सहस्रों कोस जासकता है और घर बैठे ही बैठे एक क्षण भर में सहस्रों कोस की दूरी का वृत्तान्त जान सकता है। इसी से भलीभांति योग शास्त्र की व्यापकता को प्रत्येक मनुष्य समझलेगा, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार के अद्भुत और व्यापक योग शास्त्र को पाकर भी हम हीन दीन से बैठे हुये आज-कल बातों पर आश्चर्य किया करते हैं, कि अमुक ने अमुक यन्त्र निकाला और अमुक ने अमुक कार्य किया। हमारे पूर्वज महात्मा इस योगशास्त्र के बलसे ही बलवान् हुयेथे। यह योगशास्त्र असाधारण शास्त्र है। अतएव इसही कारण से इसमें सब बातों का समावेश होता है। आजकल बहुधा दिल्लगी से यह प्रश्न किया जाता है, कि वेदों में कहीं रेल और तार का भी जिकर है?

उसके उत्तर में निवेदन यही है कि वेदों में रेल तार ही नहीं वरन सब ही कलाकौशल वर्त्तमान है, परन्तु इस कलाकौशल के जानने और देखने के लिये संस्कृत हृदय तथा संस्कृत नेत्रों की आवश्यकता है। आज़कल किसी स्टेशन पर खडी हुई किसी आगगाड़ी कोही धूमयान नहीं समझना चाहिये परन्तु आगगाड़ी अर्थात् अति शीघ्रता के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने वाले विशिष्ट साधन का नाम आगगाडी अथवा धूमयान है ऐसा सरलार्थ ग्रहण करने से ज्ञात होता है कि वेद में धूमयान अवश्य है, और वैदिक ऋषिगणों के पास भी निश्चय

इस प्रकार की आगगाडी अथवा रेल गाड़ी थी। इसही भांति की दृष्टि से देखने पर रेलगाड़ी के अतिरिक्त मशीनगन्स (कल से चलनेवाली तोपें) भी हमारे पूर्वजों के पास थीं आजकल की मशीनगन्स में जैसे एकाध पहिया होता है, और उसके द्वारा बहुत से कारतूस एकही टोंटे में होकर निकलते चले जाते हैं, वैसे ही हमारी मशीनगन्स नहीं बनी थीं, परन्तु आजकल की मशीनगन्स जिस प्रकार अनेक लोगों का संहार करडालती हैं, वैसेही पूर्व कालीन मशीनगन्स भी अनकला गौ का संहार करडालती थीं, हमारी पूर्व कालीन मशीनगन्स दुष्ट जनों का संहार करने में नियुक्त थीं पवित्र तेजस्वी, तपस्वी, तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण उन वैदिक तोपों के गोलन्दाज थे हमारी इन अद्भुत तोपों पर आजकल धूलि पड़गई है, मोरचा लगगया है। इसके अतिरिक्त वैसे गोलन्दाज भी अब नहीं मिलते। इसही कारण से, वह दुष्टजन संहारकारिणी मशीनगन्स इस समय निकम्मी पडी हुई हैं। वेद में विशेष करके अथर्व वेद में अनेक प्रकार के मन्त्र लिखे हैं, पुरश्चरण के द्वारा सिद्ध करने पर वे मन्त्र तत्काल फल देते हैं ऐसे बहुत से मन्त्र हैं। परन्तु केवल रुद्र के कितने एक मन्त्रों का पुरश्चरण फल यहां लिखा जाता है, जिससे यह ज्ञात होगा कि उन मन्त्रों को "हमारी प्राचीन मशीनगन्स" नाम देना कैसा उचित और युक्ति युक्त है।

रुद्र के पहिले अध्याय की १०, ११, १२ इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण करने से "युद्धोपनीताः शत्रवोहीयन्ते" अर्थात् युद्ध करने को आगे खड़े हुए शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा फल कहा है। इसही प्रकार उसही अनुवाक की १३। १४ और पन्द्रह ऋचाओं में भी मशीनगन्स की नाईं अद्भुत-सामर्थ्य आगे के प्रमाण से विदित होगी।

एताभिरपि संग्रामकाले तैलमेकादशप्रदीपसहस्राहँ द्रोण्यां प्रक्षिप्य तत्र देवमावाह्य लोकपालैः सहाराध्य स्पृष्ट्वा तैलं सप्तदिनानि प्रतिदिनमष्टसहस्रं जपेत्।

तेन सिद्धतैलेन प्रदीपानेकादशसहस्रमारोप्य शत्रुराज्ये प्रत्यासन्नेराजानं विना सेनानीः पुरोगच्छेत् । दृष्ट्वादीपज्वालां शत्रुसेनानावतिष्ठते । एतत्प्रभावादेवशत्रवो विनश्यन्ति । अन्यदपिएताभिरेवारातिनगरे सिद्धवेषधारिणो ब्राह्मणाः शक्तामन्त्रसिद्धाः शत्रोरभिचारं कुर्युः राजायदुपर्युक्ते वस्तुतदेताभिः स्पृष्ट्वा चदृष्ट्वा च स्पर्शनदर्शनायोग्यं तन्मुखाच्छ्रुत्वा अभिचारो स्त्वितिजपेयुः । मन्त्रान्तेऽन्यदपिशंकुनिधाय नगरचतुष्पथे देवालये देवारामे सालखातयोरन्यतरस्मिन्नपि नगराङ्गभूते सहस्राभिमन्त्रितंखनेयुः । तन्नगरं शम्भुकोपात्संवत्सरत्रयान्नश्यति व्याधिना"

इस मन्त्र के पुरश्चरण की सामर्थ्य उपरोक्त संस्कृत में इस प्रकार से कही है कि इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित तेल के उजियाले को देखते ही शत्रु की सेना अपने सामने खड़ी नहीं हो सकेगी, तैसेही जिसने इस मन्त्र को सिद्ध कर लिया है उस सिद्ध वेषधारी ब्राह्मण को अभिचार करने के लिए शत्रु के राज्य में भेजे यदि वह ब्राह्मण अभिमन्त्रित करके कोई कील शत्रु के राज्य में गाड़ दे तो ३ वर्ष के भीतर ही भीतर वह नगर किसी न रोग से विध्वंस हो जायगा।

रुद्र के दूसरे समस्त अनुवाक के पुरश्चरण का फल इस प्रकार से कहा है कि—

शत्रूणां मारककामो रक्तसर्षपांस्तैलाक्तानयुतं जुहुयादृतावृतौतेन कर्मणा शत्रवो नश्यन्ति। युद्धे प्रत्यासन्ने देवस्यपरिमांजिष्ठं पटमारोप्य स्वयं शुद्धोभूत्वा दक्षिणहस्तां-

गुष्ठेन एतद्गच्छत्यनुवाकान्तेवदन्नष्टसहस्रं पञ्चदिनानि-शपेत् । शत्रुणांराजा स्थानाद्गच्छति ।

भावार्थ ऐसा है कि इस पुरश्चरण को करके लाल सरसों को तेल में भिजो लेवे और उससे हवन करै तो शत्रु का नाश होता है । तैसेही सरसों की पिट्टी को महादेवजी पर लेप करै और शत्रु का नाम लेके आठ हजार जप करनेसे शत्रु को भयंकर ज्वर आवेगा और उसी ज्वर से शत्रु नष्ट होजायगा। इसी भांति से शत्रु के राजा पर इस मन्त्र के जप का कुछ प्रयोग करने से वह निज स्थान से भ्रष्ट होता है इस दूसरे अनुवाक की नांई तीसरे अनुवाक का भी यही फल है यथाः——

राजा चान्यतरस्य राष्ट्रस्यरोगबाहुल्यमिच्छन्नाम्रेव वागहौदिभिर्मांसैर्लक्षं होमः कार्यः । रिपुराष्ट्रं समुद्दि-श्याभिचारं करोमि फट् स्वाहेति । एवंमांसहोमेनरिपुरा-ष्ट्रं प्रजाश्चशुष्यन्ति । अथवैकङ्कतसमिद्भीरक्त सूत्र-वेष्टिताभिः शतसहस्रंहोमः । अनेनशत्रोः महाज्वरो भवति । परराष्ट्रजनैरुपभोग्यं जलादिकं वस्तुस्पृष्ट्वा वीक्ष्यवाशतसहस्रं जपं कुर्यात् । यस्तद्वस्तूपयुंक्ते सस-म्वत्सरान्नश्यति । श्मशानाग्नावर्कसमिद्भिरासम्वत्सरं जुहुयात् । तेनशत्रुनगरं व्याधिनानश्यति । अकारिण्यं भवति । अनेनैव चामुण्डालये दक्षिणाभिमुखोभूत्वा मा-षतैलाक्तैरेकादशसहस्रं जुहुयात् । परराष्ट्रप्रजाच मसू-रिकाभिर्बाध्यते । अनेनैवापरमुच्यते । पश्चिमद्वारेशम्भो-रालये देवस्य पादपीठे अग्निमपस्मारिणं स्पृष्ट्वा सप्तस-हस्रं जपेत् । शत्रुराज्यंस्मृत्वा मन्त्रान्ते प्रज्वलज्ज्वालाप

स्मारिन् इति वदेत्। एतेनराजशत्रोरपस्मारोभवति। अनेनैवसर्वपदगं राजानंस्मृत्वा शुद्धतण्डुलकृतपिष्टैराहुतिमात्रैः शतसहस्रहोमेन राजयक्ष्मोत्पद्यते। तेनविनश्यति।

पश्चिम वालों की आविष्कार की हुई मशीनगन्स जैसे भांति २ की होती हैं वैसेही हमारी प्राचीन गन्स भी भिन्न २ प्रकार की हैं। इस तीसरे अनुवाक की मशीनगन्स का प्रभाव इस प्रकार का है कि इसके द्वारा शत्रु का देश और उसकी प्रजा रोग से सूख जाती है और शत्रु के अङ्ग में महाज्वर उत्पन्न होता है। शत्रुके देश की जलादि वस्तुओं को देख के या स्पर्श करके यदि इस मन्त्र का एक लक्ष जप किया जाये तो उसका व्यवहार करने वाला एक वर्ष में नष्ट होता है। इसी मन्त्र के एक दूसरे साधन से शत्रु के नगर का नाश व्याधि से होता है और उस देश में रोग का वास होजाता है तथा वहां आक का वन जमता है। इस मन्त्र से शत्रु के राज्य में मसूरिका इत्यादि रोग फैलते हैं व अपस्मार क्षयी इत्यादि रोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं। पांचवें और छठे अनुवाक के फल भी कुछ इसी प्रकार के कहे हैं यथा—

एताभ्यां संग्रामे प्रत्यासन्ने राज्ञो महानसपक्वान्नेवसोपदंशेन भक्तेन दधिमधुघृताक्तेन प्रतिनमस्कारं एकादश कृत्वा हुत्वा शेषं बलिंभूमौ विधायादाय जलमिश्रं पात्रेण नामभिःप्रक्षिपेत्। सासेनाचिरान्नष्टा भवति एताभ्यामेव राज्ञः सर्वायुधानि स्पृष्ट्वा सहस्रमभिमन्त्रयेत् तेषांतेजो बर्धते एताभ्यामेव परसेनांप्रतिक्षिपेत् साहिसेना चिरं नष्टा भवति। एताभ्यामेव परसेनास्तम्भ उच्यते। अर्कसमिद्भिरादित्यंप्रतिनमस्कारं शतसहस्रंजुहुयात्। परसेनास्तम्भं करोमि स्वाहा। एवं कृते शत्रुसेना स्तम्भिता भवति। एताभ्या-

मेव राज्ञः सर्वाणि भोज्यवस्तून्यभिमन्त्रयेत तान्यमृतानि भवन्ति ॥

इस पांचवें और छठे अनुवाक की मशीनगन से शत्रु की सेना तत्काल नष्ट की जा सकती है। और जहां की तहां स्तब्ध होसकती है। यदि अपने राजा के अस्त्र शस्त्रों को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित किया जाय तो उसका तेज वढता है. तथा राजा के भोजन की वस्तु अभिमन्त्रित की जांय तो उनमें अमृत की समान गुण होता है। नवे अनुवाक के चौदहवें मन्त्र का पुरश्चरण फल नीचे लिखे अनुसार है।

राजाशत्रुनाशकामोऽतिशक्तेन ब्राह्मणेन कारयेत् । शत्रुं राजानं महाखदिररूपिणं कृत्वा कस्मिंश्चिद्विविक्ते देशे जलपूर्णकुम्भेदेवतामावाह्य तत्संनिधावग्निमाधाय शमीसमिद्भिः सकण्टकाभिः शतसहस्रं जुहुयात् । रुधिरंच बिडालं प्रशस्तं भवति । ततस्तद्रूपं प्रत्यङ्गलोहशङ्कुभिः प्रतिनमस्कारं खानयित्वा तदुपरिराजा स्वापदं विन्यसेत् । विन्यासकाले गुरुर्जपेत्। ततो राजा ब्राह्मणानां शतं भोजयेत्। ततो देवं विसर्जयेत् । एवं कृते परराजा संवत्सरत्रयान्नष्टो भवति । अन्यच्च तदेव रूपंसशृङ्खलं कृत्वा पूर्ववद्धोमः ततो राजाऽचिराच्छृङ्खली राज्ञोवश्यत्वं व्रजेत् । अन्यदपि वक्ष्यते । शत्रुराजनगरे कृत्रिमवेषधारिणोराजपुरुषाः सब्राह्मणाः सिद्धाः प्रविश्य चतुष्पथेषु देवालयेषु राजसभासु राजद्वारे च लोहशंकूनर्पिताञ्शतसहस्राभिमन्त्रितान्कृत्वा गुप्तान्यसेयुः । ततो भस्माभिमंत्रितं सर्वतो विकिरेयुः । जलमपि वि-

किरेयुः। एवं कृते तत्पुरमासंवत्सरत्रयान्नष्टं भवति। तत्र खदिरबदर्यादयो वनस्पतयो रोहन्ति। ततो विकृतवेषाः परराजपुरजलाशयेषु कण्ठप्रमाणे जलेतपः कुर्वन्तः सूर्याभिमुखाः अष्टशतदिनानि प्रतिदिनमष्टशतगुणंजपेयुः। जपकाले भगवते हालाहलमेव कराभ्यामभिमन्त्रयेयुः। एवं कृते तज्जलपायिनो वाहनादयो विषदष्टा इव नश्यन्ति।

इस मन्त्र की मशीनगन्सें में जप के कारतूस भरे जाने पर तीन वर्षमें शत्रुका नाश होजाता है व उपरोक्त दूसरी विधि के द्वारा शत्रु का नगर भी तीन वर्ष के भीतर ही भीतर ऊजड़ होता है और वहां खैर तथा बेरी के वृक्ष जम जाते हैं। यदि इसी मन्त्र के द्वारा शत्रु नगर:का पानी अभिमन्त्रित किया जाय तो उस पानी को पीतेही शत्रु के हाथी घोडे विष से व्याकुल होकर मर जाते हैं। दशवें अनुवाक की आठवीं ऋचा का विधि पूर्वक पुरश्चरण करने पर उसका पर्यवसान इस प्रकार से होता है। यथा—

वैकङ्कतसमिधा विषतैलाक्तानां श्मशानाग्नौ लक्षं जुहुयात्। शत्रवो नश्यंति। शत्रुनामग्रहणंकृत्वा देवस्य सन्निधौ भस्मपाणिरयुतं जपेत्। तस्यशत्रोर्महाज्वरो भवति। श्वेतसिद्धार्थैरयुतं जुहुयात्। शत्रोर्मसूरिका जायन्ते ताभिरेवम्रियंते। शत्रोर्गृहे क्षेत्रादिषु मन्त्रेणालेनावटं खानयित्वातत्रकलपरोमास्थिशर्करादिकं खातयेत्। तस्यशीघ्रं नाशो भवति।

शत्रु का नाश, शत्रुको महाज्वर, माता इत्यादि रोगोंकी महामारी इत्यादि इस मशीनगन्स के द्वारा उत्पन्न होती हैं। उपरोक्त दसवें अनुवाक

की एकादश ऋचा के पुरश्चरण में एक प्रकार की अलौकिक सामर्थ्य लिखी है। यथा----

सर्वांजेतुकामोऽपामार्गसमिधां कपिलाज्यसिक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। एतेनैववराहादयोवश्याभवन्ति। तिरश्चोजेतुकामो बिल्वसमिधां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अपोजेतु कामो जलस्य मध्ये आत्माग्निमाधाय कपिलेन पयसाशतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अद्भ्योभयं न जायते। एवमन्यदपि यद्यज्जेतुकामो भवति तन्नामग्रहणं कृत्वाकापिलाज्येन शतसहस्रैर्जुहुयात्। तत्तत्सर्वंजयति।

इस मशीन की सहायतासे सबपर जय प्राप्त होती है और वराहादिक क्रूर पशुभी वशमें आजातेहैं फिर इतर प्राणियों की तो बातही क्या है। पक्षीगण वश में होतेहैं पानीसे किसी समय भी भय नहीं होता। जिस २ का नाम लेकर यह मन्त्र जपा जाता है, वह सबही साधक के आधीन होजाते हैं। इस प्रकार रुद्र के भिन्न २ मन्त्रों का फल है वरन रुद्र की समस्त एकादशिनी ऐसी ही प्रभावशाली है। यथाः ----

शत्रुमारणकामः पूर्वोक्तविधिना मन्त्रन्यासादि कृत्वा दिक्पालेभ्यो रक्तोदनबलीन्दत्त्वा स्तुहिश्रुतम्। इत्यनेन षोडशोपचारान्कृत्वा रुद्रैकादशिनीमेकादश कृत्वो जपित्वा पुनः स्तुहिश्रुतम्। इति सहस्रंजपेत्प्रत्यहम् सप्तरात्रेण शत्रुबिनाशो भवति। अथ कृत्यामुत्पादयितुकामोरक्तवाससा रक्तोष्णीषो रक्तमाल्यानुलेपनैर्देवमर्चयेत्। श्मशानाङ्गणे लोहितशलाकाः प्रादेशमात्रा महा-

तैलाक्ता लक्षं जुहुयात् । "उत्तिष्ठरक्ताङ्गि रक्तनेत्रे रक्त-केशि" । कन्यांतां क्षिप्रमेवरुधिरकुम्भेन । पूर्णमांस-मात्रेणतर्पयेत् । अन्यथाकर्त्तारमेवहिंसेत् । सात्वरिता यन्त्रिता वदति । "कंधर्षयामिवदमां ज्ञायते यदि त्रैलोक्यस्थितमऽभ्युत्सादयिष्यामि" ॥ इति तथा चैकैकस्यशरीरस्य ग्रामे नगरे गृहेच प्रयोगः । प्रमुञ्च धन्वन—इति षड्भिरायुधमभिमन्त्र्य संग्रामोपनीताः शत्रवः पलायन्ते । अभिमुखा नावतिष्ठन्ते । 'विकिरिद विलोहित इति यथाशत्रुभिरनेकपर्यायंसुप्तशत्रुमुखे-जुहुयात् । सर्वे विभग्नमनसोविमुखाः शत्रवश्चपलायन्ते 'नमोहिरण्य' इत्यनुवाकैः कटुतैलाक्तानां राजाभिशङ्कि-तानां सर्षपाञ्जुहुयात् चक्रमुत्सादयति । फट्कारेणदे-वस्योपरिमाला मधोशिरामवलम्ब्य सशिरसा वस्त्रेण रुधिरमाप्लाव्य त्रिकुटकेनाभ्यज्य देवकरांगुलिना रेखामुत्पाद्य शत्रोर्नामानुस्मरञ्जपेत् । सबलसमुदायं शत्रुमुच्चारयति । एवं कृत्स्नं ग्राममुच्चारयति एका-हेन । राजानमहोरात्रेण संपूर्णमर्धदिवसेन क्षत्रियं क्षपयति । दिवसत्रिभागेनवैश्यं चतुर्भागेन शूद्रम् ।

इस विधान में शत्रु के नाश होने का प्रभाव है। उपरोक्त ऋचाओं में कृत्या को उत्पन्न करने का एक विधान कहा है। लाल कपड़ा लाल फूल, लाल गंध इत्यादि के द्वारा देवता का पूजन करे व श्मशान में लोहे की शलाका से हवन करते हुए 'उत्तिष्ठरक्ताङ्गिरक्त नेत्र रक्तकेशि' इस मन्त्र से उस कन्या को उठाय रक्त मांस से संतर्पित करे। इस क्रिया के द्वारा वह

कन्या उत्पन्न होकर. कहेगी कि किसका वध करूं? त्रिलोकी में वह चाहें जहां हो मैं उसको मारडालूंगी यदि ऐसा उग्र देवता सिद्ध होजाय तो उसके सामने आजकल की मशीनगन्स क्या वस्तु हैं ऐसी अमोघ मशीनगन्स के द्वारा शत्रु तत्काल पराजित होता है और गांव के गांव क्षणभर में विध्वंस होजाते हैं। उपरोक्त ऋचाओं से भलीभांति ज्ञात होता है कि मंत्रों के द्वारा इस प्रकार के अनेक और अद्भुत कार्य हो सकते हैं तथा यह भी जाना जायगा कि आजकल की मशीनगन्स से जो कार्य होते हैं उन्हीं कार्योंको हमारे पूर्वज लोग अपनी पुरानी मशीनगन्स से सिद्ध कर लेते थे। बरन नई मशीनगन्स की अपेक्षा पुरानी मशीनगन्स के परिणाम अधिक भिन्न २ हैं। इन पुरानी मशीनगन्स के गोलन्दाज इस समय अपनी विद्या को भूले हुए बैठे हैं और इस बात की प्रशंसा करते हैं कि पश्चिमी लोगों ने एक मिनट में हजारों गोले फेंकनेवाली तोप को आविष्कार करके जगत् को चकित व छकित कर डाला है, परन्तु इस बात का वह विचारे कभी भूल से भी ध्यान नहीं करते कि इसी परिणाम को हमारे पूर्वज लोग मानसिक शक्ति के द्वारा सरलता से करडालते थे। परन्तु प्रत्येक उन्नत राष्ट्र पर या उन्नत होते हुए राष्ट्र पर इसप्रकार की अद्भुत सामर्थ्य का साधन चाहें वह जड़ हो या सूक्ष्म—अवश्य होता है और बिना उसके पास रहे हुए उस राष्ट्र को श्रेष्ठत्व नहीं मिलता है। इस दृष्टि से रखने पर जाना जाता है कि आजकल के उन्नति राष्ट्र जिन साधनों को अपने पास रखते हैं, वैसेही मानसिक शक्ति के अपूर्व साधन हमारे प्राचीन राष्ट्रों के पास थे। ऐसे बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं जिन से यह प्रमाणित होता है कि हमारे पूर्वज तेजस्वी क्षत्रियोंने और ब्रह्मविद्या विशारद महर्षियों ने, घोर संग्रामों के अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों में अपने अपूर्व साधनों का व्यवहार किया था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाने पर भी लोग कठिनता से विश्वास करते हैं। पूर्व काल की चरचा से कौनसा लाभ है क्योंकि इस नास्तिकपन के जडवाद के और संसारी सुख भोग के, समय में इस प्रकार के अकाट्य सत्य पर विश्वास कराना बडा कठिन कार्य है। परन्तु

मत धर्म के सिद्धान्त जानकर इन वातों को सत्य मान लेना असम्भव भी नहीं है। इन वातों को सत्य समझ लेने के लिए मन को दृढ करना चाहिए, अन्तःकरण की वृत्ति स्थिर होनी चाहिए। तपश्चर्या का वल बढाना चाहिए और योगवल का संचय होना चाहिए। उपरोक्त कार्य सरल नहीं है। परन्तु इन पुरानी मशीनगन्स की भांति नई मशीनगन्स भी सरलता से साध्य नहीं होसकतीं, इनके साध्य करनेमें भी वहुतसा परिश्रम करना पड़ता है। कल्पना करो कि यदि एक अर्वाचीन मशीनगन्स के बनाने में पांच हजार रुपये लगते हैं तो इन पांच हजार रुपयों में कौनसे मानसिक गुण नहीं आसकते ? द्रव्य वडी रकम उत्तम मनोधर्मका एक रूपान्तर समझो। जब कि इस प्रकार की यान्त्रिक मशीनगन्स को वहुत से मानसिक गुणों की आवश्यकता है, तव आपकी यांत्रिक मशीनगन को कितनी अधिक इस द्रव्य की आवश्यकता है सो आपही विचार कर देखिए परन्तु इतने गुण कचित् ही प्राप्त होते हैं, इसी कारण वहुतों को यह वात कठिन जान पडती है। परन्तु जहांपर दिव्य योग साधन है और जहां पर इच्छा शक्ति अत्यन्त प्रवल है, वहां पर कोई भी वात असम्भव नहीं है।

इस विचार से प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति का अन्तर भलीभांति से विदित होजायगा। अध्यातम शास्त्र पूर्व का वनाया और आधिभौतिक सुधार आजकल की दशा है। एक एक युग में मार्ग का महत्त्व होता है। पूर्व युगों में पुण्यात्मा पुरुषों की प्रवृत्ति सूक्ष्म और दिव्य अध्यातम शास्त्र की ओर थी और वर्त्तमान युग में स्थल व जड आधिभौतिक शास्त्र ओर दृष्टि लगीहुई है। इस युग का नाम कलियुग है।

बलदेवप्रसाद मिश्र.
दीनदारपुरा मुरादावाद

॥ साकारोपासना ॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय।
तस्मैकृष्णायनमः संसारमहीरुहस्यबीजाय॥

आजकल जैसा हिन्दूधर्म पर संकट पड़ा है वैसा और किसी समाज पर नहीं प्रथम तो कलियुग में वैसे ही धर्म का एक चरण शेष रहा है, तिसपर, फिर इनदिनों के नवीन सभ्याभिमानियों ने ऐसा भयङ्कर उपद्रव मचारक्खा है, कि जिससे प्राणों को बचाना भी कठिन है, ब्राह्मण से लेकर म्लेच्छादि निकृष्ट जातियों के सब मनुष्य धर्माचारी होने का दावा रखते हैं जिनके बाप दादों नें संस्कृत का अक्षर तक भी न पढा होगा, जिनको काला अक्षर भैंसकी बराबर है वह भी आज चौदह विद्या निधान होकर धर्मकी धूल उड़ा रहे हैं, और यह हिन्दू संतान भेडिये की समान आंखें बन्द करके उनके पीछे २ चलेजाते हैं, जिन्होंने जन्मभर तक अंग्रेजी बूकी और पचास वर्ष तक फारसी छानी, वह भी 'मुह्यन्ति-यत्सूरयः' वेदके तत्त्व प्रकाश कर रहे हैं क्या समय है? आजकल वही धर्म है, जो हमें पसन्द है, वही शास्त्र है जो हम पढ़ें, वही संसार से उद्धार होने का उपाय है, जो हम लैक्चरदें—वाह क्या धर्म भी 'नानी जी का मीरास' है, हम जानते हैं कि परमेश्वर नें अपना सम्पूर्ण धर्म राज्य इन्हीं वितंडावादी वाक्शूर अदूरदर्शी कूप मंडूक अव्यवस्थित चित्तों के साथ में सौंपदिया है कि तुम जैसा चाहो वैसा करो कदाचित् दिल्ली की बहिश्ती की तरह तीनदिन की वादशाही इन्हें मिलगई है कि खूब कागज के घोडे दौड़ालो, हमें इस वात का बड़ा दुःख है कि जिस धर्म की गति युधिष्ठिर की समान धर्मराज और व्यास, वशिष्ठादि प्रचारकों ने भी ठीक २ नहीं जानी, उसे कलियुग के जीव खिलौना समझ रहे हैं। दिनभर में तीन २ वार धर्म बदलता है, फिर धर्म क्या कुछ भी नहीं, जवानी जमाखरच यहकरो वहकरो पर करते कुछ भी नहीं, न आप न उनके आचार्य्य घडीभर भी शुद्ध चित्तसे धर्मका आचरण

नहीं करते हैं ईर्षा, द्वेष, मत्सर, लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध सबके एकाधार चलाजाता है, जो आजकल के धर्म प्रचारक ऋषि मुनि संन्यासी योगी यती पण्डित बन रहे हैं। हां ? किसी ने खूब कहा है॥ श्लोकः—

गतागीतानाशं निगमपदवीं दूरमगमत्
विनष्टाःश्रुत्यर्थाः क्वचिदपि पुराणं नसरति।
इदानीं रैदास प्रभृतिवचसा मोक्षपदवी
नजाने को हेतुः शिव २ कलेरेषमहिमा॥

गीता का ज्ञान नष्ट होगया, वेद का मार्ग दूरचला गया श्रुतियों के अर्थ उलट पुलट किये गये, पुराणों से श्रद्धा उठगई अब रैदासी इत्यादि शब्दों से अर्थात् नौकरी सेही लोगों ने मोक्ष समझ रक्खा है। यह नहीं विदित होता कि इसका क्या कारण है, शिव २ यह, सब कलि की महिमा है, इस कारण कलियुग की महिमा को देखकर विचार करना पड़ा है कि ऐसा कौनसा धर्म है कि जिसके करने से वर्त्तमान समय में मनुष्य अपने आप को मनुष्य कहला सकता है, सो बड़े भारी गूढ विचार के करने से यह निश्चय हुआ कि, 'उपासना' के विना कुछ भी नहीं है, केवल उपासना के करने सेही मनुष्य लोक और परलोक का सुख भोग सकता है इस कारण मनुष्यमात्र को अवश्यही ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये, बिना उपासना के जन्म निष्फल है, उपासना के करने सेही हजारों जन्मों के पाप दूर होजाते हैं, यथा—

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्त्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयंसद्यः सकृद्यत्रानुसंस्मृतेः॥

कलियुग के अति उग्र पाप पुरुषों को महानरक की पीडा देते हैं, परन्तु वह सम्पूर्ण पाप विष्णु के स्मरण करते ही नाश होजात हैं॥

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥
भ० गी० अ० ६ श्लो० ३० ॥

श्रीकृष्ण जी कहते हैं जो दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है, उसे साधु [उत्तम] ही समझना चाहिये कारण कि वोह सन्मार्ग में प्रवृत्त होरहा है। और वही सच्ची भावना वाला है ॥

अब सर्व साधारण के ज्ञान के लिए उपासना का अर्थ किया जाता है।

'परब्रह्मपरमात्मा के स्वरूपमें लीनहोनेका नामही उपासना है'

वह सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार की होती है सगुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वर को शुद्ध बुद्ध नित्य सर्वज्ञ सर्वव्यापक कर्त्ता हर्त्ता दयालु सत्य पवित्र सर्वशक्तिमान् मङ्गलमय सर्वान्तर्यामी गुणों से युक्त मानकर आराधन किया जाता है। निर्गुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वर जन्म मरण से रहित निर्विकार निराधार संयोग वियोग में अतीत जान कर आराधन किया जाता है, परन्तु आजकल नई रोशनी के वाक्शूर 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' की भांति ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर भी साकारोपासना में घृणा उठाकर निराकारोपासना का दावा बांधकर उभयतः भ्रष्ट हो रहे हैं, अतः उनको सचेतन करने के लिए प्रथम वेदादि शास्त्रों से साकारोपासना कथन कर पीछे निराकार उपासना का वर्णन किया जायगा और जो यह मन्त्र पढते हैं कि–

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः। यजु० अ० ४० मं० ८

अर्थ–(सः) सो परमेश्वर (पर्य्यगात्) अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है (शुद्धं शुक्रम्) अर्थात् शुद्धस्वरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञान–

स्वरूप अथवा अलौकिक दीप्तिमान् परमात्मा है, [अकायम्] सूक्ष्म भूत कार्य लिंग शरीर वर्जित है (अव्रणम् अस्नाविरम्) स्थूल शरीर में वर्त्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडी समूह कर वर्जित है इन दोनों विशेषणों से भौतिक स्थूल शरीर से विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्म रहित इस विशेषण से जीवाभिन्न होने से प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंग शरीर धर्म धर्माधर्मादि तीनों का निषेध किया है [कवि-] अर्थात् सर्वज्ञ है [मनीषी] मन का प्रेरक है (परिभूः) सर्वोपरि वर्त्तमान है, पूर्व उक्त अकायादि विशेषण से भौतिक प्राकृत शरीर का निषेध किया है, इस अभिप्राय का स्वयं ही यह मन्त्र प्रकट करता है [स्वयंभूः] इस विशेषण से [स्वयमेव ब्रह्म रुद्र विष्णवादि रूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः] आप ही वह परमात्मा अपनी विचित्र शक्ति से ब्रह्मादि रूप से होता है इस से स्वयंभू है यही अर्थ गीता में स्पष्ट है ॥

अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया। भ० गी० अ० ४ श्लो० ६

श्रीकृष्ण जी कहते हैं हे अर्जुन ! मैं अज और अव्ययात्मा और सब भूतों का ईश्वर भी हूँ, तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्य को आश्रय कर [आत्ममायया] अर्थात् अपने संकल्प से होता हूँ इससे अवतार सिद्ध है और जब परमात्मा ब्रह्मादिभाव को प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत [अर्थात्] कर्त्तव्य पदार्थों को [शाश्वतीभ्यः समाभ्यः] दीर्घ वर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओं से [व्यदधात्] विभाग कर्त्ता हुआ इस में ईश्वर को अकाय लिखा तो इसमें भौतिक शरीर का निषेध है कारण कि इस मन्त्र में 'अकाय' पढने से फिर 'अव्रण' व्रण रहित (अस्नाविरम्) स्नायु रहित इन दो विशेषणों की आवश्यकता नहीं थी जब शरीर ही नहीं तो, व्रणादिका निषेध क्यों ? इस मन्त्र से ही स्फुट विदित होता है कि व्रण स्नायु आदि के शरीर से

रहित होकर दिव्यमूर्त्ति है कारण कि आगे यह पद पड़ा है कि वह (स्वयंभू स्वयं प्रकट होनेवाला है, और स्वयं आगे भी वेद उसका आकार प्रकट करता है।

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्या॰ंशूद्रोऽजायत॥
यजु० अ० ३१ मं० ११

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से उसके मुख, बाहु, जंघा और चरणों से प्रकट हुए हैं, इससे भी ईश्वर की साकारता प्रकट होती है इत्यादि प्रमाणों से उसकी साकारता सिद्ध है। वेदमें ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलतेहैं कि जिससे ईश्वर का मूर्तिमान् होना और उसका पूजन करना साबित होता है।

अन्धं तमः प्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते।
ततोभूयइवते तमोयउसम्भूत्या॰ं रताः॥
यजु० अ० ४० मं० ६

जो पुरुष असम्भूति अर्थात् विना प्रमाण प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा का पूजन करते हैं वे अन्धे हैं और नरक में जाकर पडते हैं, उसी प्रकार जो अन्तर्गत नारायण के स्वरूप को नहीं जानते विना जाने ही उपासना करते हैं वह भी नरक में जाकर पडते हैं।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वोयोदेवेभ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये।यजु०अ०३१मं०२०

जा ब्रह्मरूप परमेश्वर सूर्य चन्द्र इत्यादि देवताओं को अपना प्रकाश देता है, जो ब्रह्मा आदि देवताओं का हिती और पूज्य है, जो ब्रह्मा आदि देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्मरूप परमेश्वर को नमस्कार है।

नमोहिरण्यबाहवेसेनान्येदिशांचपतयेनमोनमः अ. १६मं१६

हे परमेश्वर ! आपकी भुजा स्वयं प्रकाशवान् हैं और सम्पूर्ण संसार को धर्ममार्ग में चलानेवाले दिग्दिशाओंके पति जो आप हैं सो आपको नमस्कार है।

उक्त मन्त्र में बाहु शब्द से प्रत्यक्ष ईश्वर का साकार होना सिद्ध है॥

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूवह तस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ता ह्यस्य हरयःशतादश॥
ऋग्वेद मं० ६ अ० ४ सूक्त ४७ मं० १८॥

परमात्मा अपनी माया को ओंकाररूप करके अनन्तावतारादिरूप अपने प्रकट करता है और अपने रूप की बोधन (पहिचान) के लिए रूप के प्रति अपनी सामर्थ्य सहित विद्यमान होकर उन रूपों के सदृश अपना रूप प्रकट करते हैं, वे अवतार संसार के दुःख हरने को हरिनाम हैं, सो अनन्त हैं जिसमें से दश अवतार अधिक प्रसिद्ध हैं उपरोक्त मंत्र की व्याख्यारूप बृहदारण्य उपनिषत् अ० ४ ब्रा० ९ से भी दर्शित है।

अयंवैहरयोऽपवैदशचसहस्राणिबहूनिचानंतानिच।

यह हरिनाम परमात्माही अवतार रूप हैं—वे अवतार दश हैं शतशब्द बहुत्व का बोधक है, इससे सहस्र तथा बहुत और अनन्त अवतार हैं—

विचारना चाहिए कि उक्त मन्त्रों से ईश्वर का साकार स्वरूप तथा मत्स्यादि दशावतार तथा चतुर्विंशत्यवतारोंका होना भली प्रकार से प्रकट हुआ और इन्द्रादि तेंतीस किरोड देवताओं का होना और उनमें ईश्वर का तेज व्याप्त होने से सम्पूर्ण सामर्थ्य का होना भी भली प्रकार से दिखाई देता है इस कारण साकारोपासना वेद के अनुकूल है।

और युक्तिसे भी सिद्ध है यह युक्ति केवल उन पुरुषों की युक्तिको खण्डन के लिए और आस्तिक पुरुषों की भावना को दृढ करने के लिए प्रकाश कीजाती है॥

जिनकी यह प्रथम ही हठ है कि ईश्वर निराकार है उसका साकार होना युक्ति से वाहर है वह जरा नीचे लिखे हुए लेख को सच्चे दिल से पढ़ें।

ईश्वर निराकार है, परन्तु जैसे निराकार क ख आदि शब्दों में सुभीते के लिये आकार कल्पित किया जाता है जैसे देश भेद से एकही ककार में पृथक् २ आकार मानेगये हैं, वैसे उपासकों के भेद से एकही परमेश्वर में हिरण्यगर्भ, चतुर्भुज, नीलकंठ और अष्टभुजी आदि आकार कल्पना किये जाते हैं।

यद्यपि ईश्वर में चतुर्भुज आदि आकार कल्पित हैं परन्तु वह ऐसे कल्पित नहीं है कि जैसे कोई अपनी भ्रान्ति से आकाश में पुष्पों की कल्पना करे, और ऐसे भी कल्पित नहीं हैं कि जैसे ककार आदि वर्णों के आकार कल्पित हैं, वह ऐसे कल्पित कियाजाता है कि जैसे स्वच्छ पत्थर में गौ आदि की मूर्तियें कल्पित हैं, वह इस प्रकार कल्पित हैं।

देखिए जरा विचारने का स्थान है कि एक साफ बड़े भारी पत्थर को अब कोई अपने आगे रखता है उस समय उसमें कुछ भी आकार उसको नहीं दीखता, अब यदि कोई वैज्ञानिक शिष्टजन उसको कहे कि 'इस प्रकारमें' अत्यन्त सुन्दर दो गौ तीन हाथी एक घोड़ा और सुन्दर २ बेल बूटे विद्यमान हैं तो वह उसका कहना कभी सत्य नहीं मानेगा, वैसेही समझ कर और भी हजारों आदमी देखें तो वह भी उस पत्थर को सफाहीकहेंगे, कारण कि उस पत्थर में कुछ भी चिह्न नहीं दीखता है जब तक उसकी वही दृष्टि वनी है तब तक वह किसी के कहने पर विश्वास नहीं करेगा।

जबतक आप संग तराशी के काममें चतुर नहीं होता वा वैसे चतुर का सङ्ग नहीं करता तबतक ही यह दशा है, फिर जब उस कार्य में चतुर हुआ तो दश बीस अधिक रंग की तस्वीरें उस पत्थर के भीतर से स्वयं निकाल सकैगा, यदि कम चतुर हुआ तो उस पत्थर में से उक्त मूर्तियों का तो निकालना दूर रहा, वरन उनका अनुमान होना भी महा कठिन है, तात्पर्य यह है कि उस विद्या में बिलकुल अज्ञान होने के कारण एक मूर्ति का भी दर्शन वा आविर्भाव नहीं करसकता ॥

अच्छा अब दूसरा जो उस कार्य में नियुक्त है, जिसने कई वार अनन्त पत्थरों में से सहस्रों मूर्त्तियें निकाली हैं और प्रत्यक्ष साफ पत्थर में से निकाल रहा है उससे पूछा जाय कि आपने उक्त तस्वीरें जो इस पत्थर में से प्रगट की हैं वह कहां से आईं।

यदि सङ्गतराश कहै कि हमने अपने हाथ से निकाली हैं तो हाथ से तो केवल उसके ऊपर का हिस्सा कुछ २ अलग किया है परन्तु मूर्त्तियें कहां से आईं? यहां पर अन्तमें यही कहना पडैगा कि मूर्त्तियें तो पत्थर के भीतरही वर्त्तमान थीं. परन्तु मैंने अपने ज्ञान विचार से उन्हें कुछ प्रगट किया है तो अब उसी कारीगर की जिह्वा से सिद्ध होगया कि पत्थर के भीतर सेही वर्त्तमान मूर्त्तियें बुद्धि विचार के वल से उत्पन्न हुईं, लीजिये अब सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखिये तो सही कि उन विद्यमान मूर्त्तियों के प्रगट होने के प्रथम कारीगर की मानसिक कल्पना अवश्य थी अर्थात् प्रथम उस पुरुष ने उन २ मूर्त्तियों का चिन्तवन किया तो फिर उनको पत्थर से निकाला, यदि वह एकाग्र चित्त से चिन्तवन न करै तो मूर्त्ति का प्रादुर्भाव होना दुस्साध्य है।

अब यह विचारना चाहिये कि जब कारीगर गौआदि मूर्त्ति का प्रादुर्भाव करसकता है तो क्या उपासक जिस प्रकार से चिन्तवन करैगा उसी प्रकार सेही चतुर्भुजी आदि मूर्त्ति के प्रगट होने में कोई सन्देह रहेंगे? नहीं नहीं कदापि नहीं।

अब यहां पर यह भी सावित होगया कि साकारोपासना वेदानुकूल और युक्तिसिद्ध है, परन्तु है सरल, वहुत समय तक साकारोपासना करके पुरुष निराकारोपासना का अधिकारी होसकता है, जबतक साकारोपासना में तत्पर न हो, तबतक निराकारोपासना का दावा बांधना महा अनर्थ का कारण है, परन्तु साकारोपासना को करते २ अंतिम निराकारोपासना में प्रवृत्त होना योग्य है इसकारण निराकारोपासना का वर्णन किया जाता है निराकारमें मनका लगाना योग की रीति से योग्य है, सो शुद्ध और पवित्र होकर स्वच्छ एकान्त स्थान में स्थिरता से वैठै -फिर सत चित् आनन्द

लक्षण वाले अन्तर्यामी सर्वव्यापी परमात्मा की ओर अपने मन इन्द्रिय और आत्मा को जोड़े, जब धीरे २ यह ध्यान कुछ बढजाय, अर्थात् दूसरे चिन्तवन को छोड़कर घड़ी आधी घड़ी इसी चिन्तवन में स्थिर रहने लगें तो स्तुति प्रार्थना समर्पण के मन्त्रों को मन में पढे और साथ ही उनके अर्थ में मन को लगावे॥

इसी चिन्तवन को पतञ्जलमुनि कृत योगशास्त्र के अ० १ पा० १ सू० २ में योग कहा है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

उपासना के समय चित्तवृत्ति को रोकने का नाम योग है, इस उपासना को बढाने और मन को स्थिर करने के लिये गीता में दो उपाय कहे हैं। १ अभ्यास दूसरा वैराग्य।

जब मन ईश्वर के चिन्तवनको तज के बाह्य विषयों की ओर जाने लगे तो उसे बलात्कार से ईश्वर में लगाने का नाम अभ्यास है॥

असद्वासना वा स्त्री, पुत्र, धन, धाम, पान, स्थान, मानादि वासनाओं को उपासना के समय मन में न आने देना वैराग्य है॥

पहले सुने हुए मन्त्रों और नामों को मन से चिन्तवन करते २ तन, मन, धन, ईश्वर में अर्पित करदेना बस यही उपासना है।

यदि कोई शङ्का करे कि तन, मन, धन के बिना अर्पण किये क्या उपासना नहीं होसक्ती है तो अवश्य कहना पड़ता है कि जब तक असद्वासना का त्याग और तन, मन, धन, से मोह न दूर किया जाय तब तक मनुष्य उपासक श्रेणी में नहीं गिना जाता, क्योंकि तन अर्पित करनेमें अपने हाथोंसे सेवा तथा साधुजनों को नमस्कार करने में लज्जा नहीं आती इस लज्जा के दूर होने से जाति, विद्या, कुल, बल, धर्म, धन, इत्यादि पदार्थों का अभिमान नहीं प्रवेश करेगा जो अत्यन्त अनर्थ का हेतु और मोक्ष का प्रतिबन्धक है मन अर्पित करने से एक तो धर्म के मार्ग में यदि कोई विपत्ति आजाय तो सहन करी जाती है, और दूसरा लोकलाज, कुललाज, धर्म मार्ग से पीछे नहीं हटने देती, धन अर्पित करने से एक तो

धन में अत्यन्त प्रीति नहीं रहती कि जो लोभ और तृष्णा को बढ़ाकर अनेक प्रकार के पापों को प्रगट करदेती है ॥

और दूसरा धर्म के उत्सवों और सामाजिक उत्साहोंपर द्रव्य देना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता, इसमें धर्म की वृद्धि और धर्म की वृद्धि से पुण्य की प्राप्ति, पुण्य की प्राप्ति से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, और वह शुद्धि मोक्ष के साधनों में से एक मुख्य साधन है, सो इस प्रकार से प्रत्यक्ष फलों की ओर मुख्यदृष्टि देकर तन, मन, धन ईश्वर में अर्पित करके मनुष्य उपासक नाम का अधिकारी होसकता है, जब उपासक उपासना करने को स्थिर चित्त होकर बैठे तब जिस मन्त्र वा जिस नाम का स्मरण करै तब उसी का जप और उसी की भावना करनी चाहिये। यथा–

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २८

इसी का जप करो और अर्थ विचारो उपासना के समय जप करने और अर्थ के विचारने सेही उपासक उपास्यता को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण क्लेशों से छूटजाता है ॥

ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतरायाभावाश्च
यो. अ. १ पा. १ सू. २८

परमात्मा की प्राप्ति और उसके अविद्यादि क्लेशों तथा व्याधि-आदिक विघ्नों की निवृत्ति होजाती है, व्याधि आदिक ९ विघ्न उपासना के मार्ग में शत्रु हैं।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनाल-ब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेन्तरायाः
यो० अ० १ पा० १ सू० ३

१ व्याधि [ज्वरादिरोग] २ स्त्यान (सत्कर्मों में अप्रीति) ३ संशय ४ प्रमाद (समाधि साधने में प्रीति तो है परन्तु ग्रहण न हो सकै) ५

आलस्य ६ अविरति [विषय सेवा में तृष्णाका होना] ७ भ्रांति दर्शन [उलटा ज्ञान] ८ अलब्ध भूमिकत्व [समाधि का न जुड़ना] ९ अनवस्थितत्त्व [समाधि प्राप्त होजाने पर भी उसमें चित्त का स्थिर न होना। यह नौ विघ्न उपासना के मार्ग में शत्रु हैं।

उपासक पुरुषों को सांसारिक लोगों के साथ रहना इस प्रकार लिखा है कि—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् यो० अ० १ पा० १ सू० ३३

सर्वसाधारण के साथ मित्रता करना दुखियों पर दया रखना पुण्यात्माओं के साथ प्रसन्नता पापियों के साथ उपेक्षा रखना अर्थात न उनके साथ वैर न प्रीति इस रीतिपर उपासक का मन सदा स्थिर और शांत रहता है॥

उपासना के समय प्राणायाम की परमावश्यकता है, विना प्राणायाम के उपासना का होना दुःसाध्य है, इस कारण प्राणायाम रूपी उपासना का वर्णन करते हैं भीतर से जब प्राणायाम बाहर को आवे तो उच्चारित मन्त्र के साथ कुछ २ उसको बाहर रोकै और जब भीतर जावै तो उसी मन्त्र के साथ कुछ काल तक भीतर रोकै इसको प्राणायाम कहते हैं, इसरीति के बारम्बार करने से प्राण वश में होजाता है, प्राण वश में हुआ तो मन स्थिरता को प्राप्त करता है और फिर उसमें आत्मा स्वयं स्थिर होजाता है इन तीनों की स्थिरता हुए अपनी आत्मामें जो अन्तर्यामी परमेश्वर वर्त्तमान है उसके स्वरूप में मग्न होजाना चाहिये वह परमानन्द का स्थान है ऐसा होजाने पर उपासक कहसकता है कि मैं उपासना में तत्पर हूँ॥

इस उपासना योग के आठ अंग हैं कि जिनके ग्रहण करने से अज्ञान की हानि और ज्ञान की वृद्धि होजाती है फिर उसमें मोक्षरूपी सुख की प्राप्ति होती है॥

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध-योऽष्टावंगानि । यो० अ० १ पा० २ सूत्र २६ ।

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्रणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि यह योग के आठ अंग हैं ।

(१) यम पांच प्रकार का है अर्थात् अहिंसा सत्य अस्तेय [चोरी [न करना] ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह ।

(२) नियम यह भी पांच प्रकार का है अर्थात् शौच [पवित्रता] सन्तोष, तप, स्वाध्याय [वेद पढना] और ईश्वर प्रणिधान [परमात्मा में प्रीति करना]

(३) आसन न ऊँचा हो न नीचा स्थिर शुद्ध आसन होना चाहिए कि जिसमें शीत उष्ण भी बाधा न करें और दृढ होना चाहिए ।

(४) प्राणायाम सो पहलेही कह चुके हैं ।

(५) प्रत्याहार मन और इन्द्रियों का जीतना ।

(६) धारणा मन को चञ्चलता से छुडाकर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जिह्वा के अग्र भाग आदिक स्थानों से स्थिर करके मन में मन्त्र को जपै और उसके अर्थ को विचारै ॥

(७) ध्यान पूर्वोक्तस्थानों में व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा के आनन्द स्वरूप को पूर्ण देखना ॥

(८) समाधि आत्मा की प्रकाश स्वरूप परमतमा के आनन्द और ज्ञानसे परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं ॥

बस पूर्वोक्त रीति से उपासना करता हुआ अविद्या और अधर्माचरण से छूटकर शुद्धज्ञान और धर्म के अनुष्ठान से मुक्तिपद को प्राप्त होता है ॥

मय्यावेश्यमनोयेमांनित्ययुक्ताउपासते । श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्ततमामताः । भ० गी० अ० १२ श्लो० २

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन जो मनुष्य सर्वदाही मेरे संयोगी की रक्षाकरते हैं, वह मेरे को अत्यन्त प्रिय जानकर

मुझ में अपने मन को लगाये हुए मेरी उपासना करते हैं अर्थात् सर्व लौकिक और वैदिक कर्म मुझमेंही अर्पण करते हैं वे उत्तम उपासक हैं। फिर भी भगवद्गीता के १२ अध्याय के दूसरे और चौथे श्लोक में कहा है कि—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को स्वाधीन करके सबको अभेद दृष्टि से देखने वाले और सम्पूर्ण प्राणियों के हित करने में निरत होकर जो पुरुष विनाश रहित अनिर्देश्य (अर्थात् देव मनुष्यादि शब्द के निर्देश करने के अयोग्य) अव्यक्त [चक्षु—आदि इन्द्रियों से अग्राह्य] सर्वव्यापक चिन्तवन करने को अशक्य, कूटस्थ [अर्थात् सब काल में एकही रूप से स्थित निश्चल और सदा एक रस ऐसे मेरे रूप की उपासना करते हैं वे उपासक भी मुझको प्राप्त होते हैं, यह भगवान का वाक्य है, इत्यादि वाक्यों से निःसन्देह सिद्ध होगया कि मनुष्य को ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिये। कारण कि प्राचीन उपासकों ने यह सिद्धान्त किया है कि मनुष्य के अन्तःकरण में जो एक विक्षेप दोष है उपासना के बिना उसका नाश नहीं होता अर्थात् उपासना का फल विक्षेप दोष को नाश करता है। "ईश्वरोपासना" के जितने ग्रन्थ हैं, सब में ही उपासना मार्ग दो प्रकार से प्रकाशित हैं इस कारण यहां भी दो प्रकार की उपासना कही गई है, परन्तु फिर भी सम्प्रदायों और महर्षियों की इस बात में यह सम्मतिहै कि पुरुष को प्रथम साकारोपासना करनी मुख्य कर्त्तव्य है चिरकाल तक साकारोपासना में मन की वृत्ति को लगावे तभी निराकारोपासना का अधिकारी होसकता है।

जो पुरुष साकारोपासना को पाखण्ड कहकर निराकारोपासना का झण्डा झुला रहा है आशा है कि वह मोह माया की हवा में उडा हुआ अवश्य उभयतः भ्रष्टमण्डली का आचार्य वना दिखाई देगा, हे प्रियपाठकगण ! यदि तुम्हारा ईश्वर में सच्चा प्रेम है यदि तुम उस जगदीश्वर को सच्चे प्रेम से भजते हो तो यह सत्य मानना कि विना साकारोपासना के निराकारोपासना करनेके लिए जो लोग तैयार होते हैं, वह ऐसे थोथे रहजाते हैं जैसे कोई विना बीज के फलको नहीं पासकता, जैसे वर्णबोध के विना पुस्तक नहीं पढ सकता है मूर्ख से भी मूर्ख समझसकता है कि पहले अक्षरों की पहचान होगी तव पुस्तक पढने की भी लियाकत होगी जो कहे कि मैं वर्णमाला को वाहियात समझता हूँ अक्षरों का सीखना टक्करां मारना है मैं झटपट किताव को पढना चाहता हूँ तो अब जरा कहिए कि उसको क्या कहना चाहिए इसका उत्तर हमारे पाठक स्वयं समझगए होंगे अब हमारी अपने पाठकोंसे यही प्रार्थना है कि सम्पूर्ण मनुष्यों को ही साकारोपासना करनी कर्त्तव्य है अर्थात् प्रथम साकारोपासना ही करनी चाहिए क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रों द्वारा सर्व सम्मत उपासना का लक्षण यह किया गया है कि--

"तस्मिन्प्रीतिस्तत्प्रियकार्यसाधनं तदुपासना"

इस का अर्थ यह है कि ईश्वर में ही प्रीति और उसके प्रिय कार्य करने का नाम उपासना है इस उपासना के लक्षण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस सच्चिदानन्द आनन्दघन परमेश्वर में प्रेम बँधाने के लिए ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ काम करते रहना उस परमात्मा को प्रसन्न करने के काम यही हैं कि पूजन करना हरि मन्दिरों में जाना, उत्सवों का देखना ईश्वर के चरित्रों का देखना उसके गुणानुवाद करना ईश्वर के नामार्थ दानों का देना उसके स्वरूप को देखने के लिए लीलाओं का देखना इत्यादि वार्त्ताओं के देखते २ ईश्वर के सच्चे आनन्दरूप में लीन होने का ही नाम उपासना है।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ अवतार ॥

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावतासदावसुधाम् ।
परमेश्वरपरिपाल्यो भवताभवतापभीतोऽहम् ॥

इस समय जैसे और विषयों पर अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होरहे हैं इसी प्रकार अवतार विषय में भी नानाप्रकार के सन्देह उठने लगे हैं आज हम उन सन्देहों को क्रम से दूर करते हुए अवतार विषय में कुछ लिखेंगे।

ईश्वर के अवतार लेने में प्रथम उसका जन्म होता है वा नहीं इस विषय में विचार करते हैं, तो पहले यह विचार कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार ईश्वर को अज पढा है इसी प्रकार जीव को भी अज पढा है जैसे—

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायं भूत्वाभविताावानभूयः ।
अजोनित्यःशाश्वतोयंपुराणो नहन्यतेहन्यमानेशरीरे ।
कठवल्लीउपनिषद्० ॥

अर्थात् यह जीव मरता जन्मता नहीं न हुआ है न होगा, यह अजन्मा शाश्वत पुरातन है शरीर के नष्ट होने में नष्ट नहीं होता, जब कि जीव भी अजन्मा होकर जगत् में प्रादुर्भाव तिरोभाव को प्राप्त होता है तब ईश्वर जो सर्व शक्तिमान है उसके आविर्भाव तिरोभाव में कब दोष आसकता है जो लोग ईश्वर के अवतार में शंका करते हैं उनका प्रथम प्रश्न यह है कि सर्व शक्तिमान् ईश्वर को अवतार लेने की क्या आवश्यकता है ? अब यहां यह देखना चाहिए कि सर्वथा पूर्ण काम सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा का क्या अटका था जो उसने सृष्टि रची और किस आवश्यकता के पराधीन हो उसने इतना जाल रच इसके नियम का भार अपने सिर पर लिया। इस प्रकरण में जितने ईश्वर वादी हैं सब आवश्यकता बतलाने के लिए चुप हैं और यदि बोलते हैं तो सब मिलके एकही उत्तर देते हैं कि यह भगवल्लीला है।देखिए सर्व प्रमाण शिरोभूत उपनिषद् में रमणेच्छा अर्थात् लीला ही कही है। बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण श्रुति ३ में लिखा है।

सर्वैनैवरेमे तस्मादेकाकीनरमते स द्वितीयमैच्छत्॥

अर्थात् वह रमण नहीं करते थे अकेले रमण न किया, दूसरे की इच्छा की तो जिस पूर्ण काम षडैश्वर्य संपन्न जगदीश्वर ने कोटि २ ब्रह्माण्डों की रचना केवल लीलाके लिए करडाली है उसने यदि उस लीला मात्र के लिए अवतार भी धारण किये हों तो क्या असम्भव है। अतएव पूर्वाचार्य्य भी यही अवतार का कारण स्थिर करते आये हैं जैसे श्री मद्भागवत के गर्भ स्तुति में देवताओं ने कहा है।

नतेभवस्येश भवस्य कारणं विनाविनोदं बततर्कयामहे।
भा० स्कं० १० अ० २ श्लोक० ३९॥

आपके प्रादुर्भाव का कारण हम लोग विनोद के सिवाय और कुछ नहीं सोच सकते और—

क्रीडनेनेहदेहभाक्। भा० स्क०१० अ०४० श्लो०१६।
"यानियानीहरूपाणिक्रीडनार्थं बिभर्षिहि"।

अर्थात् आप जो २ रूप क्रीड़ा के लिए धारण करते हैं। इस प्रकार अवतारों में लीलामूल कारण रहते भी अवतारोंके प्रायः तीन उद्देश्य और भी देखे जाते हैं (१) दुष्टों को दमन पूर्वक सत्पुरुषों की रक्षा, तथा [२] धर्म की रक्षा पूर्वक जगत् का मङ्गल, और [३] सगुण लीला द्वारा उस समयके प्रत्यक्ष उपासक तथा भविष्यत काल के उपासकोंका सौकर्य साधन

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे। गीता० अ० ४ श्लो०८
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपिचेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्तेधर्मस्यार्थस्यचैवहि। भा०स्कं० ८ अ० २४ श्लो० ५ बिभर्षिरूपाण्यवबोधआत्मा क्षेमाय लोकस्य

चराचरस्य । सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् । भा० स्कं० १ अ० २ ॥

इन सब वचनोंसे जीवों का उद्धार करना अवतार का उद्देश्य प्रगट होता है, यों अवतार के समकाल जीवों के उद्धार में तो समस्त अवतार चरित ही प्रमाण है ।

दूसरा प्रश्न यह है सर्व्वव्यापक, का अल्प परिमाण में परिच्छिन्न होना कैसे सम्भव है ।

(२) ऐसे संशय पर परमात्मा के विषय में भी ऐसा पूर्व पक्ष करना बहुत ही आश्चर्य है । जब उदाहरण स्वरूप आकाश से पञ्चभूत की उत्पत्ति नहीं और भगवान सर्व सृष्टि कर्त्ता सर्व शक्तिमान हैं और मन वाणी से अगोचर हैं, जैसे कि–

"जानन्तएवजानन्तुकिंबहूक्त्यानमेप्रभो । मनसोवचसोवाचोवैभवंतवगोचरः" भा०स्क१०अ.१४ श्लो३८ "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासह" इत्यादि–

श्रुति भी प्रसिद्ध है, तब उन पूर्ण पुरुषोत्तम के विषय में यह प्रश्न कैसे होसकता है । और यों तो आकाश काल आदि में व्यापकत्व सहचरित चेतनत्वाभाव देखके कदाचित् ईश्वर में चेतनत्वाभाव का भी अनुमान कोई कर डाले । परन्तु यह सब निरर्थक है । क्योंकि जब परमात्मा सर्व शक्तिमान और जगत् विलक्षण है तो आकाशादि पदार्थ की समान उनका स्वभाव नहीं समझा जासकता वास्तव में तो सर्वव्यापक सच्चिदानन्द परमात्मा कहीं अपने आकार को प्रगट कर देते हैं । और सर्व व्यापकही रहते हैं और एक देश में आकार रहता है इसमें बाधक क्या है ?

अवतार रूप में प्रधान आकार एक देशमें रहतेभी भगवान ने अन्यत्र अपने अनेक रूप दिखलाए हैं जैसे अक्रूर को जलमें दिव्य रूप दिखलाया (भा० स्कं० १० अ० ३९) गोपियों को रासलीला में अनेक रूप दिखलाए (भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लो० ३ और २०) और

ब्रह्मा को नाना प्रकारके भिन्न २ आकार तथा रूप दिखलाए (भा० स्कं० १० अ० १३) फलितार्थ यह हुआ कि आकार मात्र अवच्छिन्न होते हैं कुछ ब्रह्म का अवच्छिन्नत्व नहीं होता किन्तु परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक ही है। कभी एक स्थानमें एक दिव्याकार प्रगट करते हैं कभी अनेक दिव्याकार प्रगट करते हैं कभी उस दिव्याकार को भी अंतर्हित करते हैं (भा० स्क० १० अ० ३०)

अन्तर्हितेभगवतिसहसैवव्रजांगनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षणाःकरिण्यइवयूथपम् ॥

और कभी फिर प्रकट करते हैं (भा० स्कं० १० अ० ३२)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

और यजुर्वेद संहिता अ० १६ मन्त्र ३० में लिखा है–

नमोह्रस्वायचवामनायच नमोबृहतेचवर्षीयसे च ।

इत्यादि प्रमाणों से जब कि परमात्मा में ह्रसत्व भी सिद्ध ही है तो विवाद क्या ? ।

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि अलौकिक लीला विशिष्ट परमेश्वर को मानवलीला शोभित नहीं ।

१–परमेश्वर को मानवलीला का अशोभित होना ही इस प्रश्न तथा संशय का मूल है सो पहिले इसको तो निर्णय किया जाय कि परमेश्वर को कौन सी लीला सजती है और कौनसी नहीं । परमेश्वर के लिए यह कौनसी अच्छी बात है कि वार वार सृष्टि करैं और वार २ प्रलय करैं। पूर्ण काम के लिए सृष्टि लीलाही किस युक्ति से सजती है ? और सृष्टि लीला सजी तो लीलान्तर्गत दूसरी अवतार लीला क्यों नहीं सजती ? इससे यह सिद्ध हुआ कि जब परमात्मा लीलाही करने लगे तो उनको सब लीलाही शोभित हैं, इस कारण मनुष्य लीला भी ईश्वर के अवतारों के विरोध में नहीं है ।

२-जो सर्वशक्तिमान हैं उनको मानवलीला धारण की शक्ति है और इस लिए भगवान् क्रीडा करनेके अर्थ उसी शक्तिका उद्भव करें तो आश्चर्य क्याहै ?

३-भगवान् का यह स्वभाव ही है कि जो सच्चे प्रेम से जैसी उपासना करते हैं उनके लिए वैसाही रूप धारण करके उनका उद्धार करना जैसा कि मण्डल० ब्रा० और गी० में लिखा है—

यथा यथोपासते तदेव भवति तद्धेनान्भूत्वा भवति ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

इत्यादि, तो जिन नन्द यशोदा वसुदेव देवकी आदि ने तपकर यही वर मांगा था कि आप हमारे पुत्र हों, उसी के अनुसार आपको मानव-रूप लेना पडा है, और उस स्वरूपादि की प्रकृति के अनुसार और २ लीला भी हैं।

इसी स्थानमें यह भी समझने की बात है कि अवतार लीला के प्रयो-जक तीन हैं १ प्रार्थना २ प्रकृति और ३ इच्छा।

प्रार्थनानुसार जैसे नन्दादि की प्रार्थना के अनुसार आपने अवतार ग्रहण किया। और गोपी आदि की जन्म जन्मान्तर की प्रार्थनानुसार अनेक लीला करीं। और ऋतुग्रामादि की प्रकृति के अनुसार भी विविध लीला करीं तथा केवल जगत् के उद्धार की इच्छा से भी विविध लीला करीं अर्थात् कोई लीला भक्तों की प्रार्थनानुसार और कोई अपनी प्रकृतिके अनुसार होती हैं। जिस समय चारों ओर जलही जल भरा है वह प्रकृति किरीट कुण्डलादि सुशोभित रूप नहीं चाहती किन्तु मत्स्य-रूप ही उसके अनुकूल है। जब जल में निमग्न मन्दर को धारण करना है तब कठिन पृष्ठवाला कच्छपावतार ही प्रकृतिके अनुसार है, कीचडमें घुसकर पृथ्वी निकालने के लिये शूकरावतारही प्रकृति के अनुकूल है। इस प्रकार प्रकृति आदि के अनुकूल भगवान को पशुलीला पर्यन्त शोभित होती है, फिर मानवलीला में क्या सन्देह है ? यह भी जानना अवश्य है कि

भगवदवतार की लीला लौकिक और अलौकिक भाव से भरी होती है। अलौकिक भाव अद्भुत रससे भरा होता है और अलौकिक भाव के प्रगट होने से देखने सुननेवालों के हृदय में अवतार स्वरूप का साक्षात् ईश्वर होना जम जाता है। फिर जब भगवान् लौकिक लीला का प्रादुर्भाव करते हैं तब कुछ ईश्वरभाव की प्रभा रहते लौकिक भाव मिलने से एक अपूर्व माधुर्य्य होता है। उलूखल बन्धन मुख में त्रिलोकी दर्शन आदिका आनन्द वही लोग जानते हैं जो अधिकारी हैं। इन लीलाओं का माधुर्य्य लोकोपकारार्थ होजाता है क्योंकि सुनते कहते लोग करते हैं जैसा कि भा० स्कं० १० अ० २ श्लो० ३७ में लिखा है।

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोरा-विष्टचित्तो न भवाय कल्पते।

और इससे निर्लेप सच्चिदानन्द की कोई हानि नहीं है जैसा कि भा० स्कं० ८ अ० २४ श्लोक ६। में लिखा है कि—

उच्चावचेषुभूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः।
नोच्चावचत्वंभजते निर्गुणत्वाद्धियोगुणैः॥

इस रीति से अधिक माधुर्य्य संपादक मनुष्य लीला परमेश्वर को सदा शोभित है।

(४) प्रश्न यह है, कि 'अवतारों में जीव से अधिक प्रताप क्या है?

१ यदि विचार के देखो तो जीवों से बहुत ही विलक्षणता अवतारों में है। पहले तो प्रगटता के समयही से अद्भुत रस उमग उठता है। जैसे श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म समयही में किरीट कुंडलादि से भूषित चतुर्भुजी मूर्ति दिखाई। जैसा कि भा० स्कं० १० अ० ३ में लिखा है—

तमद्भुतंबालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजंशंखगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मंगलशोभिकौस्तुभंपीतांबरंसांद्रपयोदसौभगम्॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेवऐक्षत ॥

इत्यादि। और फिर प्रायः ऐसा कोई भी अवतार नहीं है जिसकी आदि से अन्त तक सब लीलाओं का अद्भुत रस न हो। जैसे मत्स्यका बढना, कच्छ का मन्दर धारण, वाराह का पृथ्वी का उद्धार, नृसिंह का स्तम्भ से प्रगट होना, वामन का बढना इत्यादि। और श्रीकृष्णावतार तो अद्भुत लीलाओं का भाण्डारही है।

और दूसरे चित्ताकर्षण रूप माधुर्य्य की पराकाष्ठा अवतारों में परम विलक्षण है। यह बात जीवों में होही नहीं सकती कि जहां खड़े हों वहां के तिर्यक् पर्य्यन्त चेतन तथा जड़ लता वृक्षांकुरादि परवश से ही स्तम्भित हो जांय। और साक्षात् होतेही सब के अन्तःकरण तद्रूप हो जांय। यह अपूर्व माधुर्य्य और वशीकरण आकर्षण केवल प्रभु ही में है। श्री० भा० स्कं० १० अ० २१ देखो॥

(५) प्रश्न यह है कि पूर्णावतार और अंशावतार में क्या भेद है?

वास्तव में तो ब्रह्मता की दृष्टि में सभी पूर्णावतार हैं, परन्तु जो अवतार एकही उद्देश्य से हुआ और एकही अथवा थोड़ेही उद्देश्यों का साधनकर तिरोहित हुआ वह मत्स्य कच्छपादि रूपवाला अंशावतार कहलाता है और जो अवतार अनेकानेक उद्देश्यों से हुआ है तथा असंख्यात नाना लीला कर अन्तर्हित होता है वह पूर्णावतार कहलाता है जैसे रामावतार कृष्णावतार।

श्रीकृष्णावतार में तो चारोंओर से पूर्णता बरसी पड़ती है। इधर बाललीला पूर्ण, कौमार पूर्ण, वीरता पूर्ण, दयापूर्ण योंही अद्भुत शृंगारादि रसों की भी पूर्णता भगवान के पूर्णावतार होने को प्रगट करती है। विरुद्ध धर्माश्रयत्व भी परब्रह्म का स्वभाव है ऐसा शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त है, और अलौकिकता के कारण विरुद्ध धर्माश्रयत्व ही होसकता है यह सभी भक्तिकांडवालों का आग्रह सिद्धान्त है सोही श्रुति सम्मत भी है जैसे कि श्रुति—

"अणोरणीयान्महतोमहीयान्" ।
"नमोह्रस्वायच वामनायचबृहतेच" ॥
"नमोज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च"।"तदेजतितन्नैजति"

इत्यादि । विरुद्ध धर्म भी कृष्णावतार में भगवान् ने पद २ में दिखलाये हैं । जैसे अशक्ति और अंग की कोमलता इतनी कि बच्चे की पूंछ पकड़ते तो बच्चा खेंच लेजाता । शक्तिमत्ता इतनी की कि गोवर्द्धन धारण किया शैशवता इतनी कि अपनी क्रीड़ा में समस्त व्रज को फंसाया। और प्रमाणिकता इतनी कि केवल अपने उपदेश के बल से इन्द्र पूजा फेर के गोवर्द्धन पूजा करादी । एक समय ऐसे हलके कि यशोदा खिला रही हैं और एक समय ऐसे भारी कि तृणावर्त्त को भी लेपड़े । और ब्रह्मा को उसी क्षण एकत्व तथा अनेकत्व भी अपने स्वरूपही में दिखलाया और द्विभुजत्व तथा चतुर्भुजत्व दिखलाया इत्यादि विरुद्ध धर्म्माश्रयत्व परब्रह्मही के चिह्न हैं सो श्रीकृष्ण की पूर्णता के सूचक हैं ॥

'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय' यह ब्रह्म की इच्छा है और भगवान् ने भी रास में ब्रह्मा के आगे,तथा श्रीद्वारका रनवास में एक से अनेक होना दिखलाया । यह भी पूर्णता के सूचक हैं । परमात्मा अपनी इच्छा से अपनेही में प्रपञ्च का प्रादुर्भाव करते हैं यह ब्रह्म की पूर्णशक्ति है सो भगवान् कृष्ण ने भी दो बार तो यशोदा को मुखारविन्द में त्रिभुवन दिखाया था ॥

६ प्रश्न यह है कि अवतारों के शरीर पांचभौतिक हैं अथवा अलौकिक ?

अवतारों के लीला प्रकरण देखने से पांचभौतिक की अपेक्षा अपांचभौतिक अलौकिक धर्म्मही अधिक मिलते हैं । जैसे कृष्णावतार के जन्म के समय चतुर्भुज रूप से दर्शन देना पुनः द्विभुज होना, इच्छामात्र से सब को निद्रित करना, पूतना तृणावर्त्तादि वध, कालीय मर्दन, गोवर्द्धनोद्धारण, रास में तथा ब्रह्मा के सन्मुख नानारूप धारण, अन्तर्धान प्राकट्यादि, कुवलयापीड़ नाशन, प्रजा सहित मथुरा वासियों का द्वारका में

प्राप्त करना, अर्जुन को विश्वरूप दर्शन इत्यादि सहस्रशः ऐसे अलौकिक धर्म मिलते हैं, तो अब निष्पक्षपात होके परीक्षा करनी चाहिये कि यह दोनों प्रकार के धर्म्म पांचभौतिक में सम्भव हैं कि अलौकिक दिव्य में। पांचभौतिक पाषाण वनस्पति आदि पदार्थों में तो जो गुण नियत हैं सो हैं वोह न बढते हैं न घटते हैं? इन पदार्थों में नियत गुण युक्तत्वही एक प्रकार का लौकिकत्व है। और एक पाषाण खण्ड भी यदि गुरुत्व श्यामत्व कठोरत्वादि यावत् पांचभौतिक गुण विशिष्ट हो परन्तु देखते २ अन्तर्हित होजाय फिर नानारूप से प्रगट हो फिर सूक्ष्म बृहत् आदि नाना आकार धारण करै फिर ज्यों का त्यों होजाय तौ पूर्वोक्त लौकिक गुण रहते भी वह अलौकिकही माना जायगा अर्थात् लौकिक धर्म अलौकिक धर्म के बाधक नहीं होते किन्तु एकभी अलौकिक धर्म हो तो अलौकिकता का बाधक होजाता है अलौकिक धर्म का लौकिक धर्म बाधक होना ऐसा पामर लोगों में प्रसिद्ध हैं कि कोई मरा हुआ पुरुष फिर कहीं देखपडे तो उसका रङ्गरूप आकार स्वभाव बोल चाल सब पूर्ववत् हो तो भी दग्ध होने के पश्चात् फिर आना यह एकही ऐसा प्रबल अलौकिक धर्म माना जाता है कि उसको प्रेत भूत देव कह बैठते हैं। यह नहीं विचारते कि नाना धर्म तो वेही पूर्ववाले हैं एक नया हुआ तो क्या। अर्थात् लौकिकत्व का बाधक अलौकिकत्व है। सो कृष्णावतार में लौकिक धर्मरहतेभी अलौकिकताके प्रधान होनेसे उन दोनोंका अलौकिकत्व ही सिद्ध होता है। कतिपय लौकिक धर्म भी दिखलाना उस अलौकिकता का भूषण ही दूषण नहीं। फिर लौकिकता पूर्वपक्षी ने जैसी समझी है वैसी नहीं है जैसा श्री० भा० स्कं० १० 'ततोजगन्मङ्गलमच्युतांशम्' इस श्लोक में स्पष्टही कहा है कि मनस्तःदधार' अर्थात् जैसे और स्त्रियें उदर में गर्भधारण करती हैं वैसे देवकी ने धारण नहीं किया किन्तु देवकी ने मन में धारण किया ऐसेही जन्म समय में भी श्रीशुकाचार्य्य ने स्पष्ट कहा है कि 'आविरासीद्' अर्थात् भगवान् प्रगट हुए। इसी से जाना जाता है कि भगवान् ने और बालकों की तरह

जन्म नहीं लिया किन्तु जैसे खम्भे से प्रगट हो नृसिंहावतार धारण किया। वैसेही कौशल्या और देवकी के गर्भ से प्रकट हो राम कृष्णावतार धारण किये। और गौर होना, श्याम होना, बड़े होना यों सबही धर्म न होतें तो अवतारही क्या हुआ तब तो निर्गुण स्वरूपही रहा सो भेद यही है कि परब्रह्म महानारायण पुरुषोत्तम की तो यह महिमा है कि अपनी अव्याहत शक्ति स्वरूप इच्छा से सृष्टि स्थिति संहाररूप लीला करते रहते हैं और वही भगवान् वैकुण्ठनाथ तथा शेषशायी स्वरूप से भक्तों का उद्धार तथा जगत् का पालन करते हैं। इनका मानव लीलापर आग्रह नहीं है किन्तु दिव्य विभूति तथा दिव्य लीला में विराजमान रहते हैं और अवतार तो प्रधानतः मृत्युलोक में मानव लीला के अनुकरण मेंही है। सो कौमार पौगंडादि वयो भेद से रूप भेद दिखलाना और हर्ष शोकादि तथा युद्धों में रुधिर क्षतादि दिखलाना मानव लीला हैं ऐसेही क्षुधा पिपासा निद्रा, आलस्य क्रोधादि भी मानवलीला केही अङ्ग हैं। प्रभु जब चाहते हैं तभी अपने दिव्य शरीर को अदिव्य पांच भौतिकवत् दिखलाते हैं यह उन लौकिक शरीरों की अधिक अलौकिकता है।

[७] प्रश्न यह है कि ईश्वर अवतार लेते हैं इसमें प्रमाण क्या?

प्रतद्विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगोनभीमः कुचरोगारिष्ठाः।
यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षयन्तिभुवनानिविश्वा ॥
सू० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

मृगवत् नृसिंह रूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होता है, पृथ्वी में विचरता है नृसिंहादि रूप से और कैलाश में शिवरूप से निवास करता हुआ त्रिविक्रम अवतार में तीन पद न्यास से चतुर्दश भुवनों को कम्पायमान करता है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् समूढमस्यपा ँ सुरे
ऋ० मं० ३ प्र० १ अ० मं० ९।

अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामन जी इस विश्व को उल्लंघन करते हैं तीन पग धरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्ग में इन के चरण में चतुर्दश भुवन ब्रह्माण्ड सम्यक् अन्तर्भूत होते हैं ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारो उतवाकुमारी ।
त्वंजीर्णो दंडेनवंचसि त्वंजातो भवतिविश्वतोमुखः ॥
अथर्व कां० १० अ० ४ मं० २७

हे भगवन् ! आपही भारती भवानी श्रीरूप वा मोहिनी रूप अवतारों से स्त्री रूप हैं तथा परशुरामादि अवतारों से पुमान् हैं वामन अवतार से कुमार हैं वा सनत्कुमारादि रूप से, और वैष्णवी दुर्गादि रूप से कुमारी हैं और आपही वृद्ध ब्राह्मण रूप होकर दण्ड करके (वञ्चसि) गमन करते हो आपही कृष्णावतार में विश्वरूप होके प्रतीत होते हो ॥

इस मन्त्र में सबही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारों की सूचना की है इस कारण यह मन्त्रही सबका मूल है । अब रामावतार को सुनिये ।

भद्रोभद्रया सचमानआगात् स्वसारंजारो अभ्येतिपश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ॥
सामवेदे उत्तरार्चिके १९ अ० २ खं० १सू० ३

भद्र राम भद्रा सीताजी के साथ प्रगट हुए. तब जार रावण ने ऋषियों के रुधिर से उत्पन्न होने के कारण अपनी भामिनी की समान जानकी को हरण किया पीछे अन्तकाल में क्रोध से प्रज्वलित रावण ने सन्मुख होकर कुम्भकरण आदि के जीवात्माओं के साथ श्रीरामजीकी सामीप्यता को पाया ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्
नृषद्वरसदृतसत् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा
ऋतं बृहत् यजु० अ० १० मं० २४

वह भगवान् (हंसः) अहङ्कार हारी [शुचिषत्] आदित्य रूप से दीप्ति में रहने वाले [वसु] मनुष्यों के प्रवर्त्तक [अन्तरिक्षसत्] वायु रूप से आकाश में रहने वाले [होता] देवताओं के आह्वान करने वाले (वेदिषत्) अग्नि रूप से वेदीमें बैठने वाले ("अतिथिः) अतिथि रूप से सब के पूजनीय [दुरोणसत्] आहवनीय से यज्ञ में बैठने वाले [नृषत्] रामकृष्ण वा प्राण रूप से मनुष्यों में होने वाले [वरसत्] उत्कृष्ट स्थान क्षेत्रादि में बैठने वाले (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य में स्थित होने वाले [व्योमसत्) मण्डलरूप से आकाश में स्थित होने वाले [अब्जः] मत्स्यादि रूप से जल में होने वाले [गोजः] पृथ्वी में चतुर्विध भूत ग्राम रूप से होनेवाले [ऋतजः] सत्य में होने वाले [अद्रिजः] पाषाण में मूर्त्ति और अग्निरूप से होने वाले वा मेघ जल रूपसे होनेवाले (बृहत्) महान् परब्रह्म हो ॥

इस एकही मन्त्र में अवतार और मूर्ति में भगवदाराधन सब कुछ सिद्ध होता है, तथा और भी बहुत से मन्त्र हैं जिनसे राम- कृष्णादि के चारित्र स्पष्ट विदित होते हैं विस्तार के भय से केवल थोड़ेही लिखे हैं ॥

इस विषय में हम अपने पाठकों को एक दृष्टांत भी सुनाते हैं—

एक राजा ने अपने मन्त्री से यह प्रश्न किया कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यों लेता है ? भक्तों के कार्य के निमित्त दूसरे देवताओं को आज्ञा देदेनी चाहिये उनके द्वाराही कार्य्य होजायगा । मन्त्री ने कहा इसका उत्तर मैं कुछ दिनों में दूँगा, राजा ने कहा अच्छी बात है, तब मन्त्री ने राजा के छोटे पुत्र की सूरत की समान एक मोम की मूर्ति बनवाई, और राजकुमार को कुछदेर पहले राजा ने जो पोशाक पहरे देखा था, वही पोशाक उस मोम के बालक को पहराकर धाय से कहा कि जिस समय हम और राजा दोनों नावपर जल विहार करने को बैठें, उस समय तुम इस बालक को लाना । ठीक उसी समय पर जब कि सरोवर में राजा और मन्त्री नाव में बैठे विहार कररहे थे धाय उस कृत्रिम बालक को लेकर आई । राजा ने मन्त्री से कहा हमारे पुत्रको लेलो

मन्त्री ने नाव किनारे करके धाय के बालक को लेलिया, और चतुराई से राजा को देते समय उसको जल में छोड़दिया। ज्योंही बालक जल में गिरा कि राजा साथमेंही उसको निकालने को कूदे। तब साथ में मल्लाह भी कूदे, और राजा तथा बालक दोनों को निकाला। तब राजा कृत्रिम बालक को देखकर लज्जित और क्रोधित होकर मन्त्री से बोले कि यह क्या? तब मन्त्री ने कहा महाराजा! इतने मल्लाह पैरैये आदिकों के होते भी आप स्वयं क्यों कूदपड़े। राजा ने कहा पुत्र स्नेह के कारण मैं किसी को पुकार न सका स्वयंही कूदपड़ा। तब मन्त्री ने कहा इसी प्रकार ईश्वर भी भक्तों के स्नेह के कारण स्वयंही आता है उसे और से कहने का अवकाश कहां? यह उसी प्रश्न का उत्तर है जो आप ने पूँछा था कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यों लेता है राजा यह सुनकर मौनहुए। अब इस विषय में हम अधिक लिखना नहीं चाहते कारण कि बुद्धिमान् को इशाराही काफी है॥

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र।

॥ मूर्त्ति पूजा ॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्ब-
फलाधरोष्ठात् ॥ पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्।
कृष्णात्परं किमपितत्त्वमहं न जाने॥

इस समय भारतवर्ष में एक बड़ी कठिन समस्या उठ खड़ी हुई है जहां देखो वहां इस बात की चर्चा रहती है कि प्रतीक उपासना नहीं है निराकार का प्रतीक में पूजन नहीं होसकता। आजतक ईसाई मुसलमानादि कई एक विधर्मियों के इस धर्मपर इसी विषय के आक्रमण होते रहते थे यद्यपि मुसलमान भी मक्के में संग असवत को बोसा देते, ईसाई

रोमन कैथलिक ईसाकी मूर्त्ति पूजते दूसरे सलीब का चिह्न लगाते बाइबिल चूमते ग्रन्थों के आगे शिर नवाते इत्यादि सब कुछ करके भी वैदिक-धर्मावलम्बियों को प्रतीक उपासना में कटाक्ष करके पुकारते थे, पश्चिम की ओर मुख करके ही निमाज पढना क्या एकदेशी उपासना नहीं है? । अस्तु इन बातों से कुछ भी हमारी हानि नहीं थी, कारण कि जिनका हमारा व्यौहार देश धर्म एक नहीं उन की बातों से हमारी कुछ भी क्षति नहीं थी, परन्तु अब थोडे समय से एक दयानन्दी पन्थ चला है, उसकी भी यही घोषणा है कि प्रतिमा में भगवत् का अर्चन वैदिक सिद्धान्त नहीं है कारण कि ईश्वर का कोई आकार नहीं है यद्यपि उपासना विना आकार के नहीं होसक्ती है, यह सिद्धान्त है, कारण कि वेदान्त दर्शन में लिखा है कि (ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्, व्या० सू०) अर्थात् प्रतीक में ब्रह्मदृष्टिं करनी, विना इसके उपासक किसके समीप होकर उपासना करै, और सम्पूर्ण यह मूर्त्तिमान जगत् अमूर्त्त को किस प्रकार जानसक्ता है कारण कि वह मन वाणी का विषय नहीं है, यदि केवल हम यह कहें कि वह सर्वथा निराकार है अनीह है तो इस निराकार से साकार जगत् किस प्रकार हुआ है कारण कि जो सर्वथा कुछ नहीं है उससे कभी कुछ नहीं होता है परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं वह तो—

अणोरणीयान् महतोमहीयान् उपनि० । नमो ह्रस्वाय च वामनाय च ॥ यजु०

अर्थात् अणु से अणु और महान् से महान् है उस बड़े छोटे के निमित्त नमस्कार है और दूसरे उपनिषद् भी कहते हैं कि [द्वावेव ईश्वरस्य रूपे मूर्त्तश्चामूर्तश्चेति] ईश्वर के मूर्त्त अमूर्त्त दो रूप हैं और उपासना में (सपर्य्यगात् के मन्त्र में उसको अकाय कहकर भी वेद स्वयम्भू कहता हैं, तथा दूसरे स्थान में भी वेदही कहता है कि—

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽन्तरजायमानोबहुधाविजायते । यजुः

अर्थात् प्रजापति गर्भ के अन्तर विचरण करता हुआ अजायमान होकर भी अनेक प्रकार से प्रकट होता है, और अवतार प्रकरण में उसके अनेक

अवतार प्रतिपादन करचुके हैं, तो इस समय जो प्रतिमा निर्माण की जाती है वह सगुणब्रह्म की है उपासना के फल प्रदान को ही वह स्वयम्भू है,और संसारी पुरुषों से विलक्षण रूप होकर वह दिव्य शरीर से प्रकट हो भक्तिरस-को पूर्ण करता और उपासकों की परलोक गति सुधारता है। ध्यान रहे ! कोई निराकार वस्तु विना साकार हुए कार्य नहीं करसकती जैसे अग्नि का-ष्ठादि सव स्थानों में व्याप्त भी है परन्तु विना प्रकट हुए जलाने को समर्थ नहीं है, जगत् में वेद मर्य्यादा स्थापन को प्रभु ने प्रकट होकर अनेक लीला करीं, भक्तजन उसी अवतार की प्रतिमा को वनाकर भक्तिभाव से अर्चन करते हैं, पत्थरकी पूजा कोई सनातनधर्मी नहीं करता यदि पत्थरकी पूजा करता तो पत्थर की स्तुति भी करता कि, हे पत्थर ! पहाड़ से तुम आये कारीगर ने तुमको गडा है इत्यादि परन्तु हम लोग तो मूर्ति में उस को "नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये" आदि स्तोत्र पाठकर ईश्वर का अर्चन करते हैं, मूर्ति कभी वनाये से नहीं वनती तोड़े से नहीं टूटती, वह नित्य सिद्ध है। एक छोटे पत्थर के खण्ड में कारीगर क्या नहीं निकाल लेता ? सभी कुछ निकालसक्ता है परन्तु जो आवरण मूर्ति को घेरे हुए है केवल उनको ही अलग करता है मूर्ति पर तो हाथ भी नहीं लगाता और यदि कहो कि मूर्ति तोड़ी जाती है, टूटजाओ उसके खण्डित होने से उपास्य देव तो नहीं टूटता, हम दूसरी आकृति में उपासना करेंगे कारण कि वह सर्वव्या-पक है यदि कहो माता पिता चैतन्यादि में क्यों नहीं पूजते तो इन चैतन्य शरीरों में ईश्वर के सिवाय काम क्रोधादि भी व्याप्त हैं और मूर्ति में तो केवल ब्रह्म ही व्याप्त है, इस कारण यह निर्विकार उपासना है, जैसे क, ख, ए, वी, सी, डी, अलिफ वे, ते, से इत्यादि जो शब्द हमने एक आकार में कर लिए हैं तव कोई कहै कि असली क वताओ तो क्या कोई वता सक्ता है कभी नहीं और (क) ऐसा लिखने से क्या कभी कोई विद्वान् यों कहैगा कि कागज के ऊपर स्याही का कुछ चींत मकोड़ा है कभी नहीं वलिक देखतेही कह उठेंगा कि 'क' अब कहिये कल्पित अक्षरों से लिखी हुई चिट्ठी मनका सव भाव प्रगट करसकती है या नहीं जव करसकती है

तो ब्रह्म जो सर्वव्यापक है उसकी मूर्त्ति में उपासना क्यों न हमारे मनोरथ पूरा करेगी, जैसे विद्वान्‌को वह अक्षर 'क' दीखता है इसी प्रकार भक्त उपासक को मूर्ति ब्रह्म रूप दीखती है जैसे मूर्ख को अक्षर चींत मकोडा दीखता है इसी प्रकार अज्ञानियों को पत्थर दीखता है, निराकार कहते-हुए आज कल के असभ्य पाखण्डी निन्दा में रत रहते हैं और साकार उपासक मंदिर के दर्शन करते ही 'जयराम–नारायण' आदि नाम उच्चारण करते और वहां ईश्वर की विशेष सन्निधि आदि मानकर दुष्कर्म से बचते हैं। तथा अवतारादि की प्रतिमा देखकर उनके चरित्र स्मरण कर गद्गद् होजाते हैं, जो भगवदाराधन मूर्ति में नहीं करते उनसे पूछो कि तुम अपने मा बाप का फोटो देखकर क्यों उनका स्मरण करते हो और क्यों आप के नेत्र आंसुओं से डबडबा जाते हैं, साफ कहना चाहिए कि वह कागज और स्याही है तथा दयानन्द सरस्वती जो एक साधारण पंडित हुआ है उसकी तसवीर समाजी क्यों बँटवाते हैं क्यों नहीं उसे कागज और स्याही समझते। पर यह तो सब कुछ किया परन्तु जहां कहीं ईश्वर का अर्चन आवै वहां शिर हिला उठैं धन्य है नाम उच्चारण भी तो वाणी का विषय है ॐकार भी एक प्रकार से लिखा जाता है और उससे ओंकार ही का बोध होता है, अब यह तो युक्तिसंगत होगया कि मूर्ति से ईश्वरही का बोध है, अब यह देखना है कि वेद में कहीं ईश्वर की सावयव मानकर स्तुति की है वा नहीं तथा उसको प्रतिमारूप लिखा है वा नहीं तब प्रथम ऋग्वेद—

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानं नमाज्यकिमासीत्परिधिः। कआसीच्छन्दः किमासीत् प्रउगंकिमुक्थंयदेवादेवादेवमयजन्तविश्वे। ऋ० अ० ८ अ० ७ मं० १८०

सबकी यथार्थ ज्ञान वुद्धि कौन है और प्रतिमामूर्ति कौन है और जगत् का कारण कौन है और घृत के समान सार जानने योग्य कौन है,और सब दुःखों का निवृत्ति कारक और आनंद युक्त प्रीति का मारा परिधि [सीमा] कौन है और इस जगत् का पृष्ठावरण कौन और स्वतन्त्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है यहांतक तो इसमें प्रश्न हैं, अन्त में सबका उत्तर इसमें

है कि जिस परमेश्वर मूर्ति को इन्द्रादिकोंने पूजा की है पूजते हैं और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमारूप से जगत् में स्थित है और वोही सारभूत घृतवत् स्तुति करने के योग्य है तो अब कोई नहीं कहसकता कि मूर्त्तिपूजन वेद में नहीं है क्योंकि यह ऋग्वेद का मन्त्रही कहता है कि वोह प्रतिमारूप है बस यही अर्थ है कि उस परमेश्वर की समान कोई नहीं है और देखो--

अरंदासो नमीढुषेकराण्यहं देवायभूर्णयेऽनागः।
अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्यो गृत्सरायेकवितरोजुनाति
ऋ० मं० ७ अनु० ५ सूक्त० ८६ मं० ७

मन्त्रार्थः--अनागा अहं भूर्णये मीढुषे देवाय अरं कराणि दासोन दासइव निषिद्धाचरण वर्जित में दासवत् देव के अर्थ अलंकार करता हूँ (भूर्णये मीढुषे) वो देव बहुतसी धन की वृद्धि करनेवाले हैं जैसे स्वामी का सेवक स्रक् चन्दन वस्त्रादि से अलङ्कार करता है तद्वत् मैं भी बहुत धन देनेवाले देव को अलङ्कार करता हूँ इस मन्त्र में दास की उपमा अहं शब्दार्थ करता को दीगई है और दास शब्द से परे नकार है तिससे उपमार्थ में है इस मन्त्र में देव को अलङ्कार करना लिखा है- और विना समीप हुए अलङ्कार नहीं होसकता समीपस्थ होना उपासना से युक्त है और निराकार में अलङ्कारादि करना असम्भव है, इससे प्रतिमारूप आधार में ही देव परमात्मा के अलङ्कारादि हैं और उपासना भी तभी होसकती है [प्रश्न] इस मन्त्र में तो आचार्यादि देवता मानकर उनका अलङ्कार कहा है कुछ प्रतिमा में अलङ्कार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुतिही देती है (अचेत यदचितो देवो अर्य्य) स्वामी देव अचेतनों को चेतन करता है अपने जीव रूप से प्रवेश करके [रायेगृत्सं कवितरो जुनाति] इस प्रकार धन की प्राप्ति के अर्थ प्राण के भी प्राणरूप देव को अत्यन्त बुद्धिमान् [जुनाति] आश्रय करता है इस मन्त्र में प्रतिमा में परमेश्वर पूजन की काम्य कर्मता प्रतीत होती है। इन वेद के प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि वह शृङ्गार कियाजाता और जगत की प्रतिमा है, शतपथ में भी लिखा है कि--

अथैतदात्मनः प्रतिमामसृजद्यज्ञम् । श० प० ११।१।८।३ यज्ञो वै विष्णुः इति श्रुतेः ।

उसने अपनी प्रतिमा प्रगट की जिसको यज्ञ कहते हैं (सहस्रस्य प्रतिमासि यजु०) हे ईश्वर ! आप सहस्रों की प्रतिमा हो तथा " याते रुद्र शिवा-तनुः यजु० " और " बाहुभ्यामुततेनमः " हे रुद्र ! जो आपका कल्याण-कारी शरीर है तथा आपकी भुजाओं को प्रणाम है, रुद्राध्याय में और भी अनेक मन्त्र ऐसे हैं जो शिव का पूजन करते हैं (विल्मिने गिरिशन्त) इन दो पदों से बेलपत्र के धारण करनेवाले पर्वत पर शयन करने वाले यह स्पष्ट ही है, इत्यादि इन्हीं प्रमाणों से मूर्त्ति में भगवत की आराधना स्पष्ट है परन्तु और भी कहते हैं पाणिनि का सूत्र है ' जीविकार्थे चापण्ये, ॥ ५ । ३ । ९९ कनो लुक् स्यात्, अर्थात् जो प्रतिमा जीविका के निमित्त हो पुजारियों की जीविका जिससे चलती हो और वह बेची न जाय वहां कन् प्रत्यय का लोप हो इस पर भाष्यकार ने शिवः स्कन्धः आदि उदाहरण दिये हैं इस से स्पष्ट है कि शिवके कहने से शिव की पूजनीय मूर्त्ति होगई, यही बात यहां भी लगती है । ' नमः शिवाय च शिवतराय च यजु० पूजनीय शिव के निमित्त प्रणाम है जब कि उसकी प्रतिमा है, उसने अपनी प्रतिमा प्रगट की इत्यादि प्रमाण विद्यमान हैं तब फिर किसी प्रकार भी मूर्त्ति में आराधना अनुचित नहीं । इस समय प्रसंग अज्ञाता एक मन्त्र उच्चारण करते फिरते हैं जिस में वह कहते हैं कि प्रतिमा पूजन का निषेध है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाममहद्यशः । यजुः ।

उसकी प्रतिमा नहीं जिसका नाम बड़े यशवाला है, इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति का नहीं है कारण कि ऊपर से ईश्वर की अनन्तता का प्रसंग चला आता है यहां उपासना का प्रकरणही नहीं है यदि उपासना प्रकरण में आता तो कथञ्चित् मूर्त्तिका अर्थ आभी जाता, पर उपासना में तो अग्नि चन्द्र सूर्यादि भी उसीको लिखा है जैसे [तदेवा-ग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः] अग्नि आदित्य वायु चन्द्रमा वही है

फिर प्रतिमा में क्या रहा यहां तो उसका यह अर्थ है कि उसका उपमान कोई नहीं प्रतिमा में अर्चन का निषेध नहीं है कारण कि इसी मन्त्र में आगे 'हिरण्यगर्भइत्येषः' ऐसा पाठ है अर्थात् वह हिरण्यगर्भ, जव हिरण्यगर्भ ब्रह्मारूप वही है, फिर अकार में सन्देह क्या है? इस से इस मन्त्र से निषेध नहीं आता यादि प्रातिमा का निषेध होगा तो 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' और सम्वत्सरस्य प्रतिमासि'। और ब्राह्मण वाक्य शब्द में विरोध आवैगा इससे वहां अर्थ उपमान का है कारण कि उपासना का प्रसङ्ग नहीं है यदि प्रतिमा का अर्थ यहां मूर्त्ति का करोगे तो यह निषेध किस प्रकार का है क्या उसकी प्रतिमा थी जिसका ईश्वर ने निषेध किया इससे यहां उपनाम का अर्थ है। उसको धूप, दीप, चन्दन, पुष्प चढाय हम अपने हृदय का भाव प्रगट करते हैं जैसे अभी महारानी की जुवली में सर्वत्र रोशनी की गई जिले के हाकिम महारानी के स्थान में सत्कृत किए गए नजरें दिखाई गईं महारानी को इसमें से किसी वातकी भी आवश्यकता नहीं थी कारण कि सब उसी का है; परन्तु अपनी भक्ति दिखाने को सब ने भेंटादि दे अपने हृदय का उत्साह पूर्ण किया इसी प्रकार हरिपूजन में हम सब अपने हृदय का भाव प्रगट करते हैं वही स्वरूप हृदय में प्राप्त होकर पाप दूर करता है यह वहुतही संक्षेप से लिखा है इतिहास पुराण में तो उपासना की कमी नहीं है और (तमितिहासश्च पुराणञ्च इति अथर्व०) अथर्व वेद में भी इतिहास और पुराण का प्रमाण मिलता है तव भगवत की पूजा वेद विहित होने में सन्देह नहीं विशेष विस्तार दयानन्द तिमिरभास्कर में देखना चाहिए वाल्मीकि में लिखा है कि—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबंध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥

अर्थात् हे जानकी ! महात्मा सागर का यह सेतुबन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा, यह परम पवित्र और महा पाप दूर करने वाला है पूर्व काल में इसी तीर्थ पर [मेरे स्थापन करने से] विभु महादेवजी ने मुझपर कृपा की थी । आगे उत्तरकाण्ड में भी लिखा है कि–

यत्रयत्र स यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्रतत्रस्म नीयते ॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥

अर्थात् रावण राक्षसेश्वर जहां जहां जाता था वहां वहां जाम्बूनद मय लिङ्ग साथ जाता था ॥ १ ॥ रावण उस लिङ्ग को वालूकी वेदी के मध्य में स्थापन करके अमृत गन्धवाले पुष्पों से पूजन करता था ॥ २ ॥ इत्यादि वहुत स्थानों में मूर्ति पूजन विद्यमान है, केवल दिग्दर्शन मात्र यहां लिखदिया है ॥

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ श्राद्ध ॥

ज्ञातंकाणभुजं मतंपरिचितैवान्वीक्षिकीशिक्षिता
मीमांसाविदितैव सांख्यसरणिर्योगे वितीर्णामतिः ॥
वेदान्ताःपरिशीलिताः सरभसं किन्तुस्फुरन्माधुरी
धाराकाचननन्दसूनुमुरलीमच्चित्तमाकर्षति ॥ १ ॥

जब तक इस भारतवर्ष में वैदिक कर्मकाण्ड का यथावत् प्रचार था तब-तक किसी प्रकार की वैदिक कर्म में शङ्का नहीं थी, पर जब से वह क्रियायें छूटगई तव से भिन्न २ प्रकार के सन्देह होनेलगे, उनमें से आजकल एक यह भी प्रश्न उठनेलगा है कि श्राद्ध कर्म वैदिक है या अवैदिक

और वह किस कर्म का नाम है, और पितरों के उद्देश्य से जो किया जाता है तो वह जीतों के निमित्त किया जाता है या मरों के निमित्त किया जाता है और किस प्रकार पहुँचता है आज इन्हीं कितनी एक बातों की मीमांसा करनी है जिस समय हम श्राद्ध को विचारने बैठें तो पहले हमको यही सोचना चाहिये कि श्राद्ध का उद्देश्य क्या है! तो यहीं कहना होगा कि 'श्रद्धयाक्रियतेतच्छ्राद्धम्' अर्थात् पितरों के उद्देश्य से जो श्रद्धापूर्वक कियाजाय उस को श्राद्ध कहते हैं जब पितरों के उद्देश्य से करने का नाम श्राद्ध है तब यह वैदिक कर्म है या नहीं इसका निर्णय करते हैं॥

मातृदेवोभव पितृदेवोभव आचार्यदेवोभव तै०॥
देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् तैत्तरी०॥

अर्थात् माता पिता आचार्य की उपासना करनी चाहिये देवता और पितृ कर्म में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि-
पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥ मनु० अ० ३ श्लो० ८२
एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थे पांचयज्ञिके॥

पितरों से प्रीति चाहने वाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इससे श्राद्ध करै, पितर के अर्थ एक ब्राह्मण को भोजन करावै।

आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव-
यानैः यजुः १९। ५८॥

अग्नि कर्म को प्राप्त हुए हमारे पितर देवयान मार्ग से आवैं। यजुर्वेद।

इन मन्त्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होगया कि पितृ कर्म वैदिक है, इसी के विस्तार में और भी बहुत से मन्त्र हैं। अब इस बात का विचार करना चाहिये कि यह जीतों के निमित्त है वा मरों के। इसमें नीचे लिखे वेद के मन्त्र प्रमाण दिए जाते हैं।

येसमानाःसमनसःपितरोयमराज्ये तेषांल्लोकः स्वधानमो यज्ञोदेवेषुकल्पताम्। अ० १९ मं० ४५

जो सपिण्ड मनस्वी पितर यमलोक में हैं स्वधा नामक अन्न उनके दृष्टिगोचर हो पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओं में वास करो।

येसमानाःसमनसोजावाजीवेषुमामकाः।
तेषांश्रीर्मयिकल्पतामस्मिंल्लोकेशतंसमाः ॥ ४६ ॥

जो प्राणियों के मध्य समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड पितर हैं उनकी धन सम्पत्ति सौ वर्ष तक हमारे पास निवास करो ॥ ४६ ॥

द्वेसृतीअश्रृणवम्पितृणामहन्देवानामुतमर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदंविश्वमेजत्समेतियदन्तरापितरम्मातरञ्च ॥४७॥
प्रजापतिर्ऋषिःत्रिष्टुप्छन्दः देवयानपितृयानमार्गौदेवते

मैंने मनुष्यों देवताओं और पितरों के दो मार्ग को सुना जो कि स्वर्ग और पृथिवी के मध्य वर्त्तमान हैं यह क्रियावान विश्व उन देवयान पितृयान मार्गों से जाता है उन मार्गों के लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ४७ ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः असुंयईयुरवृकाऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरोहवेषु ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० १।

जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वी में स्थित हैं वे ऊपर गमन करो और जो स्वर्ग लोक में स्थित हैं वे प्रच्युति रहित होवें, अथवा अधिकार की क्षीणता से मुक्त होवें और जो मध्यस्थान में स्थित हैं वे उत्तम लोक का आश्रय करें, वे पितर सौम्य हैं, अर्थात् कर्म्म में अंगभाव को प्राप्त होकर सोमको संपादन करते हैं और स्थूल शरीर को त्यागकर प्राणमात्र मूर्तिवाले हैं (अवृकः) अर्थात् शत्रुभाव रहित यथावत् सत्य वा यज्ञ के

ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थान में आगमन करो, माध्यमिक यम है इस कारण पितरों को माध्यमिक ही मानते हैं क्योंकि यमराज मध्यस्थान में स्थित हैं और तदनुवर्ती पितर भी मध्यस्थान में स्थित हैं, यम को पितृ-राज्य होने में नीचे लिखा मन्त्र प्रमाण है:-

वैवस्वतंसंगमनं जनानां यमं राजानं हविषादुवस्य
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

प्राणीमात्र का यम के प्रति गमन होता है तिस यमराज को हवि से परिचरण कर ।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवःस्वधयामादयन्ते।
तेभ्यःस्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वंकल्पयाति ॥
यजु० अ० १९ मं० ६०

जो पितर अग्नि से दग्ध हुए और्ध्वदेहिक कर्म को प्राप्त हैं और जो पितर अग्नि में दग्ध नहीं हुए अर्थात् श्मशान कर्म को प्राप्त नहीं किया और स्वर्ग में अपने कर्मोपार्जित अन्न से तृप्त रहते हैं जिस कारण ईश्वर उन पितरों के लिए इच्छानुसार इस प्राणयुक्त शरीर को देता है ॥ ६० ॥

पुनन्तुमापितरः सोम्यासः पुनन्तुमापितामहाःपुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषापुनन्तु मापितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाःपवित्रेणशतायुषाविश्वकर्मायुर्व्यश्नवै ।
य० अ० १९ मं० ३७

सोम के योग्य पितर पूर्णायु के दाता पवित्रा से मुझको शुद्ध करो पितामह मुझ को पवित्र करो, प्रपितामह पवित्र करो, पितामह पूर्णायु के दाता पवित्रतासे मुझको शुद्ध करो, प्रपितामह शुद्ध करो, पूर्ण आयु को प्राप्त करूं ।

येनिखातायेपरोप्तायेदग्धाये चोद्धृताः।
सर्वांस्तानग्नआवहपितन्हविषेअत्तवे। अथर्वकां०
१८। २ मं० ३४

हे अग्ने ! जो पितर गाड़े गये जो पड़े रहे जो अग्निसे जलाये गये जो उद्धृत [फेंके गये] हैं उन सबको हवि भक्षण करने को सम्यक् प्रकार से लेजा।

यास्तेधानाअनुकिरामितिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्तेसन्तुविभ्वीःप्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम् ॥
अ० कां० १८ अ०। ३ मं० ६९॥

जो मैं तिल मिश्रित धान यह जल सहित देता हूँ वह इस मृतक को सुख कारक हो और राजा यम इसको माने।

अब यह बात तो ठीक होगई कि मृतकों के निमित्त जो काम किया जाय उसका नाम श्राद्ध है, अब यह विचार है कि वे पितर किस २ स्थान में स्थित हैं तब यही निर्णय वेद के अनुसार करते हैं।

अथत्रयोयावल्लोका मनुष्यलोकःपितृलोको देवलोकइति
श० १४। ३। २४

तीन भोग भूमियें हैं मनुष्यलोक, पितृलोक, देवलोक इनमें जीव कर्म्म के अनुसार प्राप्त होता है। और केवल निषिद्ध कर्म्म का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है [विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति सिद्धान्त शिरोमणौ] अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्वभाग में पितरों का निवास है, जब कि यह वार्त्ता स्फुट हुई तो सन्देह नहीं रहा, किन्तु और भी प्रमाण लिखते हैं।

स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यःस्वधापितृभ्योन्तरिक्षषद्भ्यः
स्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यः। अथर्व

इन प्रमाणों से पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में भी पितरों की स्थिति लिखी है, अब यह विचार करना चाहिए कि पितरों को हमारा दिया पहुँचता है या नहीं, या सब कोई अपना दियाही प्राप्त करते हैं और पहुंचता है तो कैसे (श० १४। ७। २। ७। में लिखा है कि (यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते) जो यह पुरुष कर्म्म करता है उससे अपूर्व उत्पन्न होता है और वह अपूर्वही कर्त्ता को फल प्राप्त कराता है और उस अपूर्व के साथही यह जीव परलोक को गमन करता है और सायं प्रातः जो हवन में आहुति दीजाती है उनका सूक्ष्म भूत परिणाम अन्तःकरण में हर्ष उत्पन्न करता है, और सूक्ष्मभूत मात्राओं से सूक्ष्म-रूप होकर अदृष्ट फल के हेतु फल पर्य्यंत अयस्थायी रहता है और यह अपने फल के साथ जीव का सम्बन्ध करनेवाला होता है। यथाः—

तेवाएत आहुतीहुते उत्क्रामतस्तेअन्तरिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वातइत्यादि० श० ११।६।२।६।

मरण समय में इस प्राणी की तीन गति होती हैं, देवलोक, पितृ-लोक, अधोलोक उस में पितृलोक का गमन कहते हैं कि—

अथयेयज्ञेनदानेन तपसालोकंजयन्तितेधूममभिसम-र्चन्ति धूमाद्रात्रिंरात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपरपक्षान्यान्ष-ण्मासान्दक्षिणादित्यएतिमासेभ्यः पितृलोकमित्या-दि० श०।

यज्ञ दानादि कर्म्म करनेवाले धूप से रात्रि में कृष्णपक्ष उससे दक्षिणा-यन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं, और जो सत्कर्म्म नहीं वे कीटादि योनि को प्राप्त होते हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो मनुष्य कर्म करता है उससे कोई अदृष्ट उत्पन्न होता है जो परलोक में साथ जाता है, अब यह देखना है कि और प्राप्त करसकता है वा नहीं। तो इसका यही उत्तर है कि अवश्य मिलता है जैसे बन्धन में पड़े हुए के

निमित्त उसके कुटुम्बी उसके मुक्त करने का उपाय कर उसे छुडाते हैं इसी प्रकार पुत्र पिता को परलोक के दुःखसे छुटाता है, पुत्र के पिता के निमित्त किए कर्म का अदृष्टही परलोक में प्राप्त होता है। सा० ब्रा० में लिखा है कि--

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मासि पुत्रमाभृथाः सजीव शरदां शतम्॥

अर्थात् हे पुत्र तू मेरे अंग २ और हृदय से उत्पन्न होता है, आत्मा रूप है, सौ वर्ष जी।

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। यजुः॥
मानो वधीः पितरम् मातरम्। ऋ०॥

दादा परदादा मुझे पवित्र करें, हे ईश्वर हमारे पिता माता को मत मार इत्यादि प्रमाण से एक की प्रार्थना दूसरे को लाभ पहुँचाती है, और ऊपर की श्रुति से पुत्र पिता का रूपही है और उस पुत्ररूप धन का जो द्रव्य है वह भी उसी का है इससे जो कुछ किया करता है वह पिता के उद्देश्य होने से उसी को प्राप्त होती है, इसी प्रकार पोता पुत्र का रूप है यह तीन पीढी का विशेष सम्बन्ध होने से इनका भाग पितरों को विशेष प्राप्त होता है जैसे चंपा के फूलों का पात्र चम्पा के फूल चले जाने पर भी सुगंधित रहता है इसी प्रकार जीव के निर्गत होजाने पर भी यत्किंचित् सम्बन्ध शेष रहता है पंचाग्नि विद्या के द्वारा जैसे जीव की गति ऊर्ध्वगामी होकर चन्द्रलोक मेघ सूर्य्य की किरण भूमि में होती है और उसका पुण्यरूप अदृष्ट उसके साथ रहता है, वही उसे ऊपर नीचे भ्रमाता है और जो उसी का सम्बन्ध आत्मारूप पुत्र उसके निमित्त कुछ करता है उसका पुण्य अदृष्ट रूप से पितर को प्राप्त होता है, कारण कि वह उसी का धन है और जो अपने हाथों के किए कर्म से नीचे गिरता है वह बेटे पोते परपोते के छः हाथों के किए सुकृत से निरन्तर पितरलोकमें सुख भोगता है जैसे मनुष्यलोक में मानवी शक्ति है ऐसेही देव और

पितरलोक में उनकी पृथक् शक्ति है वह भाग होने से अनेक रूप धारण कर सकते हैं, आत्मा ही इनका रथ आदि होता है बुलाने पर प्राप्त होते हैं जिस प्रकार शहद की मक्खी पुष्प में से मधु लेजाती है और पुष्प में कोई विकार नहीं आता इसी प्रकार ब्राह्मणों के निमित्त जो दिया हुआ अन्न है उसका सार भाग दिव्य पितर लेजाते हैं बहुत क्या शुद्धिवालों को दर्शन भी होता है, भीष्मजी को पिता के हाथ का और जानकी महारानी को मुनियोंके मध्यमें राजा दशरथ का दर्शन हुआ था, पिण्डदान जो किया जाता है वही मानों पितरों के आकर्षण पूजन का प्लानचेट है, यदि कहीं किसीका जन्मभी हुआ है तो दिव्य पितर उसको यथार्थ रूप से जानते हैं वह पितरों के उद्देश्य से दिया हुआ दिव्य पितरों के समीप उपस्थित होता है अपनी सर्वज्ञता से उस पुण्य के फल को उस जीव के निमित्त प्राप्त करते हैं और वह जीव को सुख देने के निमित्त प्राप्त होता है इसी कारण अथर्व वेद में तीन स्थान भूमि अन्तरिक्ष और दिव्य इन तीन लोकों में पितरों का निवास कहकर तीनों स्थान में अन्न को स्वधा रूप लिखा है, उस फल से दिव्यलोक के पितर दीर्घकाल तक निवास करें अन्तरिक्ष के ऊर्ध्वलोकको जांय और भूमि के सुख पावें इसमें वेदही प्रमाण है कारण कि परोक्षका ज्ञान वेदसे होता है जिस प्रकार दिया हुआ तार वहीं रहता है और खटका उस स्थान के तारघर में पहुँचता है जहां को तार दियाजाय वहांसे भेजा द्रव्य कोई चपरासी वहां पहुँचाता है जहां पानेवाला स्थित है इसी प्रकार वैदिक धर्मका तार सब लोकों में प्राप्त है वह शब्दात्मक संकल्प होतेही उसका फल पितृलोक में उपस्थित है कागज की भांति यह अन्नादि यहीं है पर फल वहां उपस्थित होजाता है उस फल को उस जीवके निमित्त दिव्य पितर प्रदान करते हैं प्रथम तो शास्त्र की विधि के अनुसार जिसका और्ध्वदैहिक कर्म हुआ है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती, दशगात्र क्रिया से उसका शरीर सम्पादन होता है और यदि दैवात् किसी के अतिशय कुत्सित कर्म्म हुए तौ भी वह यदि कहीं कुत्सित योनि में जन्म पावे तथापि उसको अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, एक पशु दिन

भर दुःख पाता और एक सौ प्रकार से सुखों से पूर्ण है, इत्यादि; परन्तु वेदकी आज्ञा से जो दिया जाता है, हवन किया जाता है, वह सब पितरों को प्राप्त होता है, यदि कोई कहे ब्राह्मणों को जिमाये हुए अन्न का कौनसा भाग प्राप्त होता है तो यही उत्तर है कि हमारे यहां तो पुण्य का फल प्राप्त होता है, पर तुम जो किसी भूंखे को खिलाते हो इसमें तुमको कौनसा भाग प्राप्त होता है इत्यादि अब श्राद्ध विधायक वेद मन्त्र लिखे जाते हैं॥

यौतेश्वानौ यमरक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्त्स्वस्तिचास्माअनमीवंचधेहि॥
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० ११

हे राजा यम ! जो तुम्हारे दोनों कुत्ते हैं उनको इस प्रेत की रक्षा करने को भेजो वे श्वान कैसे हैं कि यमराज के ग्रह के रक्षक हैं चार अक्षियों से युक्त हैं मार्ग के रक्षा करने वाले हैं मनुष्य जिनकी बड़ाई करते हैं सो इन कुत्तों को भाग देते हैं इस प्रेत का कल्याण और रोगाभाव संपादन करो।

येचेहपितरो येचनेह यांश्चविद्मयां उचन प्रविद्म ।
त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञंसकृतंजुषस्व ॥
यजुः अ० १९ मं ६७

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोक में देह को धारण करके वर्त्तमान हैं (चये) और जो (इह) इस लोक में (न) नहीं हैं अर्थात् स्वर्ग में हैं (चये) और (यान्) जिन पितरों को [विद्म] हम जानते हैं [च] और [यान्] जिन पितरों को (न) नहीं (प्रविद्म) जानते हैं स्मरण न होने से [जातवेदः] हे सर्वज्ञअग्ने ! (ते) ते वे पितर [यति] जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जानते हो (स्वधाभिः) पितरों के अन्नों से [सुकृतं] शुभ यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर ६७। यहां इह शब्द से जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किंतु

जिन्हों ने कर्म वश इस लोक में देह धारण किया है अन्यथा न प्रविज्ञ इसका शब्दार्थ नहीं घट सक्ता विज्ञ का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूँ परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूँ अथवा जिनको जानता हूँ बाप दादे परदादे जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढी तक यह तात्पर्य है।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमहं यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः। अथ० १८।२।१

यमके अर्थ सोम कियाजाता यम के वास्ते हवि किया जाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूत ही यज्ञ से यम के प्रति हवि लेजाता है।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि श्राद्ध मृतक पितरों का होता है और उनके निमित्त ब्राह्मणादि को सत्कार पूर्वक दिया जाता है यह दक्षिण मुख से किया जाता है वेद कार्य्य से भिन्न है यह संक्षेप से कहा है बुद्धिमान इस का विस्तार कर सकते हैं॥

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र।

॥ पातिव्रत धर्म्म ॥

दोर्भ्यांदोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं।
मन्दं मन्दं हसन्तं मधु मधुरवचो मेति वेति ब्रुवन्तम्॥
गोपालीपाणिपालीतरलितवलयध्वानमुग्धान्तरालं।
वन्दे तं देवमिन्दीवरविमलदलश्यामलं नन्दबालम्॥१॥

प्यारे सभासद् वृन्द! यह श्रेष्ठ जाति जिस प्रकार अनेक सद्गुणों और सुन्दर धर्मों से परिपूर्ण है, इसी प्रकार इस जाति में स्त्रियों को पतिव्रत धर्मका पालन करना ही सर्वोत्तम धर्म है, पति परायण पति की सेवा में दक्ष पति की इच्छानुसार कार्य करने वाली धर्म निष्ठ लक्षों महिलाओं की कीर्ति से आज तक भारतवर्ष की प्रजा सम्पूर्ण देशों में जगमगारही है,पति-

व्रतपालन वह धर्म है कि स्त्री को इसके अतिरिक्त दूसरा कर्तव्यही नहीं है, देवता ब्रह्मा विष्णु, महादेव जो कुछ हैं स्त्री के निमित्त सब पतिही हैं, पति की सेवाही देवाराधनाहै, जिस स्त्री पर स्वामी प्रसन्न है, मानों उसपर सबदेवता प्रसन्न हैं तपस्विनी अरुन्धती पतिव्रत धर्मके कारणही, सप्तऋषि मण्डल में महर्षि वासिष्ठ के समीप वर्त्तमान है, अब तक विवाह के मध्य में उन श्रेष्ठ अरुन्धती का दर्शन कराया जाता है, पतिव्रता स्त्री का अलौकिक प्रभाव होता है, चन्द्र, सूर्यही क्या सम्पूर्ण ब्रह्मांड के धारण में पतिव्रता समर्थ होती है भारत में लिखा है कि एक महर्षि तपकरते थे, उनके ऊपर चिड़ियाने बीट करदी, ज्योंही उन्होंने क्रोधकर उसकी ओर को देखा कि वह वैसेही जलकर भस्म होगई, तब यह अपने मनमें विचारने लगे कि अब हम प्रसिद्ध होगए, ऐसा विचार तपसे विरत हो विचरते हुए एक नगर में आये और किसी गृहस्थी के द्वारपर कुछ याचना की. ज्योंहीं वह स्त्री भिक्षा लेकर आई कि वैसेही उसके स्वामी ने उसको पुकारा जिससे वह बीच में से ही लौट गई और स्वामी के कार्यसे निवृत्त होकर पश्चात् वहां आई तब यह उससे पूछने लगे कि हे अबले! तू किस कारण से लौट गई, उस स्त्री ने उत्तर दिया कि महाराज ! स्वामी का कार्य करने चली गई थी तब यह ऋषि क्रोध कर बोले कि अतिथि का इतना निरादर किया तब वह इनकी क्रोध भरी दृष्टि को देख कर बोली कि महाराज मैं बन की चिड़िया नहीं हूं जो दर्शन मात्र से ही भय भीत हो जाऊं, महर्षि बडे आश्चर्य में हुए और उस से पूछने लगे कि तुमको यह ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ, इस पर वह स्त्री कहने लगी कि यह सब पति के चरणकमल सेवन का ही प्रताप है मैं स्वामी की सेवाही परम धर्म जानती हूं इस प्रकार कहकर उस स्त्री ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धर्म सिखाया, पतिव्रत धर्म के पालन से ही स्त्री सर्वोत्तम गुणों को प्राप्त होती है अधिक क्या भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान पति रक्षा कल्याण कुटुम्ब सन्तानादि की प्राप्ति यह सब इस एकही धर्म से होती हैं अनुशासन पर्व के १२३ अध्याय में कथा आती है कि सुमना नामक केकय राजाकी पुत्री ने देवलो-

क में सर्वज्ञा शाण्डिली से पूछा कि तुम किस पुण्य चरित्र और आचरण से इस लोक में आई हो और किस पुण्य के प्रभाव से तुमने सम्पूर्ण ऐश्वर्य पाया है इसपर शाण्डिली ने कहा था कि मैं गेरुआ वस्त्र धारण करने वाली नहीं हूँ, मैंने शिर मुड़ाने वा जटा धारण करने से स्वर्गलोक नहीं पाया है, परन्तु मैंने सावधान रहकर कभी भी अपने पति से कठोर वचन नहीं कहा है, देवता पितर ब्राह्मणों की पूजा में सावधान रहकर अप्रमत्त चित्त से सास श्वशुर की सेवा की थी, कभी किसी की चुगली नहीं की, घर से बाहर कभी निवास नहीं किया, न बहुत समय तक किसी के साथ वार्ताही की, किसी असत् कर्म अथवा हास्य कार्य से अहित गुप्त प्रगट किसी बात के जानने में भी मैं व्यग्र नहीं हुई, कार्य्य को बाहर जाकर जब हमारे स्वामी घर आते तब उन्हें बैठाय सावधान हो उनकी पूजा करती थी हमारे पति जिस अन्नको उत्तम नहीं जानते वा जिससे प्रसन्न न होते ऐसी भोज्य वस्तुओं को त्याग करती थी, कुटुम्ब के निमित्त जो वस्तु लाई जाती थी तथा जो कुछ घर का काम काज था प्रातःकाल ही उसको करलेती थी तथा दूसरे से कराती थी, किसी कार्य से यदि मेरे पति परदेश जाते थे तब उस समय मैं मङ्गलसूत्र धारण व्रत से रहती थी, पतिके विदेश जाने पर उत्तम व्यञ्जन माला धारण महावर की रचना उवटन शृङ्गारादि नहीं करती थी पति के सुख से शयन करने पर मैं दूसरे कार्य रहने पर भी उन्हें छोड़ उठकर नहीं जाती थी, उनसे ही मेरा मन सन्तुष्ट रहता था, कुटुम्ब के कार्य के निमित्त स्वामी को सदा क्लेश नहीं देती थी, छिपाने योग्य बातों को सर्वदा छिपाकर प्रसन्न रहती थी जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म पद्धति का पालन करती है वह स्त्रियों के बीच अरुन्धती की समान सदा स्वर्ग में निवास करती है।

हा ऐसे २ रत्न उपदेश और आख्यानें रहते भी आज नये २ समाजों में इस पतिव्रत धर्म का मार्ग नष्ट किया जारहा है, एक २ स्त्री के ग्यारह २ पति सुनाकर भारत को रसातल में पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है,

यही कारण है कि अकाल मृत्यु आदि के कठिन उपद्रवों ने भारतवर्ष को सब ओर से घेर लिया है इस कुलटाचार से कितना पाप का प्रचार होगा, इस को विचारवान्‌ही जान सकते हैं अथर्ववेद पुकार कर कहता है कि—

इयं नारीपतिलोकम्वृणाना धर्मंपुराणमनुपालयंति।

पुराना धर्म पतिव्रत के पालन करने से ही यह स्त्री पतिलोक में गमन करती है, पतिव्रताओं की महिमासे अब तक भारत का शिर ऊँचा हो-रहा है, आज भी उनके समय का ही इतिहास है कि एक समय एक स्त्री अपने पति की सेवा में तत्पर थी, पति उसकी जंघा पर शिर धर-कर सोगए थे उस समय उसका छोटा लडका खेलता २ अग्निहोत्र के प्रज्वलित कुण्ड में जा पड़ा स्त्री पति की निद्रा भंग होजाने के भयसें वालक को उठाने न गई परन्तु अग्नि में क्या सामर्थ थी कि जो पति-व्रता के पुत्र को भस्म करती उसी समय चन्दनकी समान शीतल होगई, राजा की समस्या देने पर पंडित प्रवर कालिदास ने इस की समस्या इस प्रकार पढी थी।

सुतंपतन्तंप्रसमीक्ष्यपावके न बोधयामासपतिंपतिव्रता।
पतिव्रताशापभयेनपीडितो हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः॥

इस एक बात से ही प्रगट होता है कि पतिव्रत धर्म का कैसा चमत्कृत प्रभाव है, स्त्रियों के निमित्त इससे अधिक और क्या होसक्ता है, एक बार परम तपस्विनी अनुसूया जी ने महारानी जानकी से इस प्रकार पति-व्रत धर्म का उपदेश किया था, कि हे जानकी! जो गति जप, तप, से भी किसी को प्राप्त नहीं होसकती, वह गति केवल पतिके चरणारविन्दोंकी सेवासे प्राप्त होती है।

मात पिता भ्राता हितकारी। मित सुखप्रद सुनराजकुमारी॥
अमितदान भर्त्ता वैदेही। अधम नारि जो सेव न तेही॥

वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना । अन्ध बधिर क्रोधी अतिदीना॥
ऐसेहु पतिकरकियेअपमाना। नारि पाव यमपुर दुखनाना॥

अर्थात् माता पिता भ्राता यह सब परिमित सुख देनेवाले हैं परन्तु हे जानकी ! स्वामी अपरिमित सुख देता है वह स्त्री अधम है जो स्वामी की सेवा नहीं करती है, स्वामी चाहे बूढा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अन्धा, बहरा, क्रोधी, दीन, कैसा भी हो ऐसे पति का अपमान करके भी स्त्री यमपुर में अनेक दुःख पाती है ।

एकै धर्म एक व्रत नेमा । कायवचन मन पतिपद प्रेमा ॥
जगपतिव्रता चारविधिअहहीं । वेद पुराण सन्त सबकहहीं॥

एकही धर्म और एकही व्रत नियम स्त्रियों के निमित्त कहा गया है कि मन बचन कर्म से पति के चरणों में प्रेम करैं, संसार में उत्तम मध्य नीच लघु यह चार प्रकार की पतिव्रता वेद पुराणों में कही हैं यथा—

उत्तमके अस बस मनमाहीं । सपनेहु आनपुरुष जगनाहीं
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
विनु अवसर भयते रह जोई । जानहु अधमनारि जगसोई॥
पति वंचक परपतिरतिकरहीं । रौरव नर्क कल्पशत परहीं॥
क्षणसुखलागि जन्मशतकोटी । दुखनसमुझतेहिसमकोखोटी
बिनुश्रमनारि परमगति लहई । पतिव्रत धर्म छांडिछलगहई
पतिप्रतिकूलजन्मजहां जाई । विधवा होय पाय तरुणाई ॥

अर्थात् उत्तम पतिव्रता जानती हैं कि मेरे पति के अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुषही संसार में नहीं है और मध्यम पतिव्रता दूसरे पतियों की बडाई छुटाई के कारण भ्राता पिता पुत्र की समान देखती हैं, जिनका चित्त चल जाता है परन्तु अपने कुल और धर्म को बिचार कर स्थित रहती हैं वे स्त्रियें निकृष्ट हैं जो विना अवसर भय से चकित रहती हैं उसें

अधम स्त्री जान जो अपने पतिको वञ्चित कर पर पति से रति करती है वह रौरवनरक में जाकर पड़ती है जो क्षण सुख के निमित्त अनेक जन्मों का सुख नहीं समझती उस की समान और खोटी कौन है, यदि छल छोडकर स्त्री अपने पति के चरणों की सेवा करे तो विनाही आश्रय के उसकी परमगति होती है और पति से प्रतिकूल जहां जाकर जन्मैगी, वहां तरुणाई में विधवा होगी, कैसी भी अपवित्र स्त्री हो पति के चरणों के पूजन से परमगति होती है महाराणी जानकी ने पतिव्रत धर्म की मानो शिक्षा सर्व साधारण को करदी है उन्होंने अन्तिम परीक्षा समय कहा था।

वाङ् मनःकर्मभिःपत्यौ व्यभिचारोयथानमे।
तथामेमाधवीदेवी विवरं दातुमर्हसि। वाल्मीकीरामायण

यदि मेरा मन वचन कर्म से पति में व्यभिचार नहीं है तो यह भूमि फट जाय और मैं उस में समाऊं कैसी धर्म की महिमा है कि महारानी का प्रेम ऐसे वनवास में उनसे पृथक् नहीं था. वह कह उठी थीं कि यदि मेरा जन्म फिर हो तो रघुनाथ रामचन्द्र ही मेरे पति हों।

इस ऐसे उज्ज्वल धर्म को नष्ट करने को आज दिन श्रुतिस्मृति के अर्थ बदले जाते हैं, पतियों से प्रेम छुड़ाने का प्रबन्ध किया जाता है कलियुग की विचित्र महिमा है जिसको अग्नि की साक्षी कर ग्रहण किया गया है, जो वेदमन्त्रों की सामर्थ से दूधपानी की समान एकरूप और शिव गौरी की समान अर्द्धाङ्गी होचुकी हैं वे किसी प्रकार भी पतिका त्याग नहीं कर सकतीं। न शास्त्र में वे अन्य पुरुष गामिनी होसकती हैं, मन में अन्य पुरुष का भाव प्राप्त होतेही पतिव्रत धर्म नष्ट होजाता है सहवास की तो कौन कहे पति के परलोक गमन मेंभी उन्हीं के निमित्त सत्कर्म करती हुई अपना समय बितावैं, कारण कि जाया (स्त्री) पति के अर्द्धाङ्ग रूप से वर्त्तमान हैं। मनु जी कहते हैं-

कामंतुक्षपयेद्देहं कन्दमूलफलैःशुभैः।
नतुनामापिगृह्णीयात्पत्यौःप्रेतेपरस्यतु-

चाहैं कन्दमूल फल खाकर अपने शरीर को पात करदे परन्तु स्वामि
के परलोक गमन में दूसरे का तो नाम तक भी न लेना चाहिये, यहां
अप्रसङ्ग होने से इस बात का विस्तार नहीं करते कारण कि यहां केवल
पतिव्रत की ही महिमा पर थोड़ासा कुछ कहना है, पुरातन रीति है तथा
शास्त्रों में भी लेख है कि रजः स्नान पर स्त्री अपने स्वामी कोही दर्शन
करै यदि वह न हो तो देवता सूर्य वा अपना मुखही दर्पणमें देखले उस
सन्तान में विगुणता नहीं आती, पतिव्रता स्त्री जिस घर में विद्यमान
है वह घर देवरूप जानना चाहिये वह स्त्री सम्पूर्ण कुटुम्ब के तारने में
समर्थ है मनुजी कहते हैं कि-

पतिंयानाभिचरतिमनोवाग्देहसंयता ।
साभर्तृलोकानाप्नोतिसद्भिःसाध्वीतिचोच्यते॥मनुस्मृति।

जो मन वाणी देहको नियम में रखती है कभी पतिके प्रतिकूल आच-
रण नहीं करती वह धर्म परायणा स्त्री स्वामी के लोकों को प्राप्त होती है ॥
और भी लिखा है कि-

कुरूपोवाकुवृत्तोवा सुस्वभावोथवैपतिः ।
रोगान्वितः पिशाचोवा क्रोधिनोवाथमद्यपः ॥ १ ॥
वृद्धोवाप्यविदग्धोवा मूकोंधोवधिरोऽपिवा ।
रौद्रोवाथदरिद्रोवा कदर्य्यःकुत्सितोऽपिवा ॥ २ ॥
कातरः कितवोवाऽपि ललनालंपटोऽपिवा ।
सततंदेववत्पूज्यः साध्व्यावाक्कायकर्म्मभिः ॥ ३ ॥

अर्थात् पति कुरूप, दुराचारी, उत्तम स्वभाव का, रोगी, पिशाच,
क्रोधी मद्यप, वृद्ध, बुद्धिहीन, गूङ्गा, अन्धा बहिरा, विकराल
दरिद्री, कदर्य्य निंन्दित डरपोक, कपटी, अथवा पर स्त्री लम्पट हो
तथापि पतिव्रता स्त्री मन वचन कर्म्म से उसका देव के समान पूजन
करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

पुरुषं सेवतेनान्यं मनोवाक्कायकर्म्मभिः।
लोभिताऽपिपरेणार्थैः सासतीलोकभूषणा॥ ४॥

पर पुरुष के द्रव्य का लोभ देने पर भी मन वचन और कार्य से जो पर पुरुष का सेवन नहीं करती वह स्त्री इस लोक की शोभा देनेवाली सती जाननी चाहिये॥

देवोमनुष्योगन्धर्वः सतीनांनापरः प्रियः।
अप्रियं नैवकर्त्तव्यं पत्युः पत्न्याकदाचन॥ ५॥

सती स्त्री को अपने पतिके सिवाय परपुरुष देव गन्धर्व के सदृश हो तो भी प्रिय नहीं लगता। इस कारण स्त्री को किसी प्रकार भी पति का अप्रिय नहीं करना चाहिए॥

भुङ्क्तेभुक्तेतथापत्यौ दुःखितेदुःखिताचया।
मुदिते मुदितात्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा॥ ६॥
नान्यं कामयते चित्ते साविज्ञेयापतिव्रता।
भक्तिं श्वशुरयोः कुर्य्यात्पत्युश्चापि विशेषतः॥ ७॥

पति जो भोजन करै वह उसे करे। पतिके दुःख और उसके सुख को सुखमाने, पति विदेशगया हो तो उत्तम वस्त्रको न पहरै, मनमें पर पुरुषकी कामना न करै, सास श्वशुर की भक्ति करै और स्वामी की भक्ति विशेष करके करै, उसे पतिव्रता जाननी चाहिये॥

मित्र! शोक है कि ऐसे २ रत्न उपदेश रहते भी आज पतिव्रताओं का मार्ग नष्ट किया जारहा है। कलिकाल के प्रभाव से आज उन सती स्त्रियों को पर पुरुष में नियुक्त करते हैं, विस्तार के भय से हम अब अधिक लिखना नहीं चाहते कारण कि बुद्धिमान को इशाराही बहुत है॥

कूर्माचल भूषण पं० दुर्गादत्त पंत।

❋ तीर्थ ❋

मातः शैल सुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिवतस्त्वद्वीचिषुप्रेंखत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१॥

प्रिय पाठकगण! आजकल कराल कलिकाल की विशाल महिमा से कैसे कैसे कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल रचकर बहुधा छाञ्छिक लोग हमारे सच्चे सनातन धर्म्म के प्रत्येक मर्म्मस्थान पै कठोर प्रहार कर रहे हैं उन्हें देख कौन ऐसा सत्य धर्म्मानुरागी है कि जिसको रोमाञ्च और कम्पके साथ २ मनों वेदना न होती हो। महाशय! आप जानतेही हैं कि इस समय में सतयुग के समान तपश्चर्य्या नहीं होसकती। और न त्रेतायुग की तुल्य ज्ञान की आशा है? और न द्वापर के समान राजसूय आदि यज्ञों की सम्भावना है केवल कलिकालमें भगवद् भजन पाठ पूजन,श्राद्ध तर्पण और तीर्थ सेवनादि धर्म्माचरणही इस असार संसार से पार होने का उपाय शेष रहा है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उक्त कार्यों में तीर्थ सेवाही सबकी मूल भूत प्रतीत होती है। क्योंकि प्रायः गृहस्थी लोग घर में रातदिन लौकिक कार्यों में लगे रहते हैं और स्त्री पुत्रादि के निमित्त मिथ्या महा मोह में निमग्न हो हाहाकार करते हैं और अपने वास्तविक कर्त्तव्य से सर्वथा भ्रष्ट होकर अपने उद्धार का स्मरण मात्र भी नहीं करते। यदि करें भी तो अनेक लौकिक गृह सम्बन्धी कार्य कलाप की निकटता से स्वल्प ही करसकते हैं। और उतने में चित्त एकाग्र नहीं होता है।

इस कारण जब मनुष्य तीर्थयात्रा आदिको जाता है तब "मैं इन कार्यों को फिर आकर करूँगा" इस आशा से कुछ काल तक लौकिक कार्य व्यवहार आदिसे मन हटा लेता है, और केवल धर्माचरण में तत्पर

होकर वहुत कर्त्तव्य को थोड़े समय में ही करलेता है क्योंकि वहां (तीर्थ आदि में इस जीव) को बिना धर्मानुष्ठान के और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं होता। इस कारण जितना समय धर्माचरण के लिए तीर्थयात्रा में मिलसकता है, घर में उसका दशांश निकलना भी कठिन होता है। प्रायः पवित्र क्षेत्र में महात्मा धर्मात्मा विद्वान् और साधुजनों के सत्सङ्ग से समस्त काल स्नान, दान, भगवद्भजन पाठ पूजन आदि सत्कर्मों में ही व्यतीत करना होता है अतएव इस समय में तीर्थ सेवाही सनातन धर्मका मूल कारण है।

परन्तु शोक की बात है कि किसी प्रकार से वची बचाई "तीर्थ सेवा पर भी कलि के प्रभाव आधुनिक कल्पित कुतर्क वागजाल लग चला है। और कई भोले भाले हमारे ही भाइयों ने सहसा उस जाल में फँसकर निज धर्म कर्मको तिलाञ्जलि दे वैदिक कर्मों और आर्य धर्मी होने की शुष्क आशा से मन मानें लड्डू खानेके लोभ में वृथा पड़कर समस्त भूमण्डल के शिरोमणि पवित्र क्षेत्र भारतवर्ष के मध्य शुद्ध चातुर्वर्ण्य कुल में अति दुर्लभ अमूल्य रत्न मनुष्य जन्म को विना दाम खो देना ही परम लाभ समझ लिया है।

वास्तव में उन लोगों का भी दोष नहीं किन्तु यह कलिकाल राज्य का तेज, और अविद्या महारानी का प्रताप है, तथा कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल का फल है।

इसी से उस आधुनिक मिथ्या कपोल कल्पित कुतर्क वागजाल लेख का पोल दिखाना और नदियों तथा तीर्थों की सनातनता को वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध करनाही अपेक्षित है। इस कारण मैं भी अपनी बुद्धि के अनुसार "तीर्थनिरूपण" विषयक एक व्याख्यान आप लोगों की सेवा में समर्पण करता हूँ और आशा करता हूँ कि सज्जन धार्मिक यथार्थ भाव से सत्य स्वीकार और असत्य परित्याग की दृढ प्रतिज्ञासे सत्यसार का ग्रहण कर मुझे भी अनुगृहीत करेंगे और आप भी शुद्ध

सनातन धर्म्म से कभी विचलित न होंगे प्रत्युत यथासाध्य मुग्ध और वंचित पुरुषों को भी प्रेरणा करके सत्यमार्ग में प्रवृत्त करावेंगे।

प्रथम आपकी सेवा में सर्व शिरोधार्य्य वेद के मन्त्र निवेदन किये जाते हैं।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तोमंसचतापरुष्ण्या।
असिक्न्यामरुद्वृधेवितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥

ऋ० ८० । ३० । ६० । ५० ।

अर्थात् हे गङ्गे ! यमुने ! सरस्वती ! शुतुद्रि ! (सतलज) परुष्णी [ऐरावती=रावी] और असिक्नी नदीके साथ हे मरुद्वृधे ! (चन्द्रभागा=चिनाव) वितस्ता [झेलम] के साथ और सुषोमा [सिन्धु सिन्ध] के साथ हे आर्जीकीय ! [विपाशा=व्यासा] इस मेरे यज्ञ को आकर सेवन करो और स्तुति को सुनो। इसी प्रकार यजुर्वेद का भी एक मन्त्र है जिस में पांच नदियों को सरस्वती के नाम से लिखा है।

पंचनद्यःसरस्वतीमपियन्तिसस्रोतसः।
सरस्वतीतुपंचधासोदेशेऽभवत्सरित्॥

य० वा० सं० अ० ३४ । मं० ११

अर्थात् जो दृषद्वती (घाघरा) से आदि समान प्रवाह वाली नदियें सरस्वती में मिलती हैं वे पांचों सरस्वती ही बन जाती हैं।

सरस्वतीसरयुःसिन्धुरूर्मिभिर्महोमहीरवसयंतुवक्षणी॥
दवीरापोमातरःसूदयित्न्यो घृतवत्पयोमधुमन्नो अर्च्चत॥

ऋ० सं० १० । ५ । ६ । ४ ।

अर्थात् लहरों से युक्त बड़ी से बड़ी सरस्वती सरयू और सिन्धु नदियें रक्षा करने के कारण आवें और प्रकाशमान, माता की समान पालने वाले तथा पापों के नाश करने वाले उनके जल हमें घृत और मधुयुक्त जल देवें। और देखिये—

महोअर्णःसरस्वतीप्रचेतयतिकेतुनाधियोविश्वाविराजति ।
ऋ० सं० मं० १ अ० १ सू० १४ मं० १२

अर्थात् सरस्वती दो प्रकार की हैं एक देवतारूप दूसरी नदीरूप। उन में से पहली दो ऋचाओं से देवता रूप सरस्वती का प्रतिपादन किया है अब इस ऋचा से नदीरूपा सरस्वती का प्रतिपादन करते हैं।

वैसी [नदीरूपा] सरस्वती अपने प्रवाह से बहुत जल को जतलाती है, और देवतारूप से अनुष्ठाताओं की बुद्धियों को प्रकाश करती है॥

इसी प्रकार निरुक्त में भी सरस्वती के दोनों स्वरूप दिखलाए हैं-

सरस्वतीत्येतस्य नदीवद्देवतावच्चनिगमा भवंति ॥
नि० अ० २ पा० ७ खं० १

अर्थात् सरस्वती के निगम नदीवत् और दैवतावत् होते हैं, अर्थात् दोनों स्वरूप होने से दोनों प्रकार के निगम होते हैं। फिर देखो-

इयँशुष्मेभिर्विसखाइवारुजत्सानुगिरीणांतावषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसेसुवृक्तिभिःसरस्वतीमाविवासेमधीतिभिः ॥
ऋ० सं० अ० ५० ऋ० २ सू० ६१

अर्थात् सरस्वती देवतारूपा और नदीरूपा है । देवतारूप की स्तुति की अब नदी रूप की स्तुति करता है। यह सरस्वती नदी अपने सुखाने वाले बलों और बड़ी २ लहरों से तीरवर्ती पर्वतों के सानुओं को विसखानक (विस=में उखाड़ने वाले) की समान तोड़ती है । उस पार उरार (दोनों किनारों को) तोडने वाली सरस्वती नदी को हम स्तुति और कर्म (यज्ञ आदि) से रक्षा करने के निमित्त परिचर्या करते हैं।

और देखिए कि ऋ० सं० के ३ मं० ३ अ० १३ मन्त्रों का ३३वां सूक्त है जिस में कथा है कि कुशिक राजर्पि का पुत्र विश्वामित्र ऋषि जब पैजवन सौदास राजा का पुरोहित बनकर उससे बहुत सा धन लाया तब आतेहुए मार्ग में शतलज और व्यासा दोनों नदियों के सङ्गम में आया

और वहां से तैरने की इच्छा से विश्वामित्र ने उन (दोनों नदियों) की स्तुति कर के कहा कि तुम एक मुहूर्त्त भर अपने प्रवाह को रोकलो तो मैं तैरजाऊँ तब नदियों ने कुछ सम्वाद और इन्द्र की स्तुति करके ऋषि को मार्ग दिया और ऋषि ने पार होकर फिर उन [नदियों] की स्तुति की और फिर वैसाही पूर्ववत् उन [नदियों] का प्रवाह होगया इत्यादि वर्णन मन्त्रों में ही है जिनका प्रथम मन्त्र यह है कि–

प्रपर्वतानामुशतीउपस्था दश्वेइवविषितेहासमाने।
गावेवशुभ्रेमातरारिहाणे विपाट्छुतुद्रीपपसाजवेते॥
ऋ० सं० मं० ३ अ० ३ सू० ३३ मं० १

अर्थात् विश्वामित्र कहता है कि जैसे अश्वशाला [तबेले] से निकल कर दो घोड़ियें जिद से दौड़ती हैं वा जैसे शोभायमान दो गौएँ अपने बच्चे को चाटने की इच्छा से दौड़ती हैं वैसेही पहाड़ों की गोद से निकल कर विपाशा और शुतुद्री अर्थात् व्यासा और शतलज दौड़कर समुद्र को जाती हैं।

महाशय! अब आपही कहिए कि इन सब वेद मन्त्रों में कैसा साफ२ नदियों का वर्णन है, और किस प्रकार नदियों के सनातनता में परम मान्य श्री वेद पुरुष के मन्त्रोंही का प्रमाण विद्यमान है। अब आप की सेवा में और भी प्रमाण समर्पण किए जाते हैं जिन स तीर्थों में जाकर स्नान और दान का करना तथा उन से धन और सन्तान की प्रार्थना करनी और त्रिविध (अर्थात्) मानसिक, वाचिक, और कायिक पापों की निवृत्ति और मोक्ष तक की प्राप्ति सिद्ध होती है।

समुद्रंवाएतेप्रतरंतिये संवत्सरायदीक्षन्ते तस्यतीर्थ-
मेव प्रापणीयः। त्रिरात्रस्तीर्थेनहि प्रस्नांतितद्य-
त्प्रापणीयमतिरात्रमुपयन्तियथा तीर्थेन समुद्रंप्र-

स्नायुस्ताहकतत् ॥ श० का० १२ अ० २ ब्रा० १ कं० १

और भी ब्राह्मण में लिखा है—

देवाहवैसत्रंनिषेदुः अग्निरिंद्रःसोमोमखोविविंश्वेदेवाविनैवाश्विभ्याम् १ तेषांकुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुःकुरुक्षेत्रं हि देवानां देवयजनमितितस्माद्यत्रक्वचकुरुक्षेत्रस्यनिगच्छति तदेव मन्यते इदंदेवयजनमितितद्धिदेवानां देवयजनम् ॥ श० का० १४ अ० ब्रा० १ कं १

और भी—

ऋषयोवैसरस्वत्यां सत्रमासत तेकवषमैलूषं सोमादयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथंनोमध्ये दीक्षिष्टेति, तंवहिर्धन्वोदवहन्नत्रैनंपिपासा हंतु सरस्वत्या उदकं मापिबदिति, सवहिर्धन्वोहढः पिपासया वित्त एतदपोन प्त्रीयमपश्यत् प्रदेवत्रा ब्रह्मणेगातुरेत्विति, तेनापां प्रियं धामोपागच्छत् तमापोऽनूदाढांस्त सरस्वती समंतं पर्य्यधावत्तस्माद्धाप्य तर्हि पारिसारकमित्याचक्षते ॥ ऐ० ब्रा० २ पं ३ अ० १९ कं० पुनरपि ब्राह्मणम्—

अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां बृत्रघ्ने बध्नात् पञ्च पञ्चाशतंहयान् ॥

ऐ० ब्रा० ८ पं० ४ अ० २३ कं०

अन्यच्च ब्राह्मणम्-

अथैतद्धोम देवयजनं यत्रायस्तिष्ठति यत्र स्पन्दंति प्रंतद्वहंत्युद्वहन्ति तदेवं यजनम्॥ गो० ब्रा० पू० १३ भा० प्र २ कं०

अर्थात् जो सम्वत्सरकी दीक्षालेते हैं वे समुद्र को तरते हैं और उनका अतिरात्रि यज्ञ ही तीर्थ होता है जैसे तीर्थ में स्नान है वैसे ही वह [यज्ञदीक्षा] है।

देवताओं ने यज्ञ किया था जिसमें अग्नि, इन्द्र, सोम, मख (यज्ञपुरुष) और विष्णु थे परन्तु विश्वदेवा नहीं थे उनका देव यजन स्थान कुरुक्षेत्र था इसी से कुरुक्षेत्र को देवयजन कहते हैं और जहां कहीं कुरुक्षेत्र का निगमन आता है वहीं मानते हैं कि यह देवयजन है। ऐतरेय ब्राह्मण मेंभी लिखा है कि ऋषियों ने सरस्वती पर यज्ञ रचा और उन्हों ने कवष ऐलष को सोम से बाहिर किया कि यह क्यों हमारे में दीक्षित हुआ इसे यहीं प्यास लगे और यह सरस्वती का जल न पीवे, तब वह बाहर गया हुआ प्यास से खिन्न होकर जलायन को [प्रदेवत्रा ब्रह्मणे गातुरे तु०]

इस मन्त्र को देखता हुआ और उसी से जलों के परमधाम को पहुँचा और सब जल उसे आन मिले, सरस्वती उसके चारोंओर से सरकीं उसी से अबतक भी उस [स्थान] को परिसारक कहते हैं॥

ऐसेही और भी है कि दुष्यन्तराजा के पुत्र भरतराजा थे यमुना के किनारे २८ अट्टाइस और गङ्गा पर ५५ पचपन घोड़ों को बांधा अर्थात् वहां [गङ्गा यमुना] पर यज्ञ किया। और भी ब्राह्मण कहता है कि इसी पृथ्वीपर देवयजन [यज्ञस्थान] है जहां जल ठहरते हैं बहते हैं स्रवते और उछलते हैं अर्थात् ऐसे स्थानों में देवताओं का पूजन करना चाहिये॥

पाठक महाशय! इस शतपथ, ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण की श्रुतियों से भी तीर्थ कुरुक्षेत्र की कैसी प्राचीनता सिद्ध है। अब संहिता

के कुछ मन्त्र लिखते हैं जिन से तीर्थों पर जाकर स्नान दान आदि की सिद्धि होती है देखिये—

आदान्मेपौरकुत्स्यः पञ्चाशत्त्रसदस्यूर्वधूनाम्। मंहिष्ठोअर्य्यःसप्ततिः ऋ० सं० ६१, ३५,६ और—

उत्तमे प्रियियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधितुग्वनि । विस्तृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेताभुवद्वसुर्दिशानाम्पतिः॥

ऋ० सं० ६, १, ३५, ७।

अर्थात् कण्ववंशीय, सौभरि ऋषि कहता है कि शत्रुओं को डराने वाले बड़े पूज्य, भगवान्, सप्तालक पुरु, कुत्स्य राजा से पुत्र ने सुवास्तु नदी के तीर्थपर पचास कन्या, दो सौ दस गौएँ और श्यामवर्ण बैल तथा बहुत घोडे और वस्त्रादि मुझे दान दिया है। इन मन्त्रों से तीर्थों पर दान देने की सनातनता सिद्ध होती है। और भी मन्त्र लिखते हैं जिनसे धन और सन्तान की प्राप्ति के लिये सरस्वती से प्रार्थना है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इवतस्मसि प्रशस्तिमाम्बिनस्कृधि ऋ० सं० १।८।१०।२।४।१।१६

अर्थात् माताओं में, नदियों में देवियों में श्रेष्ठ हे सरस्वति! हम धन के न होने से असमृद्ध हैं हे माता सरस्वति! हमारी धन समृद्धि को कर अर्थात् हमें धन दे। इस अगले मन्त्र में अन्न और सन्तान के लिये सरस्वती से प्रार्थना है॥

तेविश्वासरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिदिड्ढिनः। ऋ सं० २।८। १०।२।४।१७

अर्थात हे सरस्वति देवि! तेरे दीप्त होने परही सब अन्न आश्रित होते हैं और वह तू हमारे विषय में अमृत पान से तृप्ति हो और देवि सरस्वति हमें प्रजा [पुत्रों] को दीजिये॥ १७॥

अब पाप निवृत्ति के लिए प्रार्थना सुनिए।

इदमापः प्रवहत यत्किञ्चदुरितं मयि। यद्वाहमभि-दुद्रोहयद्वाशेपउतानृतम्। ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० १२ मं० १ अ० ५ सू० २३ मं० २२।

अर्थात् मुझ यजमान में जो पाप अज्ञान से हुआ है वा जो कुछ मैंने जान कर सब से द्रोह किया है वा जो किसी साधू को मैंने शाप दिया है वा जो मैंने झूठ बोला है इन सब पापों को हे आपः [जलो] मुझ से दूर करो॥ २२॥ और भी देखिए—

इदमापः प्रवहतावद्यंचमलंचयत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्च शेपे अभीरुणम्॥ अ० वे० सं० कां ७ प्र० १७ अ० ८

अर्थात् हे जलो! जो निन्दित मल मेरे शरीर में है और जो मैंने द्रोह किया है और जो मैंने झूँठ कहा है और जो मैंने अपराधी को शाप दिया है इन सब पापों को मुझ से दूरकरो। और भी देखिये—ऋग्वेदका परिशिष्ट भाग,

यत्र गंगा च यमुना यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवो तत्र मामामृतं कृधि॥

अर्थात् हे सोम! जहां गंगा है जहां यमुना है जहां सरस्वती है और जहां सोमनाथ हैं वहीं मुझे अमृत (अमर) कर॥ और भी देखिये—

सितासितेसरितेयत्रसंगते तत्राप्लुतासोदिवमुत्पतंति।
येवैतन्वां३विसृजंति धीरास्तेजनासोअमृतत्वंभजन्ते॥

अर्थात् जहां श्वेत और कृष्ण [गंगा यमुना] नदियें मिलती हैं उस स्थान में [प्रयागराज में] स्नान करनेवाले पुरुष स्वर्ग को जाते हैं, और जो लोग वहां शरीर छोड़ते हैं वे अमर होते हैं॥ और भी—

इदंते अन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्चसिंधुंप्रवहंतिनद्यः।
सर्पोजीर्णामिव त्वचं जहाति पापं स शिरस्कोभ्युपेत्य॥

अर्थात् हे सिन्धो! यह तेरा जल उन नदियों के समान नहीं है जो कि तेरे में गिरती हैं किन्तु उनसे उत्तम है, इसमें सिर समेत गोता लगाने से पुरुष पाप को ऐसे छोड़देता है जैसे सांप जीर्ण त्वचा को छोड़ता है॥ फिर मनुजी ने भी तीर्थों से पाप दूर होना लिखा है कि—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैषहृदिस्थितः।
तेनचेदविवादस्ते मागंगां माकुरून्गमः॥

मनु० अ० ८ श्लो० ९२

यम वैवस्वत देव जो तेरे हृदय में स्थित हैं यदि उनके साथ तेरा विवाद नहीं है, अर्थात् अधर्म्म करने के कारण भय नहीं है तो गंगा और कुरुक्षेत्र के जाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु तीर्थों पर जाकर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये सो सुनिये॥

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेरण्येवनेपिवा।
नदीनां वापिसंभेदे स संग्रहणमाप्नुयात्॥

मनु० अ० ४. ८ श्लो० ३५६

अर्थात् जो पुरुष तीर्थ, वन, और नदी संगम में पराई स्त्री को बुलावें सो संग्रहण (सहस्र पण दण्ड) को पावे॥ महाशय! यदि आप यथार्थ दृष्टि से विचारें तो निःसन्देही मनुजी के वाक्यों में श्रीगंगा, कुरुक्षेत्र तीर्थ और नदी संगम आदि पदों से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि यह सब तीर्थक्षेत्र मनुजी के समय से भी प्राचीन हैं॥

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से निस्सन्देह हमारे प्राचीन तीर्थों में त्रिविध [मानसिक, वाचिक और कायिक] पापों की निवारक शक्ति का प्रमाण मिलता है, और प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होरही है, अब आप लोग सरल स्वभाव और सत्य प्रभाव से निष्पक्षपात होकर विचारें कि केवल कपोल कल्पित कुतर्क वाग्जाल के विना हमारे शुद्ध सनातन वेदानुकूल तीर्थ विषय की कितनी गूढता है अतएव अब सनातन धर्मानुरागियों को उचित है कि अपने परम

धर्म्म तीर्थ सेवन पुण्य कर्म से कदापि विरत न हों। किसी की उक्सावट में आकर अपने धर्म्म से वंचित हो लोक परलोक से निराश हो अमूल्य रत्न शुद्ध चातुर्वर्ण्य जन्म को खोकर हाथ धोते रहजायँ। तीर्थों का फल ऐसे पुरुषों को मिलता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्चकीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १ ॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टोयेनकेनचित्।
अहंकारनिवृत्तश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥
अकलंकोनिरारम्भो लघ्वाहारोजितेंद्रियः।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सतीर्थफलमश्नुते ॥ ३ ॥
अक्रोधनश्चराजेन्द्र सत्यशीलोदृढव्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥

अर्थात् जिसके हाथ पैर और मन भली प्रकार से नियम में स्थित हैं, और जिस में विद्या तप और कीर्त्ति है, वही तीर्थों के फल को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ प्रतिग्रह को छोड़कर थोड़े में सन्तुष्ट रहनेवाला, और जो अहङ्कार रहित है, वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ कलंक रहित कर्त्तव्य हीन, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय, तथा जो मनुष्य पाप रहित है वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्रोधहीन, सत्यशील, दृढ प्रतिज्ञा वाला तथा सम्पूर्ण प्राणियों में जो अपनी समान देखता है- वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रियवर! कैसे शोक की वात है, कि आजकल के असंस्कृत मूर्ख सभ्याभिमानी उन हमारे प्राचीन तीर्थों के माहात्म्य को अपनी प्रमाण शून्य युक्तियों में उड़ाना चाहते हैं, परन्तु मित्र ध्यान रहे पींजरे में पड़े हुए विकराल सिंह को यदि कोई खिजावै तो ऐसा करने से क्या सिंह का अपमान हो सकता है। हमारा सनातन धर्म(मलीनावस्थामें होने पर भी कभी नष्ट नहीं होसक्ता) अन्त में हमारी सहृदय सज्जन पुरुषों से प्रार्थना है कि

आलस्य को त्यागकर अपने सनातन धर्म में तत्पर होजाओ। और अपने वर्ण के अनुसार कर्मों को करो॥

महामहोपदेशक गोविंदराम जी शास्त्री।

❋ सनातनधर्म की महिमा ❋

हे नाथ शरणं देहि मां भक्तं शरणागतम्।
सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन॥
सर्वाधार गिराधार साक्षिभूत परात्पर।
दुष्पारासार संसार कर्णधार नमोऽस्तुते॥

हे प्रिय सभासदो! मैं आप के सन्मुख जिस गहन और महान् विषय पर व्याख्यान देनेवाला हूँ, उस विषय में प्रवेश करने के लिए मैं, आज केवल भूमिका मात्र धर्म-सम्बन्धी कई प्रकरणों को लेकर उन्हीं के विषय में संक्षेप के साथ कुछ कहूँगा।

इस सभा रूपी बगीची में जनसमूह रूप भिन्न २ सुगन्धित पुष्पलताओं पर विहार करनेवाले सुख रूपी पक्षी का मनोहर शब्द सुनकर मनोरूप माली प्रेमाश्रुओं से सींच रहा है ऐसी दशा देख कर मैं भी हरिनाम रूप जल को छिड़क कर उस बगीचे को अधिक प्रफुल्लित करने का उद्योग करता हूँ एकबार भक्ति के साथ कहो—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

पहले इस आर्यावर्त्त में सनातन धर्म सब प्रकार से जागरहा था, सब लोग बड़े धर्मात्मा और निष्ठावान् थे, अधर्म को प्रवेश करने का किंचिन्मात्र भी अवसर नहीं मिलता था। उस समय युधिष्ठिर नल मान्धाता दिलीप आदि धार्मिक शिरोमणि राजे प्रजापालन में तत्पर रहते थें और वसिष्ठ वामदेव आदि महर्षि भी धर्म को जागृत रखने में और उसकी

वृद्धि करने में रातदिन तत्पर रहते थे। जैसे किले में के राजमहल की उत्तमता से दृढता की जाती है तैसेही सनातनधर्म रूपी महल, उपरोक्त धर्मात्मा राजे और महर्षि आदिकों से सुरक्षित था। परन्तु वह दशा उलट कर कालवश क्षय होते २ इस समय किसी अतिजीर्ण महल की समान उस धर्म रूप महल की दुर्दशा होरही है कहीं २ पुरानी गिरी पड़ी दीवारें रहगई हैं। यदि कहो कि—वह दीवारें कौनसी हैं? तो सुनिये हमारे पवित्र और विद्वत्ता से भरे हुए बचे बचाये धर्म ग्रन्थ हैं। हमारा प्राचीन पुस्तकों का भाण्डार इतना बलिष्ठ था कि—औरङ्गजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थ-भण्डार को जला देने की आज्ञा दी तो छः मास तक बराबर ग्रन्थों के जलते रहने पर भी वह निबड़ा नहीं, अन्त में जो ग्रन्थ बच गए उनका बहुमूल्यपना इतना है कि—वह जगत् भरके अन्य मनुष्यों के ग्रन्थों को और विद्याओं को अब भी नीचाही दिखावेगा। नवीन फिलासफर (तत्वज्ञानी) भी उन ग्रन्थों में की एक पंक्ति को बांचकर चकित होजाते हैं और 'हमारी बुद्धि काम नहीं देती' ऐसा स्पष्ट कह देते हैं, अस्तु यह जो हीन दशा प्राप्त हुई है यह हमारे धर्म का बुढापा है। जैसे मनुष्य को बालकपन, तरुणाई और बुढापा आता है तैसेही धर्म के विषय में भी समझना चाहिए, तिस पर कलियुग महाराज की अमल-दारी!! जिस प्रकार बुढ़ापे में मनुष्य की गर्दन कांपने लगती है, तैसे ही इस धर्म की भी गर्दन कांपने लगी है, अर्थात् यदि कोई हमसे बूझै—ब्रह्मचर्य्य कैसी क्या वस्तु है? तो अँहः (नहीं) सूचित करने के लिए गर्दन हिलने लगती है। सत्य नहीं, धैर्य्य नहीं, क्षमा नहीं, अहिंसा नहीं इन सबही शब्दों के साथ गर्दन हिलाई जाती है, यही धर्म के बुढापे का चिह्न है परन्तु ऐसी दशा होजाने के वास्तविक कौन २ कारण हैं; यह खोज करना हमारा कर्त्तव्य है। यद्यपि उन सब कारणों के वर्णन में बहुत समय लगेगा परन्तु सबसे बडा कारण संस्कृत की अवनति है। संस्कृत ही हमारे धर्म ग्रन्थों और अनेकों शास्त्रों की उस समय की भाषा है तथा जगतभर की सभी भाषायें इसके ही शब्दों का

उच्चारण विगड़ते २ बनगई हैं, ऐसा कहना कोई अनुचित बात नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द कहते हैं उनसे इस बात का निश्चय होजायगा।

संस्कृत	लाटिन	अङ्गरेजी	पर्शियन	जर्मन्	ग्रीक
मातृ	मेटर्	मदर्	मादर्	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर्	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर्

इसी प्रकार—

संस्कृत	लाटिन	अङ्गरेजी	पर्शियन
सुवन	सन्	सन	....
दुहितृ	....	डाटर	दुखतर

संस्कृत	अरबी
अङ्कवर	अकबर
अंतकाल	इंतकाल

इसी प्रकार—

संस्कृत	अङ्गरेजी
सर्प	सर्पेंट
पथ	पाथ
त्रिपथ	ट्रायपेड्

संस्कृत	पर्शियन
अस्ति	अस्त
नास्ति	नेस्त
किमस्ति	कीस्ती

इसी प्रकार और भी अनेकों शब्दों की समता दिखाई जासकती है। परन्तु उतना अवकाश न होने से आगे को चलते हैं।

ऐसे सूक्ष्म रीति से देखने पर जगत्भर की सकल भाषाओं की जननी निःसन्देह यह संस्कृत ही है। मूल स्थान भारतवर्ष से उसका प्रचार जैसे २ दूर देशों में होता गया तैसे तैसे उसका अपभ्रंश होकर उसके द्वारा और लोगों की भाषा बनती गई, यह दशा होते हुए भी जिनको इस संस्कृत की गन्धभी नहीं मिली है वह इसको डेड लैंगवेज [मृत भाषा] और मूर्ख लोगों की भाषा है ऐसा कहते हैं और इस में ऐसेही विचार भरे होंगे ? इस प्रकार कहकर तिरस्कार करते हैं। संस्कृत सीखना मानो भीख मांगने की विद्या सीखना है; वह तो हरामडील भिखमँगों को पढनी चाहिए, हमको उससे क्या लाभ है ? ऐसी वृथा बकवाद करते हैं। परन्तु रत्न के मोल को कूँजड़ा क्या जाने ? मित्रों !

केवल शब्दों की समताही नहीं है, किन्तु अनेकों नए शास्त्र भी इस ग्रन्थ से ही लिए गए हैं, यह बात ग्रन्थों से और व्यवहार से स्पष्ट समझ में आजायगी। सूर्य की ऊष्णता से पानी की भाफ बनकर उसके मेघ होकर फिर वर्षा होती है यह खोज नवीन नहीं है, किन्तु उपनिषद् में कहाहै।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।'

जिस विद्युत्शास्त्र ने आजकल सब जगत् को चकित कर डाला हैं, उसका प्रचार पहिले हमारी ओर ही था, यह बात एक छोटे से उदाहरण से आप समझ सकेंगे। उत्तर हिन्दुस्तान में जब बरसात आती है तब बादलोंमें बिजली चमकने लगती है तब साधारण दासी भी आंगन में पड़े हुए कांसी आदि धातु के पात्रों को शीघ्रता से उठाकर घर को लेजाती है। धातु में बिजली गिरकर घुसजाती है यह बात हमारे यहां की तुच्छ दासियों को भी मालूम है, तात्पर्य यह है कि–नई चलाई हुई मालूम होनेवाली अनेकों विद्याएँ पहिले हमारे पास थीं परन्तु अब पूर्वोक्त कारण से ग्रन्थों का नाश होजाने पर वह सब स्वप्न की समान होरही हैं।

जैसे ग्रन्थों की और संस्कृत की ऐसी अधोगति होगई तैसे ही हमारी गुरु शिष्य प्रणाली भी बिगड़ गई है। आजकल अधिक तो क्या, बहुत से गुरुनामधारी भी इस बात को नहीं जानते कि–सन्ध्या प्राणायाम आदि शास्त्रानुकूल किस रीति से करने चाहिये बस केवल नाक कानको हाथ लगाया सो प्राणायाम होगया!! जब गुरुओं की यह दशा है तो शिष्यों की तो बात ही क्या? हां कभी कहीं सच्चे गुरु मिल भी जाते हैं, परन्तु दिनोंदिन गृहस्थों की श्रद्धा घटती जाने के कारण उनसे भी दोनों को कुछ लाभ नहीं पहुंचता। उत्सव त्योहार आदि के समय किसी वेश्या का, आने के विषय में तार आया कि–कोई गाड़ी भेजता है, कोई सेवक भेजता है और आजानेपर अञ्जीर, अंगूर, अनार, सन्तरे, केला,

आम, पकवान आदि की तश्तरियें नजर करके बार २ प्रश्न किया जाता है कि--कहिए सरकार आपकी तबियत कैसी है ? और उनहीं के पास कहीं से यदि गुरुवर्य का आने के विषय में तार या पत्र आवे तो सब नाक सकोड़ने लगते हैं। यदि गुरु महाराज आही जांय तो उनको किसी घुड़साल, गोशाला या कबूतरखाने में ठहरा देते हैं और कहीं से आके हुए सड़े पड़े फल अर्पण कर देते हैं यदि गुरुजी ने बूझा तो कहदिया कि---महाराज आप परमहंस हैं आपको भला बुरा क्या ? जहां ऐसी दशा हो तहां धार्मिक उन्नति की क्या आशा है ?।

ऐसी दशा होते हुए भी हम हिन्दुओं की स्त्रियों में अब भी धर्म का अंश अधिक है, यद्यपि आजकल के नवशिक्षित लोग हिन्दुओं के घरों की लक्ष्मी स्वरूपिणी ऐसी स्त्रियों को अज्ञान में पड़ी हुई समझते हैं परन्तु सनातनधर्म के मतसे यह अज्ञान नहीं है उदाहरण देखिए, एक हिन्दूनारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पति की आज्ञानुसार गंगा तटपर स्नान करने को जाती है स्नान के अनन्तर श्रीगंगा का पूजन करके सिन्दूर, अगर, कुंकुम को गंगा का प्रसाद जानकर अपने भाल में लगाय उसको सौभाग्य दर्शक चिह्न समझती है। तदनन्तर पीपल के वृक्ष में सिन्दूर की बिन्दी लगाकर आम के वृक्ष पर टीका काढती है, फिर चलते २ गौ मिलती है तो उसके सिन्दूर का टीका लगाती है, तदनन्तर खेत में हल से खुदे हुए ढेले के टीका लगाती है, जहां चौराहा होता है तहां सिन्दूर चढाती है, तदनन्तर अपने घर आकर कौलोंपर और दीपक रखने के स्थान पर तथा पलहुण्डी पर टीका लगाती है, जरा विचार कर देखो इन सब वस्तुओं पर टीका लगाने का प्रयोजन क्या है ? सनातन धर्म का जो रहस्य है कि--ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है, यही स्त्रियों के उस कार्य से दिखाया गया है, इतनाही नहीं किन्तु सिंदूर, अगर कुंकुम यह स्वामी के विद्यमान होने के चिह्न हैं, तिसी प्रकार जगत भर का स्वामी इन सब काठ पाषाण आदि वस्तुओं में ओतप्रोत भररहा है ऐसा जो

१ सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि। २ ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित्०। ३ तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।

इत्यादि श्रुतियों को मथकर निकाला हुआ अर्थ है, उसको हिन्दू स्त्रियें भिन्न २ वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती हैं।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनों पर अमल केवल सनातन धर्म में ही देखा गया है इस कारण यह अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सनातन धर्म में वृक्ष पशु आदिकों की पूजा कही है उसको बहुत से भिन्न धर्मी मूर्खता बताते हैं, परन्तु ऐसा कहने वालों ने सनातन धर्म का रहस्य कुछ भी नहीं समझा है, वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नहीं है। किन्तु सनातनधर्म का महत्व दिखाने वाला उदाहरण है। क्योंकि देखो–दूध, दही, माखन, मलाई आदि से बालकों से लेकर बूढों पर्यन्त उपकार करनेवाली परममित्र गौ की पूजा करने के लिये जैसी सनातनधर्म में आज्ञा है तैसेही प्राणघातक परमशत्रु सर्प की भी श्रावण-शुक्ला पञ्चमी को पूजा करने की आज्ञा दी है। इस प्रकार 'समः शत्रौ च मित्रे च' इस उच्च तत्त्व का केवल उपदेश ही नहीं किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातन धर्म ने दिखाया है, ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म में ढूंढने से भी मिलसकता है? कदापि नहीं। इससे सनातन धर्म की योग्यता, व्यापकता और महत्ता को सब सहज में ही समझ सकते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इसका यथार्थ विचार जिस में है ऐसा एक सनातनधर्मही है, इसको अन्यधर्मी लोग तथा हम में के सुधारक चाहे जो कुछ कहें परन्तु ईश्वर की यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक सनातन धर्मियों ने ही समझा है।

हमारे अठारह पुराण हैं और वह मानों पृथ्वीपर के प्रत्यक्ष प्रमाणोंकी समान ही १८ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, वह किसी विशेष कारण से सत्तरह या उन्नीस नहीं रचे गये हैं, इस बात को हम और किसी समय विस्तार के साथ कहेंगे॥

सनातनधर्म में भक्ति को परम तत्त्व माना है, परन्तु गुरु शिष्य भाव की प्रणाली बिगड़ जाने के विषय में मैं आप से पहिले ही कहचुका हूँ उसके बिगड़ने से जैसा योगमार्ग का लोप हुआ है तैसाही भक्तिमार्ग का भी लोप होगया। गुरु की कृपा से और सत्समागम से ईश्वर की ओर को लौ लगकर भक्तिरस का द्वार कैसा खुलजाता है और फिर अनन्य भक्ति करने लगने पर, सङ्कट के समय श्यामसुन्दर प्रभु अपना दर्शन देकर कैसी सहायता करते हैं इस विषय में उदाहरण रूप परम भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी का चरित्र संक्षेप से कहता हूं ॥

तुलसीदासजी का निवासस्थान बांदा जिले के राजापुर ग्राम में था और इन के पिता उधर के तहसीलदारी के काम पर थे और उन्होंने बहुतसा धन सञ्चय करा था, । इन की माता का नाम तुलसी था, दुर्दैववश तुलसीदासजी के पिता इनको सात आठ वर्ष का बालक छोड़ कर परलोक को सिधार गये इकलौता पुत्र और लाड़ला होने के कारण १५। १६ वर्ष की अवस्था तक यह निरक्षर ही रहे, तदनन्तर एक श्रेष्ठ कुल की कन्या के साथ इनका विवाह होगया। स्त्री के परमरूपवती होने के कारण तुलसीदासजीका ध्यान रातदिन उधर को ही लगा रहता था। आठों पहर उसके पाससे हिलते भी नहीं थे पिता का इकट्ठा कराहुआ धन खर्च होगया, सोता खुला होतो जल का हौज कबतक भरा रहसकता है, तुलसीदास जी के ऐसे स्त्री में आसक्त होने के कारण उनकी माता को बड़ा खेद हुआ और पुत्र को व्यापार धन्धा, नौकरी चाकरी आदि करने के लिये बहुत कुछ समझाया परन्तु तुलसीदासजीके ध्यान में एक भी बात नहीं आई और उलटा यह उत्तर दिया कि—तूहीं हम दोनों का पालन कर, ऐसा उत्तर सुनकर माता चित्त में दुःखित होती हुई मौन हो बैठी। पांच छः वर्ष ऐसेही बीत जाने पर बहू को लिवाने के लिये उसके पीहर से मनुष्य आये, उनको तुलसीदास ने निषेध करके लौटा दिया और स्पष्ट उत्तर दे दिया कि—मैं अपनी स्त्री को नहीं भेजूंगा, इस पर उन की माता ने कहा कि—प्रातःकाल के समय तुलसीदास एक घण्टे तक स्नान

आदि नित्य क्रिया करने को यमुनाजीके तटपर जाया करता है उस समय तुम डोला लेआना, मैं वहू को बिदा करदूँगी। दूसरे दिन जब तुलसीदास स्नान आदि करने के लिये यमुना जी को चले गयें, उसी समय उनकी माता के कहने के अनुसार तुलसीदास की सुसराल वाले आकर बहू को लिवा लेगये। इधर तुलसीदास जी स्नान आदि से निवटकर कन्धे पर धुली हुई धोती हाथ में जलकी झारी और एक पीताम्बर पहिने हुए आये सो पहिले तो उन्होंने घर में सर्वत्र देखा, परन्तु जब स्त्री घर में कहीं न दीखी तब माता से बूझा उसने नीहर के भेजदेने का वृत्तान्त सुनाया, इस बातको सुनते ही तिसी प्रकार नङ्गे धड़ङ्गे कन्धे पर धोती डाले और हाथ में जलकी झारी लियेही सासके घरको चलदिये, उनको इस बात का कुछ ध्यान नहीं था कि–मैं मार्ग में नङ्गा ही किस दशा में जारहा हूँ और सपाटा लगाये हुए श्वशुर के घर की ओर को चलदिये। उन को प्रेम रूपी रस्सी ने ऐसा जकड़ कर बांध लिया था कि–लोक लज्जा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। परन्तु इस निष्कपट प्रेम को देखकर परमदयालु भक्तवत्सल श्यामसुन्दर परमात्मा ने दयालु अन्तःकरण में विचार किया कि इसका ऐसा यह निष्कपट प्रेम यदि मुझमें होजाय तो इसका कितना उपकार हो! अच्छा तो इसके इस प्रेम को अब अपनी ओर खेंचकर इसके ऊपर अनुग्रह करूँ, इधर तो भगवान् का ऐसा सङ्कल्प हुआ, उधर तुलसीदासजी के श्वशुर के घर पहुँचतेही, तहां सास आदि सब ने जामाता की ऐसी दशा देखकर विचारा कि–यह जो ऐसे नङ्गे ही चले आये हैं सो इनकी माता बूढी थी वह कहीं परलोक को तो नहीं सिधारगई! इस कारण लोक रीति के अनुसार वह सब अपने नेत्रोंमें आंसू भर लाये। इधर तुलसीदास जीने भी देखा कि मुझे देखतेही इनके नेत्रों में आंसू भर आये, सो कहीं मेरी प्रिय स्त्री का तो कुछ अशुभ नहीं हो गया? ऐसा मन में विचार कर रोने लगे, इस प्रकार एकायक रोदन मच जाने पर दासी ने इनकी स्त्री को भी खबर करदी, वह तो पति की हानिकारक आति रूपा शक्ति

को जानती ही थी सो उसने बात को छुपाने के लिये अपने माता पिता से कहला भेजा कि–मेरे पति को कभी २ ऐसा उन्माद हो जाता है तब वह ऐसेही नंगा रूप बनाए फिरते रहते हैं, अतः इसमें दुःखित होने की कुछ बात नहीं है, यह वृत्तान्त जान श्वशुर ने जामाता को वस्त्र आदि देकर घरमें स्त्री के समीप जाने की आज्ञा दी, तुलसीदासजी ने देहली में पैर रक्खा कि–भगवान् की करुणा रूप उस स्त्री नें उसी समय निषेध करके समझाया कि हे स्वामिन्! आप मेरे लिये इतना कष्ट सहकर और लोक लज्जा तथा प्रतिष्ठा को त्यागकर आये हो, परन्तु यह तुम्हारा प्रेम यदि परम कृपालु, भक्तवत्सल, श्यामसुन्दर, कमलनेत्र धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र जी में लगा होता तो कितना उत्तम और अक्षय सुख का देने वाला होता। नाथ! मेरा यह सुन्दर दीखने वाला शरीर वास्तव में देखो तो मल मूत्र से भरा हुआ है, नाक, कान, मुख आदि में अनेकों प्रकार का मल है। और शरीर में भी हाड़ मास रुधिर के सिवाय और क्या रक्खा है? इस कारण ऐसे तुच्छ मलिन और नाशवान् मेरे शरीर पर के प्रेम को आप श्यामसुन्दर श्रीरामचन्द्र जी की ओर को अवश्य लगाओगे, मुझे यह दृढ़ आशा है! इतना उपदेश मय कथन सुनते ही तुलसीदास जी के विचार के नेत्र खुले और वह शान्त हो कर तत्काल मञ्जिल दरमञ्जिल चलते २ काशी जी में आकर मणिकर्णिका पर ठहरे। घाट पर पड़े हुए हैं, बराबर मुख में से राम राम की धुन लगरही है और श्यामसुन्दर का दर्शन पाने के लिये किसी महात्मा को गुरु करने की उत्कट इच्छा होरही है, इतनेही में नरहरि स्वामी प्रातःकाल का स्नान सन्ध्या करके लौटे हुए आश्रम को जारहे थे, उन्होंने हृदय द्रावक राम नाम की रटना को सुनकर समझा कि–यह कोई आर्त्त और प्रेमी पुरुष है, तत्काल समीप में गये और वृत्तान्त बूझा। तब तुलसीदास जी ने आद्योपान्त अपनी सब कहानी सुनाई और प्रार्थना करी कि–इस शरीर को भगवान् श्याम सुन्दर का दर्शन कराने के विषय में यदि आप निश्चय दिलाते हैं, तब इस शरीर

को रखता हूँ, नहीं तो अभी गङ्गार्पण करे देता हूँ यह सुनकर नरहरि स्वामी ने विचारा कि—जब भक्त के नेत्रों में प्रेमाश्रु आजाते हैं तब परम कारुणिक परमात्मा अवश्यही सुध लेते हैं, फिर यह तो अत्यन्त आतुर और सकल शरीर अर्पण करने को उद्यत होरहा है तो क्या इसको भगवत्प्राप्ति नहीं होगी? ऐसा विचार कर कहने लगे कि—उठ, कुछ चिन्ता न कर, इस जन्म और इसी शरीर में ही तुझको दर्शन होगा। तदनन्तर गुरु के चरणों पर मस्तक रखकर उनकी टहल सेवा करते हुए तुलसीदासजी ने ५। ६ वर्ष में उत्तम रीति से वेद शास्त्रादि पढ़े और परम अनुरागरूप भक्ति का साधन किया। एक दिन नाव में बैठकर नित्यक्रिया करने के निमित्त गंगा के परलेपार गये तहां शौचक्रिया से निवट कर शेष बचे जलको फेंक देने पर उस अपवित्र जल से एक पिशाच की तृप्ति हुई, तब उसने आग्रह करके कहा कि—मुझ से कुछ सोना—हीरा—मोती आदि धन मांगो, तुलसीदास जी ने कहा कि मुझको धन की आवश्यकता नहीं है, यदि शक्ति होतो मुझको श्री श्याम सुन्दर भगवान् का दर्शन कराओ, पिशाचने कहा—यह तो मुझसे होना कठिन है परन्तु मैं तुमको एक उपाय बताता हूं, उसके अनुसार कार्य करिये निःसन्देह आप की इच्छा पूरी होगी। वह उपाय यह है कि—आजकल गंगा तटपर वाल्मीकि रामायण की कथा होती है, तहां श्रोताओं में एक ओर को, जिस का शरीर कोढ़ से गलरहा है ऐसा पुरुष आकर बैठता है, कथा समाप्त होने पर तुम उसके चरण पकड़ लेना छोड़ना मत, बस वह तुम्हें श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करादेगा। तिसी प्रकार तुलसीदास जी कथा समाप्त होने पर उसके पीछे २ जाने लगे, कुछ देर में नगर के बाहर पहुँचने पर उस कोढी पुरुष ने बूझा कि—तुम मेरे साथ क्यों आते हो? तुम को क्या चाहिये? और मुझ ऐसे पुरुष से क्या मिलसकता है? तब तुलसीदास जी ने चरण पकड़ कहा कि—महाराज! मुझे श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करा दीजिये,तब उस कोढी ने यह समझ कर कि—अब यह मेरा पीछा नहीं छोडेगा, तत्काल कोढी का रूप त्यागकर अपना साक्षात् रूप धारण कर

लिया, वह साक्षात् पवनकुमार हनुमान् जी थे उन्होंनें तुलसीदास के पूर्व भक्तिभाव और दृढ निश्चय को जानकर ढाढस दिया, कि--तुमको श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन होगा इसमें कुछ सन्देह न समझो और जब मेरा स्मरण करोगे तब मैं भी तुमको दर्शन दूंगा। तिसके कुछ दिन पीछे तुलसीदास जी गंगातटपर रामायण की रचना करते समय लेखनी कान में रखकर कुछ विश्राम ले रहे थे उसी समय गंगा के परलेपार घोड़ेपर सवार एक श्यामसुन्दर मूर्त्ति को देखा परन्तु चकित होकर मनमें विचारा कि यह कोई राजकुमार है, तदनन्तर वह मूर्त्ति तहां ही अन्तर्धान होगई इसके अनन्तर और कुछ दिन वीतने पर तुलसीदास जी सोचने लगे कि-देखो इतने दिन वीतगये परन्तु अभी तक श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन नहीं हुआ और चित्त में अकुलाकर पवनकुमार की स्तुति कर के स्मरण किया सो उसी समय हनुमान जी प्रकट हुए, तुलसीदास जी ने हाथ जोड़ कर विनय करी कि-भगवन्! क्या कारण है जो आपने अभी तक दर्शन नहीं कराया तब महावीर जी ने कहा कि-अमुक दिन गङ्गा के परले पार घोड़े पर सवार श्यामसुन्दर की मूर्ति प्रकट हुई थी फिर तुम नहीं कैसे कहते हो, तब तुलसीदास ने किसी राजपुत्र का सन्देह होना निवेदन करके वड़े करुणास्वर से परमात्मा की प्रार्थना करी कि-हे श्यामसुन्दर! परमकृपानिधे! मैं कैसा अभागा हूँ कि आपने स्वयं दर्शन दिया परन्तु मुझे आपके दर्शन का पूर्ण लाभ नहीं हुआ मेरे रोम रोम में पाप भरा है परन्तु हे दीनवन्धो! आपने अजामिल आदिका उद्धार करा है और शरणागत को नहीं त्यागते हो ऐसा वेद शास्त्र कहते हैं, सो हे कृपासिन्धो! मैं आपके चरणों की शरण में आया हूं इसलिये आप मुझे दर्शन देकर मेरा उद्धार करो॥

तब महावीरजी ने उनको हृदय से लगाया और समझा बुझाकर कहा कि तुम धीरज धरेरहो, फिर साक्षात् दर्शन होनेका अवसर आवेगा। अब तुम चित्रकूट को जाओ और तहां प्रभुकी इसीप्रकार सेवा करते रहो बस थोड़ेही दिनों में श्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन होगा। तिसी प्रकार

चित्रकूट पर जाकर तुलसीदासजी को प्रभु सेवा करते हुए बहुत दिन बीत गए परन्तु दर्शन होने का अवसर न आया एकदिन चन्दन घिस रहे थे कि अन्तःकरण प्रभुका दर्शन करने के लिए आकुल व्याकुल होगया और नेत्रों में से आंसुओं की धारा चलने लगी। जब योगी संन्यासियों को काठ की माला के दाने फिराने से प्रभुके दर्शन का योग प्राप्त होता है तब जो अपने आंसूरूपी दानों की माला को फेर रहा है इसको क्या प्रभु अपना दर्शन न देंगे? ऐसे असीम प्रेम को जान कर भगवान् श्यामसुन्दर के मनमें करुणा का प्रवाह बहने लगा और अब इस भक्त शिरोमणि का अन्त देखने का समय नहीं है ऐसा बिचारकर तत्काल आठ वर्ष के बालक का परम मनोहर रूप धारकर तुलसीदासजी के समीप आये और बाबाजी कहकर उनको नमस्कार करा तथा पास बैठ गए। तुलसीदासजी उस सुन्दर बालस्वरूप को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु फिर सन्देह ग्रस्त होजाने के कारण तथा मन को व्याकुलता होने से उचित ध्यान नहीं हुआ। तब तो महावीर जी को चिन्ता हुई कि क्या यह सुअवसर भी योंही जायगा? इस कारण आप तोता बनकर समीप के वृक्षपर बैठ गए, इधर बालरूपी श्रीरामचन्द्रजी ने तुलसीदासजी से बूझा कि—बाबाजी मैं अपने हाथ से तुम्हारे चन्दन लगादूं क्या? तुलसीदासजी ने कहा अच्छा, उसी समय प्रभु श्यामसुन्दर अपने कोमल हाथों से उनके मस्तक पर चन्दन लगाने लगे, तब तोते के रूप में बैठे हुए हनुमान् जी ने कहा कि—

> चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
> तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलकदेत रघुबीर॥

ऐसा कहने पर भी तुलसीदास का ध्यान उधर को नहीं गया तब फिर इस दोहे को पढा तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा बाबाजी अब मैं तुम्हें दर्पण दिखाता हूँ दर्पण दिखाते में तुलसीदासजी को भगवान् श्यामसुन्दर की तेजस्वी अँगुलियें दीख गईं और इधर शुकरूप हनुमान जी ने उस दोहे को तिसरा कर पढा तब तो तुलसीदासजी को ज्ञान हुआ कि—यहीं

साक्षात् श्यामसुन्दर कमलनेत्र भगवान् श्रीरामचन्द्र जी हैं और प्रार्थना करके साक्षात् दर्शन का दिव्यसुख पाया । सार यह है कि श्रीनरहरि-स्वामी के उपदेश से तुलसीदासजी का भक्तिरस कैसा बढा जिस से वह परमप्रेमी भक्त बनकर प्रभु से मिल गये इसमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है । तथा अपने प्रेमी भक्त के लिए परमदयालु परमात्मा का अनेकों रूपों में अवतार होता है यह भी प्रकट होगया ।

आजकल के सायन्टिफिक [शास्त्रज्ञ] पुरुषों को यह असम्भव प्रतीत होगा परन्तु आत्मा क्या है और सन्ध्या, प्राणायाम भक्ति आदि साधनों से आत्मा की उन्नति करके परब्रह्म की प्राप्ति किस प्रकार होती है, यह बात मैं अपने दूसरे आख्यान में कहूँगा । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

स्वामी हंसस्वरूप ।

❋ ब्रह्मविद्यासे सन्ध्याका सम्बन्ध ❋

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यञ्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

हे प्रिय सभासद् गण ! सनातनधर्मरूपी रेलगाड़ी, सभारूप स्टेशन पर हर्षरूप सीटी बजाती हुई आरही है और उपदेशक रूप स्टेशन मास्टर उपदेश रूप टिकट देकर, ईश्वर के चरणारविन्दरूप सदर स्टेशनपर पहुँचाने के लिए तैयार हैं । तैसेही ध्यानरूपी तार कुण्डलिनी से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त खबर देने को तैयार हैं इस स्टेशन पर ८४ लाख योनिरूप भिन्न२ प्रकार के टिकट दिये जाते हैं और उन में फर्स्टक्लास [१ दर्जे] का टिकट मनुष्य योनि है ? उसके आश्रय से भक्तिरूप सर्वोत्तम गाड़ी पर चढने का उद्योग करना चाहिए, यदि यह गाड़ी हाथ से निकल गई तो फिर पछतावाही रह जायगा, इस लिए, आगे के प्रचार की ओर आप लोग सावधान रहें ।

इन विद्याओं में ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम विद्या है, वह अन्तकाल के लिए कल्याण करनेवाली है और इस विद्या को जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी होते हैं। पूर्वकाल में अग्निरूप गायत्री के कारण ब्राह्मण परमश्रेष्ठ हुए, अपने तेजोबल से सबके पूज्य हुए, अधिक तो क्या बड़े २ राजा भी हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़े रहते थे और उनको अपने राजसिंहासन पर बैठाते थे। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञमें भोजन कराने के लिए ब्राह्मणों को बुलाया, तब ब्राह्मणों ने स्पष्ट कहदिया था कि-हम ऐसे यज्ञ में भोजन करने को नहीं आते, परन्तु अब वह समय और ब्राह्मणों का वैसा तेज नहीं है, ब्रह्मविद्या के न होने से ब्राह्मणों की हीन दशा होरही है। संन्यासीं आदिकों की भी यही दशा है। पहिले परम आदर सत्कार होता था, परन्तु अब कमण्डलु लेकर द्वार २ घूमने पर भी कोई नहीं बूझता! क्षत्रियों की भी ऐसी ही दशा है, जो क्षत्रिय अपनी क्षात्रविद्या के तेज से बेधड़क शत्रुओं के ऊपर टूट पड़ते थे, और तोप की नाल में भी हाथ देदेते थे, वह क्षत्रिय आज तेजोहीन होकर एक साधारण बन्दूक का शब्द सुनने पर भी अन्धेरी कोठरी में छुपकर बैठने का उद्योग करते हैं, एक ब्रह्मविद्या के न होने से ही दोनों वर्णों की यह दशा हुई है। वैश्यों की भी यही दशा है, और शूद्रों में तो सर्वथाही विपरीति भाव होगया है वह शास्त्र आज्ञा की कुछ परवाह न करके अपनी बुद्धिसे उच्च वर्णों के आचार विचारों को ग्रहणकर अपने को उच्च कहनेलगे हैं। देखो रेल में जब कोई ब्राह्मण बैठा होता है और उसके समीप कोई स्पर्श के अयोग्य शूद्र आकर बैठता है तब ब्राह्मण उससे अलग को बचेहुए बैठनेको कहता है तो इसके उत्तर में वह कहता है कि-मैंने भी टिकट का मूल्य दिया है इसके सिवाय मैंभी मनुष्य हूँ तुम भी मनुष्य हो तब विचारा ब्राह्मण अपना लोटा पुस्तक उठाकर एक कोनेमें को जा बैठताहै, तब वह शूद्र महाशय ब्राह्मण की ओर को और भी चरण फैलाकर बैठने लगते हैं सार यह है कि-जैसे हम लोगों की पोशाक में अन्तर पड़गया है तैसे ही वर्णों में भी गड़बड़ी हुई है। पहिले चरणोंतक लटकता हुआ, अङ्गरखा और

पैर के पंजेमात्र में भरकर आनेवाला जूता पहिना जाता था, वह रीति बदल कर जूता घुटनों तक का होते २ अब सब शरीर चमडे से ही बांधा जाता है, जंघाओं तक जूता चमडे का कमर में पेटी चमडे की कमर से कन्धों तक पतलून बांधने के तशमें चमडे के शिरपर वलायती टोपीमें चमडा और अङ्गरखा कोट का रूप पाकर कमर तक ही रह गया वर्णोंमें भी ऐसे ही उलटी दशा होगई है। ऐसी शोचनीय दशा आने का कारण केवल हमारा कर्मलोप है। जैसे किसी वर्णमाला की लिपि में का पहिला अक्षर फटकर या पुस्तक को कीडे के खालेने के कारण नष्ट होकर उसमें का दूसरा अक्षर "ख" ही उस पहिले के स्थान में होजाय और ऐसा विपरीत ज्ञान होजाय कि—पहिले धोखा हुआ वह 'का' यही है तथा इसी प्रकार आगे 'ग' ख और 'घ' ग मान लिया जाय तो केवल एक वर्ण की अव्यवस्था से भाषा में सर्वत्र अव्यवस्था होकर अर्थ का अनर्थ होसकता है तैसे ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने की आदि साधनरूप जो हमारी सन्ध्या तिससे विमुख होने के कारण हमारी सब प्रकार की व्यवस्थाओं में गडबडी पडगई है। जैसे अङ्गरेजी भाषाके मूल २६ अक्षर हैं तैसेही ब्रह्म विद्या के भी १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय (चोरी न करना] ४ ब्रह्मचर्य ५ क्षमा ६ धृति (धीरज रखना) ७ दया ८ आर्जव [सरलपना अर्थात् अहंपने को त्याग कर सब से दीनता पूर्वक वर्ताव करना] ९ मिताहार [थोड़ा भोजन करना] १० शौच [शरीर और चित्त को पवित्र रखना] ११ तप १२ सन्तोष १३ आस्तिक्य (शास्त्र और गुरु के उपदेश मय वाक्यों पर विश्वास रखना) १४ दान १५ ईश्वर का पूजन १६ सिद्धान्त वाक्य श्रवण [उपनिषदादि को सुनते रहना] १७ ही [बुरे कार्यों में लज्जा करना और सत्कार्यों में किसी की भी लाज न करना] १८ मति संसारिक सुखों का तो क्या स्वर्ग आदि ऐश्वर्य का भी लोभ न करके "ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है" ऐसी दृढ़ बुद्धि रखना) १९ जप २० हुतु [तमोगुणी रजोगुणी पुरुष पशुओं का और फलादिकों का हवन करते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष अन्तर्दृष्टि करके विषयोंका इन्द्रियोंमें और

इन्द्रियों का अन्तःकरण में हवन करते हैं] २१ आसन २२ प्राणायाम २३ प्रत्याहार (चित्त रुककर शब्दादि विषयों की ओर को चलायमान नहीं होता है तब इन्द्रियें भी रुक जाती हैं और अपने २ विषयों को ग्रहण नहीं करती हैं इसका नाम प्रत्याहार है) २४ धारणा [नाभि चक्र आदि विशेष स्थान में चित्त को स्थिर करना] २५ ध्यान (जहां चित्त की धारणा करी हो तहां ही उसकी एकाग्रता करके दूसरी ओर को न जानें देना) और २६ समाधि ध्यान जब ध्येय के स्वरूप का होकर अन्य पदार्थ का ज्ञान भिन्न रूप से कुछ नहीं रहता है और ध्यान तथा पदार्थ दोनों का एकाकार होजाता है तो उसको समाधि कहते हैं) यह छब्वीस ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर हैं, भगवान् पतञ्जलि ने—यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि इस प्रकार योग [ब्रह्मविद्या] के आठ अङ्ग कहे हैं, इन में पहिले दो अङ्ग यम और नियम का हठयोग प्रदीपका आदि ग्रन्थों में विस्तार के साथ वर्णन करा है और यम अहिंसा आदि दश भेद तथा नियम के तप आदि दश भेद कहे हैं इस प्रकार दोनों मिलकर वीस अङ्ग होते हैं और शेष आसन आदि मुख्य छः अङ्ग इस प्रकार सब २६ अङ्ग हैं और ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर अर्थात् कट-कौड़े हैं ॥

एक साथ जगत् भर के सब मनुष्यों से यदि बूझाजाय कि—तुमको क्या चाहिये ? तो सब यही कहेंगे कि—हमें सुख, आयु, नीरोगता और ब्रह्मप्राप्ति (मोक्ष) यह चार पदार्थ चाहिये [इन में भी सब से पहिले आयु की विशेष आवश्यकता है, विचार देखो कोई अत्यन्त आसन्नमरण होकर पड़ा हो और डाक्टर आकर कहे कि—तुझे अच्छा करने के लिये पहिले तेरी भुजा गर्दन में शस्त्र से छेद किया जायगा फिर औषधि लगाई जायगी तो वह यही उत्तर देगा कि—महाराज मेरी भुजा को चाहे चीर डालो परन्तु कृपा करके गर्दन को बचादो, न जाने कदाचित् गर्दन से मर्मस्थान में शस्त्र लगने से मरण ही होजाय, सार यह है कि—बुढ़ापे में भी उसको जीवित रहने की ऐसी प्रबल इच्छा होती है, इस कारण मनुष्य

की सब से पहिली प्रियवस्तु आयुही है। इसी प्रकार शेष तीनों बातों की भी कौन भाग्यवान् इच्छा न करेगा ? यह चारों प्रकार के लाभ सन्ध्या-वन्दन से होते हैं, सारांश यह है कि ब्रह्मरूपी हीरा हमारे पास ही है, परन्तु उसका बतानेवाला श्रेष्ठ गुरु चाहिये, इसमें उदारण है कि--एक समय-एक गड़रिया भेड़े चराने को जङ्गल में गया, दैववश वहां उसने एक पड़ा हुआ हीरा पाया, परन्तु उसको हीरे की पहिचान नहीं थी, इस कारण उसने एक चमकीले कांच का टुकड़ा समझ के डोरे में बांधकर अपनी भेड़ के गले म पहिरादिया। फिर कुछ दिनों में वहां दुष्काल पड़ा और लोग अन्न के लिये तरसने लगे तो इस विचारे की दुर्दशा की दुर्दशा का तो कहनाही क्या ? पाव भर अन्न भी मिलना कठिन होगया, तब तो दीन हीन होकर घरमें पड़रहा इसी अवसर में उसके यहां परदेश से कोई सम्बन्धी आया, वह अपने सम्बन्धी की ऐसी दुर्दशा देखकर बड़ा दुःखित हुआ, इतने ही में वह भेड़ उसकी दृष्टि के सामने आगई और उसके कण्ठ में बँधा हुआ हीरा भी दीखा, तब उसने बूझा कि भाई! यह किसकी भेड़ है और इसके गले में क्या बांधा है ? गडरिये ने उत्तर दिया कि-यह मेरी भेड़ है और इसके गले में मैंने इस २ प्रकार से मिली हुई चमकदार कांच बांध दी है तब तो वह कहने लगा कि—भाई ! यह छोटी वस्तु नहीं है यह हीरा है और तू बाजार में लेकर जायगा तो तुझको सहज में ही इसके २० । २५ सहस्र की जगह आधी कीमत तो भी मिल जायगी, तब तो वह उसी बाजार को गया और उस हीरे को बेचकर बहुतसा धन लाया जिस से उसका सब कष्ट दूर होकर वह एक धनवान् बनगया । इसी प्रकार ब्रह्मरूपी रत्न हम सबों के कंठ में बँधा हुआ है, परन्तु हम उस बहुमूल्य मणि को जानते नहीं हैं, इस कारण ही हमारी ऐसी दीन हीन दशा होरही है तथापि आशा है कि—सच्चे गुरु के मिलने पर हमें उस का सच्चा मूल्य मालूम होजायगा. जिस से हमको ऊपर कहेहुए चार प्रकार के लाभ होंगे । सार यह कि—संध्या ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति करानेवाली है और उसकी उत्तम रीति

जानने के लिए हमको उद्योग करना चाहिए। अब हमारे सन्ध्या करने से यदि हमको यह चार लाभ होंगे तो उसको उचित रीति से करने के लिए, पहिले हमारे शरीर की कैसी रचना है, इस विषय में थोड़ासा विचार करते हैं।

यह स्थूल शरीर किलारूप है, पृथ्वी आदि पांच तत्त्व इसकी दीवारें हैं चमड़ा, रुधिर, मांस, हड्डी आदि सात धातुएँ खाई हैं चतुर्दलचक्र षट्दलचक्र आदि सात मञ्जिलें हैं साढे तीन लाख नाड़ियों का परकोटा बना है। सात मंजिलें यह हैं (१) गुदा और मूत्रेंद्रिय के मध्य में चतुर्दल चक्र है इस को (Pelvic plexus) अर्थात् आधारचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् गणेश हैं। और इस चक्र में ज्योतिष्मती भगवती कुण्डलिनी है। नाभि के नीचे लिंगके पश्चिमभाग में षट्दलचक्र है इसको (Hypogastric plexus) अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् ब्रह्मा हैं। ३) नाभि में दशदलचक्र है इसके (Epigastric plexus) अर्थात् मणिपूरचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृ-देवता भगवान् विष्णु हैं। (४) हृदय में द्वादशदलचक्र है इसको (Cardiac plexus) अर्थात् अनाहतचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् शिव हैं (५) कण्ठ में षोडशदलचक्र है इसको (Carotid plexus) अर्थात् विशुद्धिचक्रकहते हैं इसके दाइ ओर इड़ा और बाईं ओर पिंगला तथा मध्य में सुषुम्णा है इसके अधिष्ठातृदेवता रुद्र हैं (६) भ्रूकुटिस्थान में द्विदलचक्र है इसको (Medulla oblongata) अर्थात् आज्ञाचक्र कहते हैं और कोई इसको विन्दुस्थान भी कहते हैं (७) मस्तक में सहस्रदलचक्र है इसको (Brain) अर्थात् ब्रह्मचक्र कहते हैं इसमें संविद्रूप सच्चिदानन्द हैं।

इस प्रकार यह ७ मंजिलें हैं। किसी को शङ्का होगी कि शरीर के भीतर यह कमल और उनकी पखुरियें या चक्र है यह कैसे होसकता है? क्या सत्यही कमल और चक्र आदि हैं? इसका उत्तर यह है कि वह कमल आदि तालाव में के कमल आदि की समान नहीं हैं, किन्तु उन

स्थानों में बहुत सी नाड़ियें इकट्ठी होकर जो एक जाल बनगया है उसका आकार कमल की समान है। तरबूज के डंठल की समान मस्तक पर लटकती हुई शिखा केवल मूर्खता का दृष्टान्त है ऐसा कितने ही भिन्न धर्मी और नवशिक्षित कहते हैं, परन्तु सनातन धर्म में यह एक मुख्य बात है जैसे किले में राजमन्दिर के समीप वा रत्नमय खजाने के चारों ओर सिपाहियों के पहिरे का बन्दोबस्त होता है और ऊपर ध्वजा फड़कती रहती है तैसे ही ब्रह्मरूपी रत्न व राजा मस्तक में के सहस्रदल चक्र में चारों ओर से प्रबन्ध होकर रहता है, और तहां उसको जतानेवाली शिखारूप ध्वजा फड़क रही है। इस कारण ही उस राजारूप, वा रत्नरूप ब्रह्मको पाने के लिए हम जब सन्ध्या करनेको उद्यत होते हैं उस समय पहिले ब्रह्म सूचक गायत्री मन्त्र से शिखा को बांधना कहा है।

ऊपर वर्णन करे हुए शरीर रूपी किले में परमात्मारूपी हीरा है उसको लेने के लिए मानों जीवरूपी चोर रातदिन उद्योग करता रहता है उसको एक के पीछे दूसरे खाई आदि से रुकना पड़ता है हरएक जीव इनके पार नहीं होसकता कदाचित् उसने थोड़ासा उद्योग किया भी तो उसकी दशा ठीक नहीं रहती है अर्थात् उपरोक्त पञ्चतत्त्वों की दीवारों में अथवा रक्त मांसादि की खाइयों में ज्वर खांसी आदि से हानि पहुंचने लगती है और उससे एक प्रकार की स्थिरता होकर कभी २ शरीर के नाश होने का भय होता है। पहिले समय वाल्मीक आदि ऋषियों के शरीर पर वमई आदि बन गई परन्तु वह उस की कुछ परवाह न करके ब्रह्म में ही मग्न रहते थे वैसी शक्ति आज कल हममें नहीं रही है हममें ऐसी शक्ति न रहने का कारण क्या है? क्या पहिले पुरुष ईश्वर को लालच और रिश्वत देते थे और हम नहीं देते हैं, इस कारण वह हमारी ऐसी दुर्दशा करता है? प्यारे सभासदो! यह बात नहीं है परन्तु हमारे पूर्व पुरुष जिस निष्ठा से रहते थे वह निष्ठा हम में नहीं रही इस कारण ही ऐसी हीन दशा हो रही है। यद्यपि दशा बहुत खराब है परन्तु उद्योग करने से हम अपना बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। अब, जैसे

किसी राजा से मिलना होता है तो पहिले द्वारपाल से मेल करने पर युक्ति से कार्य सिद्ध होता है, तैसे ही शरीररूपी स्थान के प्राणरूपी मुख्य द्वारपाल से हम को मेल करना चाहिए । सर्व इन्द्रिय आदिकों में प्राण ही श्रेष्ठ है इस विषय पर छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रकार का इतिहास है कि—

यो ह वै जेष्ठं च श्रेष्ठं च० ॥ १–५ ॥ अथ ह प्राणा अहᳫं श्रेयसि व्यूदिरेहऽᳫं श्रेयानस्म्यहᳫं श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥ तेह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति, तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यपर्येत्योवाचकथमशकततें मज्जीवितुमिति यथाकला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन्न पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश हावाक् ॥ ८ ॥ चक्षुर्होच्चक्रा० ॥ ॥ ९–११ ॥ अथ प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः षड्वीशशंकून्सांखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्तᳫं हाभिसमेत्योचुर्भवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोसि प्रोत्क्रमीरिति ॥ ॥ १२ ॥ अथ ह० ॥ १३–१५ ॥

यह सम्वाद बहुत बड़ा है परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि एक समय सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ कौन है इस बात का विवाद होकर यह निर्णय करने के लिये ब्रह्मा जी के पास गई तब ब्रह्मा जी ने कहा तुम में से हरएक एक २ वर्ष तक शरीर से बाहर रहो तब जिसके न होने से काम अटकेगा म उसीको श्रेष्ठ समझूँगा, तिसी प्रकार सब इन्द्रियें पारी २ से बाहर निकल गईं परन्तु काम न अटका नेत्र जाने पर अन्धे की समान,

कान जाने पर बहिरे की समान इत्यादि सब व्यवहारों का निर्वाह होगया, परन्तु अन्त में "सोहम् सोहम्" करनेवाला प्राण ही श्रेष्ठ ठहरा, क्योंकि इसके जरा चल विचल होते ही सब इन्द्रियों का काम बन्द होनेलगा और शरीर पञ्चतत्त्व में गिलनेलगा नष्ट होनेलगा तब सब इन्द्रियों ने प्रार्थना करी कि हे प्राण ! तू हमसे अलग न हो सार यह है कि प्राणहीं श्रेष्ठ ठहरा और उसको शरीर का द्वारपाल बनाया। यह केवल जागतेहीं में अपना पहिरा नहीं देता है किन्तु सोते समय भी अपना काम करता रहता है, और उस समय चारों ओर सूनसान होने के कारण मानों चोरों का अधिक भय समझकर अपना काम बड़े जोर से चलाता है। बस इस पहिरेदार से मित्रता करनेपर ही शरीररूप किले में स्थित परमात्मारूपी हीरा सहजमें ही हाथ लगजायगा। प्राणायाम करनाही प्राणों से मित्रता करना है और वह प्राणायाम हमें सन्ध्या वंदन में ही सीखना पडता है इस कारण सन्ध्याही हमारे लिए ब्रह्मप्राप्ति का साधन है, इसके द्वारा ही हमें ईश्वर की प्राप्ति होगी, अतः यह संध्या ठीक २ विधिपूर्वक होनी चाहिए, आजकल बहुत से लोग जैसे सटपट करके सन्ध्या कर लेते हैं वह ठीक नहीं, आजकल संध्या के समय प्राणायाम करनेवाले आसन या पटले पर नाक कान को हाथ लगा थोडासा पानी छोड पढते हैं गायत्री मन्त्र, ध्यान रहता है चूल्हे की ओर, दिखावे को परमात्मा का ध्यान करते हैं परन्तु ध्यान होता है कचहरी या व्यापार का, ऐसा करना केवल शुष्कवाद है इससे कुछ लाभ नहीं होसकता, अतः इस अन्ध परम्परा को छोडकर वास्तविक रीति से संध्या करने पर ही आत्मोन्नति होगी।

परम हितकारिणी प्राणायाम की क्रिया को योग्य रीति से करने पर प्रारम्भ में कठिनता प्रतीत होगी, परन्तु अभ्यास से सब कुछ सिद्ध होसकता है इस कारण जिस कार्य के प्रारम्भ में कष्ट हो और परिणाम में सुख मिले उसको स्वीकार करना ही विचारवान् का लक्षण है, परन्तु अज्ञानी पुरुषों को उसका तत्त्व नहीं प्रतीत होता है। बालक को पाठशा-

लामें भेजने पर जब गुरु अक्षर सिखाने लगते हैं उस समय वह सिखाना उस बालक को इतना कष्टदायक प्रतीत होता है कि वह उस सीखने से भागता है और चित्त में पिता और गुरु को शत्रु के समान समझने लगता है. परन्तु अन्त में जब बडी बडी परीक्षाओं के पार होकर बहुतसा धन पाता है तब परम आनंदित होता हुआ कहता है कि मेरे माता पिता और गुरु को धन्य है जिनकी कृपासे मैं इस योग्य हुआ। ब्रह्मविद्या के विषय में भी यही बात है प्रारम्भ में यद्यपि यम नियम प्राणायाम आदि कार्य कठिन प्रतीत होते हैं परन्तु सब अभ्यास करते करते वह सिद्ध होजाते हैं तो अन्त में उनसे सच्चा सुख मिलता है। पहिले कहा ही था कि ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर हैं जैसे कोई भी भाषा सीखनी हो तो उसकी सम्पूर्ण वर्णमाला सीखनी पडती है और उस वर्णमाला का ज्ञान होने परही वह भाषा समझ म आती है, तैसेही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिये उसके अहिंसा सत्य आदि वर्ण भी सीखने चाहिये उन वर्णों में अहिंसा स्वरों की समान है, उसके बिना व्यंजन रूप अन्य गुणों से कुछ काम नहीं चलसक्ता। म एक व्याख्यान अहिंसा विषय में ही विस्तारके साथ अलग कहूँगा, इस कारण अब इस ब्रह्मविद्या की वर्णमाला में का दूसरा वर्ण जो सत्य है उसके विषय में कुछ कहता हूँ।

मनुष्य को सदा सर्वदा सत्यही बोलना चाहिये यदि सत्य न हो तो इस जगत् में के व्यवहार कभी चलही नहीं सकने, और पद पद पर अव्यवस्था होकर मनुष्य समाज और उन मनुष्यों के कुटुम्बों की दशा भी विगड जाय इस कारण ब्रह्मविद्या क प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को यह गुण अवश्य ही सम्पादन करना चाहिये श्रीमनु भगवान ने कहा है कि—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोले, मधुर बोले, और सत्य भी ऐसा बोले जिसमें दूसरे को कठोर प्रतीत न हो, अर्थात् उससे किसी का चित्त न दुःखे दूसरे के

चित्त को दुखाने वाला सत्य भी दोषदायक होता है। समझ देखो कि-कोई पुरुष डेढ सेर भोजन करता है उससे यदि कोई कहे कि वाह आप तो १॥ सेर पर हाथ फेरते हैं ? तो यद्यपि यह कहना सत्य है परन्तु ऐसा सुनकर दूसरे पुरुष को क्रोध आवेगा। इस कारण यदि ऐसा कहा जाय कि—महाशय ! आप की पाचन शक्ति औरों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तब उसको असह्य प्रतीत न होकर अपनी प्रशंसा प्रतीत होगी, तिसी प्रकार जब कोई प्रवीण न्यायाधीश किसी फांसी के कैदी को हुक्म सुनाता है तो वह सुनाने के अनन्तर फिर कहता है कि तेरे ऊपर मुझे बड़ी दया आती है और मेरी इच्छा थी कि तुझको इस दण्ड से मुक्त करदूँ परन्तु क्या करूँ ? मैं कानून से बँधा हुआ होने के कारण विवश हूँ, तो मरण काल में भी वह कैदी उस न्यायाधीश को बुरा नहीं कहता है। सार यह है कि सत्य होने पर भी जो प्रिय प्रतीत हो उस वचन को ही बोले, ऐसा होते २ कदाचित् अप्रिय होने के भय से मनुष्य असत्य प्रिय बचन न बोलने लगें। इस कारण मनु जी कहते हैं कि प्रिय होने पर भी जो असत्य हो उस वचन को कभी न कहै। यह सत्य बोलने के महत्व का नियम ध्यान में रखना चाहिये। इस विषय में दृष्टान्त है कि—एक पुरुष को बैंगनों का साग प्रिय लगता था। इस कारण उसने अपने सेवक से कहा कि परमेश्वर ने यह साग मनुष्य के लिये बहुतही अच्छा बनाया है, तब वह सेवक स्वामी की मनसा देखकर कहने लगा कि हां साहब इस कारण ही परमेश्वर ने इस उत्तम फल के ऊपर छत्र रख दिया है। उस दिन उसने बैगनों का साग बनवाकर खूब खाया और दूसरे दिन उससे विकार होकर दुःख बढने लगा तब तो वह बोला कि यह बड़ा बुरा साग है। यह सुन उस खुशामदी सेवक ने कहा हां महाराज इस कारण ही परमेश्वर ने इस के मुख पर कांटे छेद दिये हैं इतना सुन वह स्वामी अचम्भे में होकर कहने लगा कि क्योंरे कल तैंने बैंगनों की प्रशंसा की थी और आज ऐसी निन्दा करता है इसमें तेरा कौनसा कहना सत्य समझा जाय ? उसने उत्तर दिया मैं बैंगनों का नौकर नहीं

हूँ ! मैं तो आपका सेवक हूँ, इस कारण जो बातें आपको प्यारी लगैं वही कहता हूँ, सार यह है कि ऐसी असत्य मिली मुह देखी सच्ची बात को त्यागना ही अच्छा है। परन्तु आज कल ऐसी मुँहदेखी बातों का प्रवाह अधिक बढगया है जिससे मनुष्य समाज की बड़ी हानि होती है, जहां तहां हरएक काम में पालिसी देखने में आती है परन्तु जब यह कुचाल बन्द होगी तबही मनुष्य समाज का कल्याण होगा और ब्रह्मविद्या में तो ऐसी कुचाल का लेश भी ठीक नहीं। तथापि यह बात ठीक है कि जिसका ऐसा असत्य बोलने का स्वभाव पडगया है वह एक दिन में दूर नहीं होगा परन्तु उसको उस कुचाल के त्यागने का हर समय ध्यान रखना चाहिये। आज बीस भाग असत्य और पांच भाग सत्य बोलता है तो कल से उन्नीस भाग असत्य और छै भाग सत्य, आठ दिन के अनन्तर अठारह भाग असत्य और सात भाग सत्य बोले इस प्रकार बढातेर अन्तमें पचीसों भाग सत्य बोलने लगैगा। इस पर कोई शङ्का करे कि सन्ध्या में पापों को दूर करने वाला मन्त्र कहां है उससे रात्रि के (My dear friend take glass for my love) इत्यादि पापों का प्रक्षालन प्रातःकाल की सन्ध्या से और दिनभर झूठ बोलना जेब काटना झूठी दस्तावेज बनाना गरीबों की गरदन मरोडना इत्यादि पापों का प्रक्षालन सायं सन्ध्या से होता है, यदि कोई ऐसा समझता हो तो व्यर्थ है। सन्ध्या में पाप नाशन का ऐसा विपरीति अर्थ नहीं किन्तु देखकर चलते में भी यदि अनजान में पैर पडकर चीटी आदि कुचल जाय या किसी अपरिहार्य कारण से कोई पाप बनजाय तो उस पाप को दूर करने के लिये ही सन्ध्या में का अघमर्षण मन्त्र है ! जान बूझ कर लोगों की गर्दन मरोड़ने के लिये नहीं। तीसरा गुण अस्तेय है, दूसरे वस्तु न चुराने का नाम अस्तेय है इस गुण का पालन भी ध्यान देकर करना चाहिये नहीं तो चाहे जिसकी वस्तु चाहे जो कोई लेने लगैगा तो जगत् म व्यवस्था न रहेगी मनुष्यों के व्यापार सर्वथा बन्द होजायँगे और ऐसी हीन दशा से भी अधिक दुर्दशा भोगनी पडेगी इस कारण दूसरे की वस्तु लेने की

इच्छा को सर्वथा ही त्यागना चाहिए, ब्रह्मविद्या के साधकों के तो स्वप्न में भी यह बात न आनी चाहिए। एक स्त्री अपने पति के साथ मार्गमें चली जारही थी पति ने देखा कि एक मोहर पडी है उसने यह विचार कर कि कदाचित् मेरी स्त्री के मन में इसको लेने की पाप वासना न उत्पन्न हो इस कारण आगे बढकर उस मोहर पर एक मुट्ठी धूल डाल दी जब स्त्री बढ कर आई तो उसने कहा कि तुम झपट कर आगे क्यों चले आये ? पतिने उत्तर दिया कि हे प्रिये! वहां एक मोहर पडी थी तुझे उसको लेने की इच्छा न हो इस कारण मैंने आगे बढ कर उस पर धूल डाली थी। उस पतिव्रता ने उत्तर दिया कि हे प्राणनाथ! आपकी दृष्टि में अब भी सुवर्ण की चमक है नहीं तो आप उसपर धूल न डालते, तब उस पुरुष ने कहा कि हे प्रिये तू धन्य है तुझ में अस्तेय धर्म मुझ से भी अधिक है सार यह है कि मन वश में बिना हुए ब्रह्मविद्या प्राप्त नहीं हो सकती॥

इसी प्रकार धृति भी परम आवश्यक गुण है पुराणों में महात्मा वसिष्ठजी का धैर्य प्रसिद्ध ही है। विश्वामित्रजी ने उनके सौ पुत्रोंको मारडाला तथापि उन ब्रह्मर्षि का धैर्य नहीं डिगा, ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने में अनेकों प्रकार के व्यावहारिक और दैवी विघ्न होते परन्तु उनसे किञ्चिन्मात्र भी डिगना न चाहिए; चाहे कुछ होजाय धैर्य को नहीं छोड़ूंगा, ऐसी दृढता रखनी चाहिए, इस सद्गुण के विषय पर महाभारत में एक अति रस भरी कथा है यदि आप लोग उस पर ध्यान दोगे तो इस सद्गुण की महिमा सहज में ही ध्यान में आजायगी। जिस समय महाराज धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा था तब वह जाते जाते ताम्रध्वज राजाके नगर के समीप आया, उसको ताम्रध्वज के पुत्र मयूरध्वज ने पकड लिया। पीछे से अर्जुन और श्रीकृष्ण उस घोडे की रक्षा करने को सेना सहित आरहे थे उनको समाचार मिला कि ताम्रध्वज के राज्य में हमारा घोड़ा पकडा गया उसको छुड़ा देने के लिए अर्जुन ने लिखकर भेजा परन्तु राजा ने यह बात न मानकर अपने पुत्र

मयूरध्वज को क्षात्रेय धर्मानुसार अर्जुन के साथ युद्ध करने को भेजा। अतिघोर युद्ध होते होते अर्जुन ने मयूरध्वजका रथ सौ हाथ पीछे को हटा दिया तब तो मयूरध्वज ने भी अर्जुन का रथ दो हाथ पीछे को हटाया जब मयूरध्वज अर्जुन का रथ पीछे को हटारहा था उस समय श्रीकृष्णजी ने उसको धन्यवाद दिया, यह देख अर्जुन न सहसका और क्रोध में भर-कर भगवान् से कहने लगा कि मैंने मयूरध्वज के रथ को सौ हाथ पीछे हटादिया तब तो आप मौन रहे और इसने मेरा रथ दोही हाथ पीछे हटाया उसका आप धन्यवाददेते हैं। भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन इसका रथ साधारण लकडीका बना हुआ और साधारण घोडों से जुता है परन्तु तेरा रथ दैवी है तिसपर भी सब ब्रह्माण्डका भार लिए मैं उसके ऊपर बैठा हूँ, तथापि यह इतने भार को पीछे को हटाता है, क्या यह बडाभारी आश्चर्य और धन्यवाद देने की बात नहीं है? तब अर्जुन निरुत्तर होकर बूझने लगा कि इसमें यह पराक्रम कहां से आया। इसपर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि—भाई! इसके पिता में सर्वोत्तम धृति (धैर्य) गुण है उसीका यह फल है। तब अर्जुन ने कहा कि—किसी प्रकार मुझे इस की परीक्षा करके दिखाओ। तब तो अर्जुन को निश्चय कराने के लिए श्रीकृष्णजी ने उसी समय साधु का रूप रक्खा और अर्जुन को चेला बना कर साथ में एक माया का बनाया हुआ सिंह लेलिया तथा ताम्रध्वज राजा के द्वारपर जा पहुँचे, द्वारपाल ने राजा से निवेदन किया कि-महाराज द्वारपर अतिथि आये हैं तब राजा परम प्रसन्न हुआ और साधुओं को महल में बुला सत्कार के साथ आसन देकर विनय के साथ प्रार्थना करी कि—साधु जी! आपकी क्या इच्छा है? तब साधुजी ने कहा कि—मेरे इस सिंह को मनुष्य का मांस भक्षण करने की इच्छा है, राजा अतिथि सत्कार करने में चतुर था, अतः उसने कहा कि—बहुत अच्छा, खून के अपराध करने के कारण फांसी पानेवाले कैदी हैं, उनमें से एक सिंह के लिए बुलवाए देता हूँ। तब साधुओं ने कहा कि हमको ऐसा अमंगल मांस नहीं चाहिए, हमको तो तेरे पुत्र मयूरध्वज के दाहिने अंग का मांस चाहिए, तुझ से

होसके तो दे ? राजा ने स्वीकार कर लिया और रणवास में जा रानी की भी सम्मति ली तो वह भी कहने लगी कि महाराज ! यदि साधुओं की इच्छा इस ही प्रकार पूरी हो तो कुछ चिन्ता नहीं है, फिर पुत्रको बुलाकर बूझा तो उसने कहा कि-तात ! यह शरीर किसी न किसी दिन तो नष्ट होयगा ही, फिर दुःख में लिप्त होकर मरने की अपेक्षा तो साधुसन्तों के कार्य में आजाय तो सार्थक होजायगा, अतः मुझ भी यह वात स्वीकार है और तैयार हूं, तब राजाने आकर अतिथियों से कहा कि आप उठिये और स्नान आदि से निवटकर मनुष्यका मांस लीजिये, तब, राजसभा इकट्ठी होजानेपर वध करने के लिए पुत्रको हमारे सन्मुख लेकर आओ साधुओं ने ऐसी आज्ञाकरी, सो मंत्री और दरवारियों से सब राजसभा भरजाने पर, साधु राजा, रानी और वह पुत्र आये, तब राजा और रानी से साधुओं ने कहा कि-तुम इसके शिरपर आरा रखकर काटो और तुम तीनों में से किसी के भी नेत्रों में यदि आंसू आगये तो मैं उस अपवित्र मांस को न लेकर ऐसे ही लौट जाऊंगा। तीनों ने यह नियम स्वीकार कर लिया परन्तु दरवारियों को इससे वडाभारी दुःख हुआ और रो २ कर कहने लगे कि-आज हमारे राजवंश का नाश होता है तथा एक साथ सबके मुख से रामनाम की ध्वनि निकलने लगी। इधर राजा और रानी ने पुत्र के मस्तकपर आरा रखकर चीरना प्रारम्भ कर दिया, चीरते२ नाक पर्यन्त आरा आनेपर बाएं नेत्रमें से कुछ आंसू निकलने लगा तब साधुने कहा हाथ रोको २ यह पुत्र रोता है, अब मैं इस मांस को न लूंगा, तब वह पुत्र ईश्वर का ध्यान धर करुणास्वर से कहने लगा कि-हे दयासिन्धो ! हे दीनवत्सल ! हे भगवन् ! अब कहां तक अन्त टटोलोगे ! देखो मैं साधुओं के सत्कार के लिए अपना शरीर देता हूं परन्तु यह केवल दहना अंग ही लेते हैं, सो वाम अंग वृथा जायगा अतः वामनेत्र में आंसू आया है, यह सुन साधु जी ने कहा अच्छा हम दोनोंही अंग लेंगे, फिर सब शरीर को चीरकर टुकड़े२ करके सिंहके आगे डाल दिया। इधर रसोई तैयार होनेपर ताम्रध्वजने पात्र परोसे तब साधुजी ने कहा-

तुम, रानी और पुत्र तीनों भी मेरे सन्मुख आकर भोजन करो, तब तो राजा विह्वल होकर कहनेलगा कि, महाराज! मैं पुत्रको कहां से लाऊं! साधुओं ने कहा घवड़ाओ मत घर में जाकर बुला लाओ। साधुओं के वचनपर पूर्ण श्रद्धा होने के कारण राजा ने महल में भीतर जाकर पुत्रको पलङ्ग पर लेटा हुआ देखा और उठाकर लिवालाया, उसके आते ही आकाश में से पुष्पों की वर्षा हुई और श्रीकृष्णजी ने साक्षात् दर्शन देकर स्त्री पुत्र सहित राजा को कृतार्थ करा, अर्जुन विचारा मौन बैठा रहा, उसने मुख से एक अक्षर भी नहीं निकाला, अन्त में श्रीकृष्णजी ने वर मांगने को कहा तब राजा ने कहा कि—मैं यह वर मांगता हूँ कि कलियुग में धर्म की ऐसी प्रचण्ड परीक्षा किसी की न कीजाय। धैर्य की ऐसी महिमा है। अगले व्याख्यान में अहिंसा के विषय में अनेकों शास्त्र और मतों के विचार दिखाकर विशेष विचार किया जायगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी हंसस्वरूप।

॥ रामनाम की महिमा और अवतार ॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ॥
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

सनातन धर्म रूपी रंग खेलने के लिये सभासद् रूपी खिलाडी तैयार हो रहे हैं। यह कर्मकाण्ड रूपी कुंकुमोंमें ज्ञानरूपी गुलाल भरकर एक दूसरे के ऊपर फेंकरहें हैं, प्रेमरूपी पिचकारी से उनका हृदय रूपी वस्त्र रँगगया है और उपासना रूपी लेपन की सुगन्ध से उन का मस्तक भररहा है, ऐसे इस रङ्ग में दङ्ग होकर सकल सभासदों से आशा है कि—

हरे रामहरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। इस प्रकार हरि नाम का स्मरण, करते रहेंगे। कल तक जो व्याख्यान हुए, इसके अनुसार वर्त्ताव करने से निःसन्देह इस लोक और परलोक में कल्याण होगा। मैंने भक्तिमार्ग के व्याख्यान में पुनर्जन्म का थोड़ा सा वर्णन करके दृष्टान्त रूप से मीरावाई की कथा भी कही थी। वह भक्ति-'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। अर्थात् विष्णु भगवान् का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवन, पूजन वन्दन और दासभाव, ऐसे नौ प्रकार की है, तिस में से आज स्मरण भक्ति के विषय में कुछ विचार करने की इच्छा है, क्योंकि-यह सब को सब जगह तथा सब काल में सुलभ है और परमेश्वर की प्राप्ति का सहल तथा उत्तम उपाय है। भगवान का कोई नाम भक्ति के साथ मुख से उच्चारण करने पर उससे पुण्य प्राप्त होकर अन्त में ईश्वर की प्राप्ति होती है, तथापि उसमें भी राम नाम की महिमा विशेष है इसका कारण आगे चलकर इसी व्याख्यान में आप के बुद्धिस्थ होजायगा। किसी भी मनुष्य को उसके नाम से पुकारने पर वह तत्काल अपने पास आकर उपस्थित होजाता है तैसेही परमेश्वर को चाहे जिस नाम से पुकारो वह आपके समीप आवेंगे क्योंकि उन के नाम अनन्त हैं, इस पर भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि-'तस्य वाचकः प्रणवः'। (समाधिपाद)। अर्थात् उस परमेश्वर का वाचक प्रणव [ॐकार] है, यही भगवान् का मुख्य नाम है, क्योंकि-इस नाम में भगवान् के सकल ऐश्वर्य का वोध होता है। माण्डूक्योपनिषद् के प्रारम्भ में ही कहा है कि-'ॐमित्येतदक्षरमिद ँसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव'। अर्थात् ॐ कार यह अक्षर सर्व मय है, उसका हम उप व्याख्यान करते हैं, भूत भविष्य और वर्त्तमान जो कुछ हैं अर्थात् इन तीन कालों से जो परिच्छेद्य है वह सब ॐकार रूप ही है। और जो त्रिकालातीत है, तीनों कालों से जिसका परिच्छेद नहीं

हो सकता वह भी सब ॐकार रूपही है। अकार, उकार, और मकार यह जो प्रणव की तीन मात्रा हैं, उनसे ही तीन वेद, तीन देवता, तीन गुण, तीन लोक, तीन तेज आदि उत्पन्न हुए हैं और इन तीन मात्राओं के आश्रय से ही वह रहते हैं। आप यदि कानों में अंगुली देलें तब जैसा अखण्ड नाद सुनने में आता है या हरद्वार में जैसा गङ्गा प्रवाह की ध्वनि एक समान चलरही है, तैसेही प्रणव का अप्रतिहत नाद चारों ओर भरा हुआ है तथा सकल वर्ण माला और शब्द उसी से उत्पन्न हुए हैं, उसका अवलम्बन किए विना वाणी से कुछ उच्चारण ही नहीं होसकता। मृदङ्ग तवला आदि बाजों पर थाप देकर भिन्न २ प्रकार की गतें छेड़ने पर जैसे उन थापों की रचना भिन्न २ प्रकार की होती हैं तिसी प्रकार प्रकृति के अनन्त व्यापारों के द्वारा इस ओंकार से ब्रह्माण्ड में भिन्न २ प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, प्रणव में की मात्राही आत्मा के पाद हैं, प्रणव में की अकारादि मात्राओं की आत्मा के भिन्न पादों से एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है उसको भिन्न २ प्रकार के फल प्राप्त होते हैं–'अकारो नीयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्। मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः॥ (माण्डूक्योपनिषत्) अर्थात् प्रणव अकार की प्रधानता है, ऐसा समझ कर और आत्मा के प्रथम पाद से उसकी एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है वह वैश्वानर होता है, उकार की दूसरे पाद से एकता करके जो उपासना करता है वह तैजस होता है और मकार की तीसरे पादसे एकता करके जो उपासना करता है वह प्राज्ञ होता है, तथा मात्रा रहित जो प्रणव वही केवल आत्मा है ऐसा जानकर जो उसकी उपासना करता है वह तुरीयावस्था पाता है अर्थात् शुद्ध ब्रह्मानन्द में निमग्न होता है यह अवस्था प्राप्त होने पर उपासक को और इससे उत्तम, कोई गति मिलने को शेष नहीं रहती है। सार यह है कि–स्थूल प्रपञ्च, जागरित स्थान और विश्व, यह तीन मिलकर प्रणव में का अकार भाग होता है। सूक्ष्म प्रपञ्च स्वप्न अवस्था और तैजस यह तीन मिलकर प्रणव में का

उकार भाग है तथा स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण, सुषुप्ति स्थान और प्राज्ञ यह तीन मिलकर प्रणव में की मकार मात्रा है और मात्रा रहित जो प्रणव का रूप है वही ईश्वर का मूलरूप है अर्थात् आत्मा की तुरीय अवस्था है, आत्मा के पाद और तुरीयावस्था का विस्तार के साथ वर्णन पीछे एक व्याख्यान में कियाही है, अस्तु। इस प्रकार ओं-कार के चार विभागों से ईश्वर के सब गुणोंका और ऐश्वर्य का बोध होता है इस बातको स्पष्ट करने के लिए एक व्यवहारिक दृष्टान्त कहता हूँ किसी इलाके के स्वामी का नाम लक्ष्मीधरसिंह है उसके साथ महाराज पद जोड़ा और आगे राय बहादुर पद जोड़ा तथा अन्त में के. सी. एस. आय् इत्यादि पदवी को जोड़ने पर उनका पूरा नाम महाराज लक्ष्मीधर-सिंह रायबहादुर के.सी.एस. आय् ऐसा होगया; इससे उनके ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तैसे ही ॐकार से ईश्वर के सकल ऐश्वर्य का ज्ञान होता है, अब लक्ष्मीधरसिंह के नौकर चाकर आदि मनुष्य हरएक व्यवहार में उन-के उपरोक्त लम्बे चौड़े नाम को नहीं लेते हैं किन्तु उस नाम में से सब अर्थ को थोड़े ही में दिखलाने वाले सारभूत अंश महाराज अथवा' म-हाराजा साहब' ऐसा निकाल कर, महाराज स्नान कररहे हैं, 'महाराजा साहब' कचहरी में बैठे हैं, इत्यादि रीति से व्यवहार करते हैं' तैसेही ओं-कार के द्वारा वर्णन करे हुए ईश्वर के स्वरूप का साधारण बुद्धि के मनु-ष्य की समझ में आना कठिन है ऐसा जानकर ओंकार में से सारभूत अंश निकाल कर उसकी उपासना करना शास्त्रकारों ने बतादिया है। वह सारभूत अंश 'राम नाम' है, यदि कोई कहे कि कैसे? तो इसको स्पष्ट करने के लिए थोड़ासा विचार करने की आवश्यकता है, ओंकार से हीं सब वर्णमाला की उत्पत्ति हुई है यह बात पीछे कहही चुके हैं, उस वर्ण माला में के र. म्. यह दो अक्षर बड़ी महिमा से युक्त हैं इस कारण इनको ओंकार के शिरोभागमें लिखने की रीति पड़ी है अर्थात् उसके म-स्तक पर ऐसा चिह्न लिखा जाता है, उसमें से आधे चन्द्रमा की समान भाग रेफ को दिखाता है और बिन्दु (अनुस्वार) मकार को दिखाता है। "जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्द्ध्वगमनम्" ऐसी संस्कृत की कहावत है

अर्थात् जैसे पानी के ऊपर तुम्बी तैसे ही रेफ सब वर्णों के मस्तकपर जाता है और मोऽनुस्वारः यह पाणिनीय का सूत्र है,इससे मकार का बिन्दु- (अनुस्वार) होजाता है। इस कारण ऐसे चिह्न का अर्थ 'र, म् हुआ व्यंजन वर्ण का उच्चारण स्वर की सहायता, के विना नहीं होसकता, इस कारण पाणिनीय ने 'ह य वर ट्' इत्यादि सूत्रों में ह--व्' इत्यादि हरएक व्यंजन में अकार जोड़कर संस्कृत की वर्णमाला दिखाई है। इसी प्रकार र-म् इन दोनों मेंभी आकार मिलाकर राम ऐसा सब के उच्चारण करने योग्य तारक मन्त्र निकल आता है उसमें ही ओंकार का सर्वस्व आजाने के कारण उसका जिस अक्षर के साथ योग होगा अर्थात् उनका दर्शक रेफ अनुस्वार रूप चिह्न जिस अक्षर के मस्तक पर रक्खा जायगा, उस अक्षर में अद्भुत मन्त्र शक्ति आजायगी इस विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है।

एक छत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोय।
तुलसी रघुवर नाम के, वर्ण बिराजत दोय॥

इस रीति से 'लँ' यह पृथ्वी बीज, 'रँ' अग्नि बीज, 'वँ' वरुण बीज और 'यँ, वायु बीज इत्यादि मन्त्र शास्त्र में प्रसिद्ध अनेकों मन्त्र बीजों की उत्पत्ति कही है। तिन तिन मन्त्रों का जप करने पर वह वह देवता प्रसन्न होकर हमको विशिष्ट फल प्राप्त होता है, उदाहरण के लिये देखलो- रँ, इस बीज मन्त्र का जप करने पर अग्निदेव के प्रसन्न होने से हमको तेज आदि गुण प्राप्त होते हैं हमारे शरीर को ताप होने पर वँ इस बीज मन्त्र का जप करना चाहिये तब वरुण देवता की प्रसन्नता से ताप शान्त होगा, ऐसेही अन्य बीज मन्त्रों के विषय में भी जानो। इन बीज मन्त्र

(१) बहुतों को शङ्का होगी कि--र म से राम बनाने में आ मिलाना चाहिये, यह शङ्का ठीक है परन्तु संस्कृत की वर्णमाला में 'आ' भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु 'अ' में ही इसका समावेश किया है। 'अ' के ह्रस्व दीर्घ आदि अठारह भेद हैं, उन सब का एक ह्रस्व आकार से ही ग्रहण होजाता है, यह लघुकौमुदी पढ़ने वाले भी जानते होंगे॥

में की शक्ति को आज कल के जड़ पदार्थ वादी नहीं मानते हैं, परन्तु मैं उनसे यह बात कहता हूँ, साधारण रूप से दो अक्षरों का एक साथ उच्चारण करने पर ही उन में आप को विलक्षण शक्ति दीखती है। देखो–किसी को लक्ष्य करके 'मूर्ख' इतना कहते ही तत्काल उसको क्रोध आजाता है और उसके नेत्र, लाल २ होजाते हैं, इसके विपरीत यदि उसको क्रोध आरहा हो उस समय कृपासागर, हुजूर, दयावान्, आदि शब्दों से उसकी प्रार्थना की जाय तो उसका क्रोध शान्त होजाता है। इस प्रकार साधारण अक्षरों के संयोगसे भी जब ऐसी शक्ति आपके देखने में आती है तो जिन में शास्त्र विशेष शक्ति बताता है उन बीज मन्त्रों का जप करने पर इष्ट कार्य की सिद्धि क्यों नहीं होगी? अवश्य होगी, केवल जप विधिपूर्वक होना चाहिए, योग्य ढंग करके अच्छी भूमिमें बीज बोने से जैसे अन्न की उत्पत्ति अच्छी होती है तैसेही अधिकारी की शुद्ध दशा में योग्य स्थान पर और योग्य समय मन्त्र को जप करने में उत्तम सिद्धि होती है, जप करते में मन्त्र के अर्थ का चिन्तवन करना चाहिए। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (समाधिपाद) मन्त्र का जप करना होय तो उस के अर्थ का चिन्तवन करता हुआ एकाग्र चित्त से करै, नहीं तो इधर मन्त्रका उच्चारण होरहा है और मनसे, किसी बड़े भारी शहर में जाकर स्वामी को प्रसन्न करने के लिए बढिया घोड़ा खरीदने की युक्ति चल रही है, इधर माला के कितने दाने फिर गये इसकी कुछ सुध नहीं है, परन्तु उधर घोड़े की कीमत के रुपये ठीक २ गिनकर दिए जारहे हैं, ऐसा करने पर मन्त्र की सिद्धि कैसे हो? जहां सहस्र जप करना चाहिए तहां यदि सौही किया अथवा मन्त्र की सांगताके लिए जहां सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तहां यदि पांचही को भोजन कराया तो फल भी उतनाही कम मिलेगा और कहीं तो कुछ मिलेहीगा नहीं, यदि किसी को भात पकाना हो तो अग्नि, जल, चावल आदि सामग्री का प्रबन्ध उसको अवश्य ही करना चाहिए। इनमें से एक भी साधन नहीं होगा या एक भी साधनमें कमी होगी तो काम सिद्ध नहीं होसकेगा, अग्नि का अभाव होगा अथवा भात

के नीचे एक चिनगारी ही होगी तो भात नहीं पकेगा, तैसेही पानी बिलकुल नहीं होगा अथवा दशसेर चावलों में पावभर ही पानी पड़ेगा तो भात नहीं पकेगा, तिसीप्रकार यथोचित समय न लगाया जायगा या कर्त्ता अनाडी होगा तो भात नहीं पकेगा। सार यह है कि–छोटे बडें सबही कामों के साधन में कुछभी खराबी होने से कार्य सिद्ध नहीं होगा। फिर मन्त्र शास्त्र के प्रयोगमें दोष होनेसे कार्य सिद्ध कैसे होसकता है अर्थात् इष्ट कार्य की सिद्धि होने के लिए मन्त्रका अनुष्ठान विधिपूर्वक होना चाहिए। ओंकार का सारभूत अंश होन के कारण, राम नाम में ओंकार का सब प्रभाव आगया है और साधुसन्तों ने इसकी बहुत कुछ महिमा गाई है। सूर्य आदि सब तेज ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं. और वह सब उस के ही आश्रय से रहते हैं, यह बात पीछे कहही चुके हैं, इसी प्रकार रामनाम के विषय में तुलसीदास महाराज भी कहते हैं कि–'बन्दौं रामनाम रघुवर के। हेतु कृशानु–भानु–हिमकरके॥' अर्थात् कृशानु–अग्नि, भानु, सूर्य, हिमकर, चन्द्रमा, कृशानु भानु और हिमकर का कारण जो रामनाम तिस को वन्दना करता हूं। रामनाम कृशानु–भानु और हिमकर कई प्रकार से हेतु है इस कारण इस चौपाई के कई अर्थ होसकते हैं। (१) पहिला अर्थ तो यह है कि राम इस पद में र,–अ,–म, यह तीन अक्षर हैं और तीनों क्रम से कृशानु, भानु और हिमकर इन तीनों देवताओं के वीज हैं, इस कारण राम यह पद उनका हेतु है, अधिक तो क्या यदि उन तीनों शब्दों का अर्थ न लेकर केवल शब्द को ही लिया जाय तब भी उन शब्दों में ऊपर के तीनों वर्ण क्रम से विद्यमान हैं और उन वर्णों के द्वारा ही उनको उन शब्दों की शक्ति

(१) कृशानु, इस शब्द में र, भानु, शब्द में अ, और हिमकर शब्द में म, यह अक्षर हैं बोलचाल में इन शब्दों के उच्चारण को लेकर यह बात है। वास्तव में देखाजाय तो कृशानु शब्द में र, स्पष्ट नहीं है किन्तु ऋ है, परन्तु कृशानु शब्द का अपभ्रंश क्रशानु लियाजाय तो र स्पष्ट दीखेगा अथवा कृशानु ऐसा शुद्धही रूप लियाजाय तो इसमें के भी ऋकार में संस्कृत व्याकरण के अनुसार रेफका अंश है ऐसा मानलेने में भी अर्थ की सङ्गति बैठ जायगी।

मिली हुई है, उन शब्दों में से तिन वर्णों को निकाल लियाजाय तो वह शब्दही निरर्थक होजांयगे। इस कारण राम यह पद कृशानु आदि शब्दों की उत्पत्ति का कारण है। यदि कोई कहे कि–यह शब्दपाण्डित्य है, इस में अर्थ कुछ नहीं है, तो उन लोगों के समाधान के लिए दूसरा अर्थ दिखाते हैं। (२) दूसरा अर्थ यह है कि–अग्नि पाचक रूप से चार प्रकार के भोजन को पकाकर प्राणियों के शरीरका पोषण करता है सूर्य से प्रकाश मिलकर और आरोग्य की रक्षा होकर सबके व्यवहार सुन्दरता के साथ चलते हैं और चन्द्रमा से वनस्पतियों का पोषण होकर उनसे सब प्राणियों को सहायता मिलती है, इस प्रकार प्राणी मात्र की जीवन यात्रा के कारण जो कृशानु आदि तीन देवता, उनके विषे वह शक्ति रामरूप तेज से ही प्राप्त हुई है। (३) तीसरा अर्थ यह है कि–कृशानुभानु और हिमकर इन तीनों का अर्थात् तीनों कुलों को उत्कर्ष का हेतु रामनाम ही है, अग्निवंश में परशुराम उत्पन्न हुए, सूर्यवंश में दशरथ कुमार रामचन्द्र हुए, और चन्द्रवंश में बलराम हुए, इन तीनोंही का राम नाम प्रसिद्ध है। इस प्रकार रामनाम उपरोक्त तीनों कुलों के उत्कर्ष का हेतु है। (४) चौथा अर्थ यह है कि–शरीर में मुख्यरूप से इडा, पिंगला और सुषुम्ना यह तीन नाडियें हैं। नासिका के बाम ओर के छिद्र में को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसका इडा वा चन्द्रनाडी कहते हैं। नासिका के दाहिने छिद्र में को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसको पिंगला वा सूर्यस्वर कहते हैं जब नासिका के दोनों छिद्रों में से एकसाथ वेग से श्वास चलता है तो उसको सुषुम्ना वा अग्निनाडी कहते हैं। यह नाडियें किन नियमों से चलती हैं इसका वर्णन स्वरोदयशास्त्र में

(१) यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥ अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः॥ प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ (भगवद्गीता १५ अध्याय)

२ इसी कारण ज्योतिषमें राम शब्दको तीन संख्याका वाचक माना है।

विस्तार के साथ किया है, इस समय उसके वर्णन का अवसर नहीं है। हिमकर, भानु और कृशानु इन शब्दों के द्वारा क्रम से उन तीनों नाडियोंका बोध होता है और उनका सब आधार रामरूप चैतन्य के ऊपरही है। इस प्रकार रामरूपतेज प्राणीमात्र के जीवन का कारण है और वह सर्वत्र व्यापरहा है। यदि देखाजाय तो सर्वत्र मनुष्यमात्र के नाम में "राम" यह दो अक्षर पुरे हुए हैं अर्थात् चाहे जिस पुरुष का चाहे जितने अक्षरों का नाम हो तथापि अन्त में उसकी तान इन दो अक्षरोंमें ही टूटती है इस विषय में गणित की सहायता से होनेवाला एक चमत्कार दिखाता हूं-हरएक मनुष्य को चार प्रकार के पुरुषार्थ साधने होते हैं, इस कारण उसको अपना नाम [अपने नाम के अक्षरों की संख्या] चार से गुणा करना चाहिए और वह पुरुषार्थ पंचभूतों के आश्रय से सिद्ध होते हैं, इस कारण उसमें पांच संयुक्त करदेय, पुरुषार्थों के साधनका प्रयत्न करनेमें मनुष्य को सुख दुःख, मान अपमान आदि अनेकों द्वन्द्वों से झगडना पडता है इस कारण उपरोक्त संख्याओं को द्विगुण करै। अन्त में इन सब आठ प्रकार की प्रकृति के पसारे के विवेक के द्वारा दूर करके सत्यस्वरूप में रमण करना होता है, इस कारण उपरोक्त गुणनफल में आठ का भाग देकर बाकी निकाली जायगी तो दोही शेष रहेंगे, वहीं "राम" यह दो अक्षर सत्य हैं। उदाहरण के लिए देखो—देवदत्त इस नामको लेलो, इसमें के अक्षरों की संख्या को चारसे गुणा करके पांच मिलानेपर इक्कीस होते हैं और इसको द्विगुण करके आठ का भाग देनेपर दोही शेष रहते हैं वही "राम" इन दो अक्षरों के दर्शक हैं। इसी प्रकार चाहे जिस नाम के विषय में देख लो यह केवल गणित का मनोरञ्जक चुटकुला कहा है, परन्तु व्यवहार में भी रामशब्द में विशेष तेज सूचित होता है। किसी मनुष्य में तेज का अभाव दिखाना होता है तो उसमें कुछ आराम नहीं है ऐसा आप कहते हैं। रामरूप शक्ति का एक प्रकार आश्रय छूटा कि—ऊपर कही हुई तीन नाडियें बन्द होजाती हैं और मरण होजाता है उस समय राम का नाम सत्य है सब मिथ्या है ऐसा

निश्चय करके सबलोग शव के पीछे २ राम नाम सत्य है ऐसा कहते हुए जाते हैं। इस रामनाम बलसे ही समुद्रमन्थन के समय उत्पन्न हुआ दुर्धर कालकूट विष शंकर ने पीलिया था। रामनाम के माहात्म्य को श्रीशंकर पूर्णरीति से जानते हैं। एक समय भोजन की तैयारी होनेपर शिवजी ने पार्वतीको भोजन के लिए बुलाया तब पार्वतीजी कहनेलगीं कि मुझे तो अभी विष्णु भगवान् के सहस्र नामों का पाठ करना है, निवट कर भोजन करूंगी, शिवजी ने इसका उत्तर दिया कि--

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तातुल्यं श्रीरामनाम वरानने॥

अर्थ--सहस्र नामों का सब सार एक रामनाम में ही भरा हुआ है, मैं अखण्ड रामनाम में ही मग्न रहता हूँ। इस प्रकार पार्वती ने शिवजी से राम नाम की महिमा सुनी, पार्वतीजी से गणेश जी ने सुनी, उस राम नाम के अवलम्बन से गणेशजी को सबसे आगे पूजन मिलता है। एक समय इन्द्रादि देवताओं में श्रेष्ठ कौन है ? इस बात पर विवाद हुआ और सब अपनी ही पूजा सकल कार्यों में पहिले हो, ऐसा चाहने लगे तथा सब मिलकर निर्णय कराने के लिये ब्रह्मा जी के पास गये, उन्होंने कहा--जो ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करके सब से आगे आजायगा वही श्रेष्ठ है, उसकी ही सब से प्रथम पूजा होगी। तब तो सब ने अपने अपने वाहनों को तैयार करके ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करने का उद्योग किया, यह बात सुनतेही गणेश जी को डाह हुआ परन्तु उनकी सवारी में तो चूहे मामा ही थे, इस कारण इस विषय में जय मिलने की उनको कुछ आशा नहीं रही अतः मलिन मुख होकर एकान्त में बैठ विचार करने लगे, यह दशा देख पार्वती जी ने बूझा कि--तू खिन्नमुख क्यों होरहा है ! कारण बताते ही पार्वती जी ने उत्तर दिया कि--भय न कर मैं तुझको युक्ति बताती हूँ कि--रामनाम यह ॐकार का मथा हुआ अर्थ है और ओंकार से सब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, इस कारण मुख से रामनाम का उच्चारण करके और मन से

उसके अर्थ की ओंकार से एकता करके उस के चारों ओर तू प्रदक्षिणा कर तो एक क्षण म ही तू अनन्त ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करलेगा, यह सुनकर और इसी प्रकार करके गणेशजी उसी समय ब्रह्मा जी के पास गये और कहने लगे कि-मैंने सकल ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करली, ब्रह्मा जी आश्चर्य में होकर मन में विचारने लगे कि-यह तोंदीली मूर्ति चूहे की सवारी, सकल ब्रह्माण्ड की परिक्रमा इतनी शीघ्र कैसे होगई ? परन्तु अन्तर्दृष्टि से देखा मालूम हुआ कि-बात ठीक है और गणेश जी का वाहन चूहा ही अनन्त ब्रह्माण्ड के चारों ओर वेग के साथ फिरता रहा है। फिर बूझा कि-गणेश जी यह गुर तुमको किसने बताया ? तब गणेश जीने उत्तर दिया कि-सब योगियों में मुकुटमणि और परम रामोपासक शिवजी मेरे पिता हैं और मन्त्रशास्त्र में परम प्रवीण आदि शक्ति पार्वती जी मेरी माता हैं, इस कारण यह सब मेरे घर की ही विद्या है, हमको सीखने के लिये दूसरे के पास जाने की आवश्यकता ही क्या है ? अस्तु ! उस दिन से उनकी अग्रपूजा और भी अधिक दृढ होगई तथा आजकलभी कार्यकी निर्विघ्न सिद्धि के लिए हरएक कार्य में पहिले गणेशजी का पूजन होता है यह बात सबको विदित ही है कितनेही नए शिक्षित और अर्द्धशिक्षित कहते हैं कि-रामचन्द्र एक राजा थे और वह हमारी समानही मनुष्य थे, परन्तु यह उनका कहना भूलसे भराहै। रामचन्द्रजी यदि केवल मनुष्यही होते तो समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बांधना आदि अलौकिक कार्य उनके हाथ से कैसे होते ? उनके पास बड़ी २ तनख्वाह के इंजीनियर नहीं थे. उन्होंने नलनील आदि वानरों को समुद्र के ऊपर पुल बांधने की आज्ञादी उस समय उन वानरों के लाये हुए पत्थर पहिले तो समुद्रमें डूबने लगे तब परम रामभक्त और रामनाम के माहात्म्य को जाननेवाले हनुमान जी ने तहां आकर न जानें क्या जादू सा कर दिया ? कि—उससे सब पत्थर तैरनेलगे, यदि कहो कि-वह जादू कौनसा था ? तो किन्हीं पत्थरों पर अलग २ "राम" यह अक्षर लिखकर किन्हीं पर दो २ मिलाकर वह अक्षर लि-

रखकर अर्थात् एक पत्थर पर "रा" और दूसरे पर 'म' लिखकर उन पत्थरों को परस्पर मिला दिया तब तो वह सब पत्थर जल में छोडते ही तैरने लगे। आप जरा अपने हाथ से कटोरा भर जल में थोडीसी रेणुका डालिए, तो क्या वह तैर सकेगी परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में मन्त्र-शास्त्र आदि का प्रचार बहुत हुआ है, अतः यन्त्र विद्या में प्रवीण आजकल का कोई बडाभारी विद्वान्,हनुमानजीके मन्त्रशास्त्र के किनारेसे भी समता रखनेवाला कोई यन्त्र बनासकता है क्या? अथवा आजकल के चक्रवर्ती राजाओं में भी कहीं ऐसी सामर्थ्य देखने में आती है क्या? जब वह शक्ति कहीं दीखतीही नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी को लोकोत्तर अथवा दिव्य मनुष्य [ईश्वर] थे ऐसा कौन कहेगा? अर्थात् वह यद्यपि मनुष्य की समान देखते थे तथा वह साक्षात् परमात्माही अवतरे थे, इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। "अवतार" शब्द का अर्थ है नीचे उतरना। वेदादिकों को भी अगम्य और अनिर्वचनीय अपने परमोन्नत रूपसे परमेश्वर ने भक्तजनों के कल्याण के लिए एक साधारण मनुष्य का सा रूप धारण किया, इसको परमेश्वर का अवतार कहते हैं। जो कोई उनके नाम का स्मरण करके एकाग्र चित्त से उनका ध्यान करता है उसके ऊपर वह प्रसन्न होकर भक्तकी इच्छा के अनुसार दर्शन देते हैं। जैसे वायु के स्पन्द और निःस्पद दो रूप हैं अथवा अग्नि के व्यक्त और अव्यक्त दो रूप हैं-(चौपाई) एक दारुगत देखिए एकू। पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥ अर्थात् काष्ठ आदि में अग्निका अव्यक्त रूप है और व्यवहार आदि में स्पष्ट देखने में आनेवाला जो अग्नि है वह अग्नि का व्यक्तरूप है। इसीप्रकार ईश्वर भी साकार और निराकार अथवा सगुण और निर्गुण यह दो रूप हैं। कोई परमेश्वर क सगुणरूप की भक्ति करते हैं। और कोई निर्गुणरूप में मग्न रहते हैं। गुरु रामानन्दजी श्रीरामचन्द्रजी के साकाररूप के उपासक थे और कबीर निराकाररूप के उपासक थे सार यह है कि चतुर दुभाषी जैसे अपना अभिप्राय न्यायाधीश को अङ्गरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि उसकी इच्छित भाषा में समझा देता है तैसेही परमेश्वर अपने भक्त को

उसकी इच्छानुसार रूप में दर्शन देकर उसके मनोरथ को पूरा करते हैं पहिले स्वायम्भुव मनु और उनकी स्त्री शतरूपा ने परमात्मा का दर्शन पाने के लिए सहस्रों वर्ष तक वन में रहकर तीव्र तपस्या करी तव भगवान् ने उनको चतुर्भुजी पीताम्बरधारी रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर मांगने के लिए कहा—तव उन दोनों ने कहा कि—हमको और कुछ नहीं चाहिए आप इसी रूप में हमारे गर्भ से प्रकट होकर हमारे सकल मनोरथों को पूरा करिए, भगवान् ने भक्तवत्सल होने के कारण, उनके मांगे हुए वरको देकर, "तुम्हारे ऐसाही पुत्र होगा" ऐसा कहते हुए उनको विश्वास दिलाया। फिर त्रेतायुग में वह दोनों दशरथ और कौसल्या हुए और उनके उदर में भगवान् श्रीरामचन्द्ररूप से अवतरे, यह प्रसिद्ध ही है जव कौसल्या के उदर में प्रविष्ट हुए थे उस समय कौसल्या के गर्भ के सब चिह्न यद्यपि अन्य साधारण स्त्रियों की समानही प्रतीत होते थे परन्तु वास्तव में परमात्माका अन्य लोकों की समान गर्भवास से सम्बन्ध नहीं था भगवान् के सब अवतार अयोनि संभवही थे, उनके साथ गर्भवास का अथवा रजोवीर्य का किसी प्रकार का संबन्ध नहीं था, केवल उस समय कौसल्या के शरीर में परमात्मा का तेज फैलरहा था और उसके भीतर बाहर सर्वत्र रामरूप दीखता था, लौकिक रीति के अनुसार नौ महीने पूरे होतेही पहिले करेहुए संकेत के अनुसार भगवान् श्यामसुन्दर पांच वर्ष के बालक की मूर्त्ति वनकर कौसल्या के सामने आकर खडे होगए, उस मूर्त्ति को देखकर कौशल्या न प्रार्थना करी कि—इतने बड़े रूप से लोग आपको मेरा पुत्र नहीं कहेंगे और उलटी हंसी उडावेंगे, इस कारण लोक व्यवहार के अनुसार बालक का रूप धारण करिए। तब भगवान् ने भक्त का मनोरथ पूरा करने के लिए तत्काल बालक का रूप धारण किया और मनुष्य की समान सव लीलायें करके दिखाईं। कोई २ कहते हैं कि यह सब पुराणों की गप्पे हैं और पुराण थोड़े ही दिनों के बनेहुए हैं और कहीं तो उन में वृथा अतिशयोक्ति ही लिखी हैं। परन्तु यह उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि अथर्ववेद प्रपाठक ७ में 'ऋचः

सामानि छन्दांसि जज्ञिरे पुराणं यजुषा सह।' इसप्रकार ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के समानही पुराणों की उत्पत्ति कही है। इसके सिवाय वेदों में परमात्मा के अवतारों का भी उल्लेख किया है, उसमें से कुछ प्रमाण दिखाकर आज के व्याख्यान को समाप्त करता हूँ। ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त ४६ मन्त्र १८ में परमेश्वर के अवतार के विषय में साधारणरूप से कहा है 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।' अर्थात् इन्द्र कहिए षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् वत्सलता को प्रकट करने के लिए अपनी मायारूप शक्ति के द्वारा अनंतों रूप धारण करते हैं, जैसी २ भक्त की भावना होती है और जिस समय जैसी आवश्यकता पड़ती है, तैसे २ ही भगवान् के अवतार होते हैं। पीछे एक व्याख्यान में द्रौपदी की लज्जा रखने के लिए भगवान् ने वस्त्र रूप धारण किया, यह बात कहही चुके हैं। नृसिंहावतार के विषय में यह प्रमाण है—"प्रतद्विष्णः स्तवतेवीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः॥" (ऋ० मं० १ अध्याय २१) वामनावतार के विषयमें प्रमाण है कि—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' (ऋग्वेद) इसी प्रकार रामावतार के विषय में—'भद्रो भद्रया०' इत्यादि सामवेद के उत्तर आर्चिक अध्याय १५ में लिखा है और ऋग्वेद मण्डल ४ में कृष्णावतार के विषय का उल्लेख है। शेष अवतारों के विषयमें भी प्रमाण दिखाये जाते, परन्तु अवसर नहीं है और वेदों में अवतारों का उल्लेख होने के विषय में विश्वास होने के लिए यह दिखाए हुए प्रमाण ही पर्याप्त हैं। आजके व्याख्यान से अवतारोंका क्या प्रयोजन है? रामनाम की कैसी महिमा है? उसमें कैसी अद्भुत शक्ति है और वह कितना सहल तारकमन्त्र है? यह सब बातें आपके ध्यान में आहीगई होंगी, अतः परम पवित्र वस्तुओं में पवित्र, मङ्गलों में मंगल रामनाम का एकबार सब लोग मिलकर उच्चस्वर से कीर्त्तन करो और उसको अखण्ड हृदय में धारण करो।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

प्रिय मित्रो! आज दश दिन तक सन्ध्या. प्राणायाम, पुनजर्न्म और श्राद्ध आदि भिन्न २ विषयोंके सम्बन्ध में, अनेकों बातें मैंने आप लोगों को अर्पण करीं, मुझे आशा है कि आप उनमें के दोषों को त्यागकर नीर क्षीर न्याय से हंस की समान गुणों को स्वीकार करेंगे। आप सब महाशयों ने दशदिन तक घरके आवश्यक कार्यों को त्यागकर यहां आनेका कष्ट उठाया और सावधान चित्त से व्याख्यान सुनने की कृपा की, इसके लिए मैं आप सब महाशयों को धन्यवाद देकर अब विदा होता हूँ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी हंसस्वरूप।

❋ भक्ति ❋

जीवात्मा की सारी यात्रा में—समय के आदि से लेकर इस समय तक जब कि जीवात्मा को "एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म" का साक्षात् अनुभव न होजावे—किंचित् घटनायें ही ऐसी आवश्यक और स्मरणीय होती हैं जैसी कि ईश्वर की ओर सच्ची भक्ति का प्रादुर्भाव होना। यह भक्ति सारे मनुष्य स्वभाव को बदल देती है, जब, मनुष्य इसको प्राप्त करलेता है सच मुच उसका "पुनर्जन्म" होता है यह जन्म माता के गर्भ पाप से, और शोक के असत्य जीवन में नहीं होता, वरञ्च उस बृहद् और सत्य जीवन में उसका जन्म होता है जिसमें हम सब को एक न एक दिन जाना पड़ेगा। और सब-कर्मों से बढकर ईश्वर के चरणों में सत्य प्रेम ही मनुष्य को द्विज बना देता है। जब एकवेर मनुष्य अपने कई जन्मों के पुण्य फल से इस दुर्लभ पदार्थ भक्ति को प्राप्त कर लेता है, तो उसके जीवन का अर्थ कुछ और ही होजाता है, यह संसार प्रेम के प्रभाव से "स्वर्ग" बन जाता है अब वह वैसा मनुष्य नहीं रहा जैसा वह पहले था, परम प्रेम मय का साक्षात्कार उसके स्वभाव को बदल कर

उसको नरेश्वर (Good man) बना देता है, हरएक पदार्थ जो वह देखता है और जो वह सुनता है सब उसकी दृष्टि में नवीन और सुन्दर रूप धारण करते हैं, उसके वास्ते सब सुखदायक ही हैं और वह प्रेम के पिंजुरे में झूलता रहता है, जब तक कि वह अपने आपको उस परम पुरुष में लीन करता है जिसका आनन्द और गौरव बड़ी २ उपनिषदें भी शब्दोंसे लिखनेका यत्न निष्फलही करती हैं ।

सच्चा भक्त कोई हजारों में एक होता है । हमारे भारत जैसे धार्मिक देश में भी सच्चे भक्त गिनती के ही हुए हैं, परन्तु जब हम देखते हैं कि भक्ति क्या है तब हमको प्रतीत होजाता है कि भक्त इतने थोडे क्यों हैं भक्ति वह प्रेम है जो पण्डित लोग ईश्वर के साथ रखते हैं और जो इतनाही अचल तथा दृष्ट होता है जितना वह प्रेम जो अविवेकी को इन्द्रियों के नश्वर पदार्थों से होता है महर्षि नारद कहते हैंः—

सात्वास्मिन्परमप्रेमरूपा ॥ २ ॥ अमृतरूपाच ॥ ३ ॥ यल्लब्ध्वापुमान्सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्योभवति ॥ ४॥ यत्प्राप्यनकिंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टिनोत्साही भवति ॥ ५ ॥ यज्ज्ञात्वामत्तो भवतिस्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ॥ ६ ॥ सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥ भक्ति अ० ॥ १ ॥

इसके मिलाप में ही भक्त को सुख है, उसका विस्मरण होजाने से उसको बडा दुःख होता है । एक महात्मा ने कहा है कि "जिन दिनों में ईश्वर का गुण नहीं गा सका, उन दिनों में यथार्थ में मैं जीवित न था" भक्त शिरोमणी पह्लाद कहते हैं ।

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु, रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्रयत्र । जातस्य मेभवतुकेशवतेप्रसादात्त्वय्येव भक्तिर-

चलाऽव्यभिचारिणी च । नाथयोनिसहस्रेषु येषुयेषु व्रजाम्यहम् । तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥

भक्त का जो प्रेम ईश्वर के साथ कितनाही होता है, इसका नमूना उपनिषदों में मिलता है । यम नाचिकेता को कहता है—

शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहरिण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधिकामानां त्वां कामभाजं करोमि । येये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाञ्छन्दतः प्रार्थयस्व ॥ इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व ॥ कठोपनिषद ॥

हममें से बहुतों को इससे भी न्यून पदार्थ मदमत्त करदेते, परन्तु सच्चा भक्त नचिकेता क्या उत्तर देता है, वह कहता है 'वरस्तु मे वरणीयः स एव' वही ब्रह्मज्ञान का वर दो, यह उसका उत्तर है । सच्चे भक्त का यह उदाहरण है, ऐसे नर शार्दूलों की महिमा भगवान् श्रीकृष्ण यों वर्णन करते हैं यथाः—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ ॥ ९ ॥ २९ ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ९ ॥ २२ ॥ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसाग-

रात् । भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसा-म् ॥ मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसिमय्येव अत ऊर्द्ध्वं न संशयः ॥ १२ ॥ ॥ ६७, ८ ॥

मनको सांसारिक पदार्थों से हटाकर ईश्वर की ओर लगाने का भक्तिही सबसे अच्छा उपाय है हम अज्ञान के अन्धकार कूप में गिरे हुए हैं और सदैव अपने आपको इन काम क्रोधादि बगल के शत्रुओं से (traitors in the camp) यथार्थ मार्ग से च्युत कराते हैं, कैसे यह चञ्चल मन दिनरात निरन्तर निकम्मे और अप्रयोजनीय कामों में घूमता फिरता है । मनकी मदमत्त और विक्षिप्तोंकी न्याईं चंचलता पर विचार करने से बड़ाही दुःख होता है विशेषतः जब हम इस बात का विचार करते हैं कि हम इसके दुष्ट और अनर्थकारी स्वभाव को रोकने में कैसे समथ हैं । शङ्कर स्वामी कहतेहैं कि "मृग, हस्ति, भृङ्गी, मच्छी और मधुमक्षि यह पांचों एक २ इन्द्रिय को पूर्ण करने में मारे मारे फिरते हैं तो मनुष्य जिसके पांच इन्द्रिय हैं उसका क्या कहना है । यही मन यदि हम खुला छोड़दें तो हमारा परम शत्रु है. जब इसको वश में करलें तो यह हमारा परम मित्र है यथा 'मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'. एक दक्षिणी महात्मा कहते हैं 'ओह मन तू क्यों इतनी चञ्चलता से पड़ा भटकता है, कई बार मैंने तुझको समझाया है कि यह अपनी चञ्चलता छोड़ दे उसकी प्राप्ति का यत्न कर जिसको न तो शास्त्र का पढना और न हठ योग का करना और नहीं वेदोंका पढना प्राप्त करसकता है, इस अपने निरर्थक भ्रमण को छोड़दे, नहीं तो मैं तुझे मारडालूँगा । और जब मनको यथार्थ रीति से जीत लेनेपर और गुरु कृपा से उसने सत्य का अनुभव करलिया, तो कहता है ओ यार मेरे मन ! तूनेही मुझको मेरी वास्तविक दशा जताई और मेरी यथार्थ दैवी प्रकृति का बोध कराया, तूही मेरा सच्चा मित्र निकला है तूही मेरा गुरू है और तूही मेरे

जीवन का मोक्ष दाता है 'भक्ति का लाभ यही है कि यह मनको लोभ देकर उसको इन्द्रिय के क्षुद्र भोगों की आसक्ति से मुक्त कराके सर्व जगत् कारण और प्रेममय जगतपिता में उसकी आसक्ति बढाता है, सब से सुगम यथार्थ और साथ ही सबसे अच्छा उपाय मनको लोभ देनेका यह भक्तिही है, जिससे मन बाह्य बातों से हटकर सर्वज्ञान के आधार ब्रह्म सच्चिदानन्द में अपना आश्रय लेता है।

मनुष्य योग के पीछे पड़ा फिरता है। जब इन अपने इन्द्रियों को प्रसन्न करते २ प्रकृति कुछ रुकावट करती है तो उसको ज्ञात होजाता है कि जो वस्तु पुण्य है वह हमारे सुख से कुछ पृथक् वस्तु है, सो अन्त में अपने स्वर्गीय पिता से सहायता मांगता है यहही भक्ति का प्रथमांकुर है यह आश्रय का खयाल (Feeling of dependence) शनैः २ प्रेम में बदल जाता है और भगवान् श्रीकृष्ण के बचनानुसार 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति सः महात्मा सुदुर्लभः॥' बहुत जन्मों के पश्चात् भक्त को ईश्वर का साक्षात्कार होजाता है। उस एक एक ईश्वर को ही जगत् के सारे दृश्योंमें देखना उसीके अनन्त रूपों की शोभा में मग्न रहना और उस सत्य की प्राप्ति मेंही यत्न करते रहना इसीका नाम भक्ति है। महर्षि नारद ने क्याही सत्य कहाहै, गुङ्गेकीरसना की नाईं प्रेम स्वभाव भी अकथनीय है, यह तीनों गुणों से रहित है, वासना रहित है, यह सदैव बढता है भक्ति को प्राप्त करके भक्त उसी को देखता है उसी को सुनता है उसी का कथन करता है और उसी का विचार करता है वही उपासक बड़े हैं जिनका संसार में भक्ति की प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य है, गद्गद् वाणी से और खड़ी रोमावली से और रोते २ वह भक्ति का एक दूसरे से कथन करते हुए और इस प्रकार अपने कुटुम्बों को संसार में पवित्र करते हैं तीर्थों में तीर्थों की शोभा का कारण ऐसे ही मनुष्य हैं, उनके प्रभाव से सब कर्म्म शुभ हैं, और पुस्तक धार्मिक पुस्तक हैं वह दैवी शक्तियों का आधार हैं, उनके पितृवर्ग प्रसन्न होते हैं, देवता प्रसन्न होकर नृत्य करते हैं पृथ्वी के वह रक्षक हैं क्योंकि

वह प्रभु के अपने हैं, इस वास्ते इनमें वर्ण भेद, विद्या भेद, जन्म कर्म रूप धन किसी का भेद नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, बहुत से मनुष्य नास्तिक हैं। मुझे इस बात से आनन्द है कि आज कल पश्चिम में एक और प्रकार के नास्तिक उत्पन्न हुए हैं जिनको पदार्थ वादी (Menitestations) कहते हैं,क्योंकि वे सच्चे नास्तिक हैं। आजकल के उन धार्मिक नास्तिकों से यह अच्छे हैं जो अपने धर्म्माचरण में तो सच्चे नहीं हैं परन्तु धर्म्म की दुहाई देते फिरते हैं, जो धर्म्म के वास्ते लडने को तो कटिबद्ध हैं परन्तु उसके अनुष्ठान का उसके यथार्थ ज्ञान का कभी यत्न नहीं करते। "ईसामसीह कहते हैं" मांगो और तुमको प्राप्त होगा, जिज्ञासा करो और वह मिलजायगा "द्वारको खटखटाओ और यह खुलजायगा" एक शिष्य गुरू के पास गया और कहा भगवन् मुझे धर्म्म का उपदेश करो, गुरू ने मुसकराकर शिष्य की ओर देखा और कहा कुछ नहीं, शिष्य प्रति दिन गुरू के पास आता और धर्मोपदेश सीखने की विनती करता। एक दिन जब बहुत घाम था, वह गुरू के पास गया, तो गुरू ने कहा कि नदी तक हमारे साथ चल और वहां चलकर गोता लगा शिष्य ने जाकर गोता लगाया पीछे गुरू ने लगाया और शिष्य को बलात् जल के नीचे दबाये रक्खा, जब शिष्य पानी के नीचे से बाहिर निकलने का बहुत यत्न करने लगा, तो गुरु ने छोड दिया, जब शिष्य बाहर आया तो गुरू ने पूछा कि जब तू जल के नीचे था, तो ज्यादा किस वस्तु की आवश्यकता थी? शिष्य ने उत्तर दिया खुली पवन में एक श्वास की। (गुरू) क्या तुम ईश्वर की भी इतनी ही लालसा करते हो और तेरी लालसा इतनी ही है, तो ईश्वर एक क्षण में प्राप्त होजायगा, जबतक चित्त में ऐसी लालसा नहीं है, धर्म नहीं मिलसकता, चाहे कितनाही अपनी बुद्धि, शास्त्र और कर्मकाण्ड से यत्न करो, जब तक यह तृष्णा यह लालसा तुम्हारे चित्त से नहीं जायगी, तुम कुछ नास्तिक से अच्छे नहीं हो अन्तर केवल इतना है कि नास्तिक का विश्वास पक्का है और तुम्हारा कच्चा है॥

ईश्वर के वास्ते यह तृष्णा ही भक्ति कहलाती है, परन्तु यह जरूरी नहीं है कि यह भक्ति सदैवही ज्ञान से मिली हो, जो ज्ञान केवल मुक्ति का साधन है। सब ज्ञानी जिन्हों ने ईश्वर को पाया है भक्त हुए हैं, परन्तु सब भक्त ज्ञानी नहीं हुए, इसका कारण यह है कि ईश्वर के यथार्थ रूप को जाने बिना भी मनुष्य ईश्वर से प्रेम करसक्ता है। उस ब्रह्म को एक दफाही प्राप्त होजाना असम्भव है, जैसा लेटने के वास्ते जरूरी है कि मनुष्य बैठे, इसी प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म को पाने के वास्ते जरूरी है कि मनुष्य प्रथम उसकी स्थूल मूर्तियों की उपासना करे। और भगवान् श्रीकृष्णके वचनानुसार 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' (४,११) जो सच्चे भक्त हैं यद्यपि उनकी प्रथमावस्था मूर्ति पूजा से आरम्भ होती है, उसको यह मूर्ति शनैः २ उस सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् दयासागर का लिंग बनजाती है। शिवलिंग को देखकर एक शैवभक्त कहता है "ओ परमशिव ! तुम्हारा निवास तो त्रिपुरन्द्री में है, तुमने मुझ पर बड़ी कृपा की है सब को भुलाकर केवल आप के ज्ञान सूर्य्य के ध्यान में ही मैं मग्न रहता हूँ मेरे चित्त के अन्धकार को हटाकर आप उसमें ज्योतिर्मान हो मैंने सृष्टि के प्रत्येक परमाणु को देखा, और उन सब में एक भी ऐसा नहीं जिसमें आप नहीं हों; आप के बिना भी कुछ नहीं है परन्तु आप किसी में दिखाई भी नहीं देते। आहा! तेरे यथार्थ रूप को कौन जान सके! सच्चे भक्त की दृष्टि में मन्दिरों की मूर्तियें उसी परमेश्वर के कई रूप हैं और जब समयानुसार उनको ज्ञान प्राप्त होजाता है, यही मूर्तियें उनकी दृष्टि में और भावों को स्पष्ट करती हैं। एक महात्मा कहते हैं–हे ईश्वर परम शिव ! तेरे ललाट पर अर्धचन्द्र का अंकित होना इस बात को जतलाता है कि तू ज्ञान का आधार है, तेरे हाथ में त्रिशूल का होना इस बात को स्पष्ट करता है कि तू ही "त्रिमूर्ति" है तेरा श्वेत नन्दी पर आरूढ होना इस बात का बोधक है कि तू पुण्य का सागर है यद्यपि तेरा ऐश्वर्य्य अनन्त है तो भी तू इतना छोटा है कि मेरे हृदय में समा सक्ता है, यद्यपि तेरे स्वरूप की कोई मूर्ति नहीं है, तो भी यह सारा जगत तेराही रूप है,

यद्यपि तू मनुष्य के हाथ से नहीं बनाया जासक्ता तो भी तो तू बड़े आनन्द से उस रूप को धारण करलेता है, जो तेरा भक्त तेरे वास्ते निर्माण करता है, तौ भी तू पापी के साथ नहीं रहता ॥

मूर्ति लिंगों से ईश्वर की पूजा करना निर्गुण ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा उत्तम नहीं है, परन्तु बहुत से मनुष्य इस उपासना को भी करने के अयोग्य हैं, सगुण से निर्गुण उपासना बहुत कठिन है। यथाः—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसां।
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

यह वास्तव में भ्रम ही है क्योंकि अमूर्त ईश्वर की मूर्त्ति मान लीजाती है परन्तु भ्रम दो प्रकार का होता है, एक समवादि भ्रम और दूसरा विषमवादि भ्रम। एक बन्द कमरे में लम्प जलरहा है, परन्तु उसकी झोथों से ज्योति कुछ बाहर आरही है, अब कोई मनुष्य इस ज्योति को मणि समझ दौड़कर जोति के पास जाता है परन्तु मणि न झोथों में है और न कमरे में, इसको कहते हैं विसमवादि भ्रम, क्योंकि इसमें पड़ने से मनुष्य उस वस्तु को प्राप्त नहीं होता जिस के पीछे वह दौड़ा था। और यदि लम्प के बदले वहां सच मुच मणि होती तो मनुष्य को मणि प्राप्त होजाती, परन्तु झोथों में नहीं बरञ्च कमरे में इस को कहते हैं समवादि भ्रम, क्योंकि इसमें पड़ने से मनुष्य उस वस्तु को पालेता है जिसको वह ढूँढ़ने निकला था। यह सगुणोपासना या अपरा भक्ति समवादिभ्रम है क्योंकि इसको करने से मनुष्य अन्त में निर्गुण ब्रह्मको पालेता है। और हमारा इन्द्रियजन्य भोगों के पीछे भटकते फिरना विसमवादि भ्रम है, क्योंकि इसके सेवन से हम सच्ची शान्ति से दूर २ ही होते जाते हैं। एक भ्रम से दूसरा भ्रम नष्ट होजाता है सो इस प्रकार इन्द्रिय सुख के भ्रम को छोड़कर इस सगुणोपासना रूपी भ्रम को प्राप्त कर जैसे मन का प्रथम भ्रम हटजाता है॥

यह भक्ति तीन प्रकार की होती है, बाह्य, अनन्य और एकान्त, जब भक्त संसार के दुःखों से विचलित होकर उसके चरणारविन्द की शरण

लेता है और प्रेम में मग्न होकर ईश्वर की इस प्रकार से स्तुति करता है, कि 'मेरे परम पिता ईश्वर के चरण हीन बीणा के स्वर की नाईं या सायङ्काल के पूर्ण चन्द्र की नाईं शोभित हैं' तो उसे बाह्य भक्ति कहते हैं वास्तव में ईश्वर को अपने से बाहर समझ कर जितनी उपासना की जाती है। वह सब बाह्यभक्ति है। सब देवों की अपेक्षा एक देवता की ही उपासना का नाम अनन्य भक्ति है। वास्तव में ऐसा नहीं है कि अनन्य भक्ति में और देवताओं की सी उपासना नहीं है, बरञ्च वह सब देवताओं को उस अपने ही इष्ट देवता के रूप में मानता है। एक वैष्णव भक्त कहते हैं "मैं जिस ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ जो आपही सब कुछ है जो सकल चराचर सृष्टि का कारण है, जो सनातन है, जो आप विष्णु है, शिव और ब्रह्म जिसके रूप हैं (Materalist) जो मधु और अमृत से भी बढकर मीठा है और जो मेरे हृदयाब्ज में विराजमान है।" वैसेही शैव भक्त कहता है, "उसका निवास चिदांबर में है। जो दुग्ध और मधु से भी मीठा है जो सजीव ज्योति है, जो ब्रह्मा और विष्णु है, जो गरजते समुद्र और निश्चल हिमवान में व्यापक हों" अपने इष्ट देवता ही में सब देवों को देखना अनन्य भक्ति है, इष्ट देवता चाहे कुछ ही हो, भक्त उसको परमात्मा ही मानता है। एक महात्मा कहता है "मनुष्यो! चाहे तुम ब्रह्मा, विष्णु, या शिव की उपासना करो, या उनका ध्यान करो उनके ज्ञान में रत रहो, चाहे तुम किसी की उपासना करो, तुम उस परम पुरुष की ही उपासना करते हो—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

यह श्लोक हम नित्य पढते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपिमामेव कौंतेय भजंत्यविधिपूर्वकम्॥ ९। २३।

उस परमेश्वर के अनन्त गुण कल्याण के अनन्त रूपामृत गुणोंके ध्यानमें मग्न रहना एकान्त भक्ति है। एकान्त भक्तिही सगुणोपासना का सर्वोत्तम रूप है॥

पं० अमोलकराम जी बी. ए.

❋ वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है? ❋

इस प्रश्न का उदय प्रायः सबही के मनमें हुआ करता है। इस भूमण्डल भर में मनुष्य समाज और धर्म्म का बड़ा निगूढ़ सम्बन्ध है। जहां २ मनुष्य हैं वहीं २ उनका कोई न कोई धर्म्म भी अवश्यही है। समाज जितना शिक्षित और अविद्या रहित होता है, धर्म्मभी उतनाही उज्ज्वल और अधिकांग सम्पन्न होता है। और और धर्म्मों में मनुष्य के स्वभाव और सुख के अनुसार धर्म्म के एक २ वा दो २ सोपानों का वर्णन है किसी धर्म्म से नीचे के दो सोपान छोड़ दिए तीसरा वर्णन करदिया, अब नीचे के दोनों सोपानों पर चढ़ने की प्रणाली जानी जासकती है न ऊपर, और भी सोपान हैं यह ज्ञान होसकता है, परन्तु वैदिक धर्म्म में यह त्रुटि नहीं है। इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है।

अब हम धर्म्म के इन स्वाभाविक भेदों को दिखाकर वैदिक धर्म्म की सर्व श्रेष्ठता दिखाते हैं। इस संसार में जितने धर्म्म प्रचलित हैं उन सब को पांच भागों में विभक्त किया जाता है।

१—जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

२—जीव का सुख दुःख नाशक धर्म्म।

३—जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

४—जीव का समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म।

५—जीव का जड़ सामर्थ्य सम्वर्द्धक धर्म्म।

जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म उस धर्म को कहते हैं जिसमें जीव तत्त्व को नित्य कहकर सिद्धान्त किया है, और नित्य आनन्द भोगही जीव का प्रयोजन सिद्ध किया है। भगवत्तत्व की नित्यता, प्रीतितत्त्व, जीव

के जड़ सम्बन्ध की अनित्यता और परलोक प्रभृतितत्त्व प्रमाणित किये गए हैं। इसी धर्म्म की शारीरिक और मानसिक वृत्तियों की परिचालना को भगवद्भक्ति, इसी धर्म्म की समष्टि को कहते हैं "श्रीवैष्णवधर्म्म"।

जिन समस्त धर्मों में इन सब मूल विषयों पर विचार किया गया है या इन तत्त्वोंकी समालोचना कीगई है वे सब धर्म अवश्य ही जीव के नित्य सुख वा धर्म के नाम से अभिहित होंगे। चाहे उनमें कुछ भेद भी प्रतीत होता हो।

जो लोग धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं, वे अवश्यही स्वीकार करेंगे कि खृष्ट धर्म, मोहम्मदीय धर्म, ब्राह्मधर्म, प्रभृति सर्व धर्म जीव के नित्य सुख बोधक धर्म हैं। इनमें चाहे जितना अवान्तर भेद हो, परन्तु मूल में ये सब एक जातीय हैं। भेद केवल प्रकृत और विकृत का है॥

जीव का सुख दुःख नाशक धर्म, इस जगत् में अनेक प्रकार से दृष्टि होता है। उन सबमें बौद्ध धर्म्म ऐसी मिसम् और केवल अद्वैतवाद प्रधान है यह मत समय पर उत्थित होकर जगत के अनेक स्थानों में व्याप्त हुआ है। इसके आकार भिन्न देशों में भिन्न २ प्रकार के हैं; किन्तु विचार करने से इसका परम सिद्धान्त सर्वत्र एकही है। इन सब धर्म्मों को जीव का सुख दुःख नाशक धर्म्म कहा जाता है, क्योंकि इनमें जीव की सत्ताही अमङ्गलमय है, इन धर्म्मों में जीव की सत्तानाश ही का नाम परम पुरुषार्थ है, सत्तानाश दो प्रकार से सिद्धान्तित होती है। एक यह कि एक मात्र वस्तु है वह नित्यही निर्गुण और विकार शून्य है। जीव की सत्ता समुदाय विकार और भेदमय है, अतएव मिथ्या और क्लेशमय है। जिस अवस्था में यह सब व्यावहारिक भेद चरम अभेदतत्त्व में पर्यवस्थित होता है, उसी अवस्था का नाम "मुक्ति" वा "निर्वाण है"। भेद जनित सुख दुःख का विनाशक एक मात्र निर्वाण ही है जिस धर्म्म के आचरण करने से निर्वाण हो, उसी धर्म्म को जीव का सुख दुःखका नाशक धर्म्म कहा-जाता है। ग्रीक देशके दार्शनिक विद्वान जेनोफेनिस् और परमिनाईडस् प्रभृति ने उस देश में इस मत को प्रचलित किया था। मध्ययूरोपमें भी

यही मत कुछ भिन्न आकार धारणकर स्पिनजा, सेलिङ्ग और हेजेल प्रभृति पण्डितों के द्वारा प्रचलित हुआ है इसी मत को और भी परिवर्त्तन कर स्कूपेन हुवा और हार्टमान् प्रभृति ने जगत्में 'पेसोमिजर' नाम से प्रचलित किया है। हमारे देशमें जैनमत बौद्धमत और केवल अद्वैत वाद इसी मत के अनुगत हैं। कुछ प्रकारान्तर से इसी मतको गुरू नानक शिवनारायण, गोरखनाथ, आउलचन्द और जगन्नाथदास प्रभृति ने उपासना सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर दिया। (२) चाहें जितना आकार परिवर्तन हो किन्तु जिस मत में मुक्ति चरम लय रूप है उन सब मतों को जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म ही में गिनना चाहिए।

जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म इस जगत् में अनेक रूपों से दिखाई देता है "कर्म्म मार्ग" इस मत में कहीं २ ईश्वर प्रणिधान है कहीं कहीं वह भी नहीं है। इस लोक में देहगत सुख, देहपतन के अनन्तर परलोक में दूसरा देह प्राप्त होकर ऐन्द्रियक विषय सुख, यही सब इस धर्म्म का तात्पर्य है। द्रव्यों का संघटन विशेष और विशेष कार्य कलाप के द्वारा यह सुख प्राप्त होता है। यह मत जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म में भी गुपचुप जा मिला है। मुसलमानी धर्म्म यद्यपि जीवको नित्य सुखोद्देशक धर्म्म है तथापि उस धर्म्म के स्वर्ग सुख की इन्द्रियता देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म उसमें गुप्तरीति से प्रविष्ट होरहा है खृष्टान धर्म्म में यद्यपि जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म का इतना प्राबल्य नहीं है, तथापि खृष्टान धर्म्म ऐसे जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म स सर्वथा रहित हो सो भी नहीं है। क्योंकि "पुनुरुत्थान" के व्यापारसे हमारा सन्देह कुछ कुछ दृढ़ होता है और 'गार्डन आफ ईडन' के भावों को विचारने से वह सन्देह विश्वास रूप होजाता है।

जीव का समस्तसुख सम्वर्द्धक नैतिक धर्म्म जडीय विज्ञान का आश्रयकर बहुत से पण्डितों का प्रिय हुआ है। जड वाद, स्थिर वाद, समाज वाद प्रभृति नास्तिक धर्म्म सब इसी जीव के समस्त सुवर्द्धक नैतिक धर्म्म के अन्तर्गत हैं। जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म ऊपर

के वर्णित तीनों धर्म्मों में नहीं हो सो नहीं, इन तीनों प्रकार के धर्म्मों में उसका सद्भाव है, किन्तु जब वह इन धर्म्मों में से स्वतन्त्र होकर मनुष्योंको दर्शन देताहै तबहीं वह जडवाद स्थिरबाद वा समाज बाद हो-जाता है। यह जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओं में जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म के लिए रहता है। इनको पृथक् २ जानने का हेतु यही है कि जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म किसी किसी अवस्था में समस्त सुखवर्द्धक नहीं होता है। किन्तु समस्त सुखव-र्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओं में अनित्य सुखोद्देशक रहता हैं कर्म्मकांड अधिकांश रूपसे समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म में आत्मा की नित्यता नहीं है। जो कोई जीवात्मा कुछ कार्य करते हैं उसका फल समस्त जीव भोग करते हैं। कोई कहते हैं कि शक्ति इस फल को परिचा-लित करती है, कोई कहते हैं अदृष्टही यहफल देता है, कोई कहते हैं अप-र्वक नामक एक तत्त्व इस फलको जीवके सन्निहित करता है।

जीवका जड़ सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म विविध देश में विविध रूपसे विवक्षित होता है। कहीं कहीं वह धर्म्म केवल इस जड़ शरीर की वैज्ञानिक शक्ति के वढाने का परामर्श देता है और किसी देशमें किसी मतमें इस स्थूल शरीर के अतीत सूक्ष्म देह वा ज्योतिर्मय वैद्युतिक शक्ति समुदाय रूप देहकी गुप्त शक्ति समुदाय को प्रकाश कराना वढाने का उपदेश है। इस देश वा अन्यदेशों में जितने प्रकार के तान्त्रिक,यान्त्रिक, मुद्रा घटित और यौगिक मत प्रचलित हैं वे सव इसी मत के अन्तर्गत हैं। षड़ङ्ग योग बौद्ध योग, थियोसोफी, प्रभृति सब इसी मतके अन्तर्गत हैं। थियो-सोफी में यद्यपि जीव के सुख दुःखनाशक धर्म्म के साथ अधिकांश स्वार्थ लिया है सत्य, किन्तु उसकी निज भूमि यही जीव का जड़ सा-मर्थ्य संवर्द्धक धर्म्म है।

वैज्ञानिक दृष्टि से थोडा विचार पूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस संसार में जितने प्रकार के धर्म्म प्रचलित हैं और जितने प्रकार के और नवीन धर्म्म प्रचलित होसकते हैं वे सब इन्हीं पांचों प्रकारों के

अन्तर्गत हैं और रहेंगे क्योंकि यह पांच भेद वैज्ञानिक क्रमोन्नति पर स्थापित हैं और यह भी स्वीकार करना होगा कि इस समय तक जितने धर्म्म प्रचलित हुये हैं वा आगे होंगे वे सब इन्हीं पांचों प्रकार के धर्मों में से एक को अथवा दूसरे को लेकर चाहे कइयों की आंशिक अवस्थाओं को चाहे एक से उन्नति कर दूसरे तक पहुँचने की मध्य अवस्था को लेकर प्रकाशित हैं और होंगे ॥

यहां पर यहभी सूचित करना आवश्यक है कि हमारे लेख में एकांकाश्रित धर्म सर्वोच्च और क्रमशः निम्न श्रेणीका है। जीव के पक्षारंभ में पञ्चम श्रेणी से चलकर क्रमशः प्रथम श्रेणी तक जाने की आवश्यकता है॥

अव हम क्रमशः इन पांचों प्रकार के धर्म्मों का संक्षिप्त वर्णन कर चुके हैं। यहां इन सव के विषय में जो वैदिक पौराणिक वाक्य मिलते हैं, उनको संक्षेप से उद्धृत करते हैं। उद्धार का क्रम हमने यह रक्खा है कि जो उनके आरोहण का क्रम है अर्थात् पञ्चमश्रेणी से आरम्भ कर प्रथम श्रेणी तक ॥

५—जीव के जड़ सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म विषय में अग्निर्हिमस्य भेषजम्॥

सूर्य्यःएकाकीचरति चन्द्रमा जायते पुनः। तद्धैतदृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं सूर्य्योभवम्मनुरभवम् ॥

अग्नि हिम का भेषज अर्थात् औषधि है। सूर्य्य दिन में अकेला विचरता है। उस समय और सव ग्रह अस्त होजाते हैं चन्द्रमा फिर सूर्य्य के प्रकाश से रात्रि को प्रकाशित होता है ॥

इत्यादि जड़पदार्थ के स्वरूप निर्णय करनेवाले वाक्य यजुर्वेद में हैं। वामदेव ऋषि को ज्ञान के द्वारा यह प्राप्त हुवा कि मैं सूर्य्य हुआ था मैं मनु हुआ था। इत्यादि सूक्ष्म शरीर के शक्ति वर्द्धक उदाहरण उपनिषदों में मिलते हैं ॥

४—जीव के समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म के विषय में—मनीषिणः प्रभरद्ध्वं मनीषां यथायथा मतया सन्ति नृणां सत्यंवद धर्म्मंचर * * * मातृ-

देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव * यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥

तुम बुद्धिमान् होकर ऐसी बुद्धि संग्रह करो जैसी लोगों की प्रकृति हो इत्यादि यथा प्रकृति सबके प्रिय बनने और सब से बुद्धि सीखने के वाक्य ऋग्वेद में हैं। सत्यबोलो धर्म्म करो, मातृदेव हो, पितृदेव हो, आचार्य-देव हो, (अर्थात् इनमें देवता के समान भक्ति करो जो हमारे अच्छे चरित हैं उनका अनुकरण करो न कि हमारे बुरों का—

इत्यादि नैतिक उपदेश तैत्तरीय उपनिषद् में हैं।

३—जीवके अनित्य सुखोद्देश धर्म्म के विषय में। अग्निष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्। "तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयोयान्यपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्य कामः एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके"।

स्वर्ग की कामनाकर अग्निष्टोमयाग करै जबतक जीवितरहे अग्निहोत्र करै।

इत्यादिक ब्राह्मण श्रुतियां यज्ञ और यज्ञफल स्वर्गप्राप्ति विधान करती हैं।

कवियों नें (ऋषियों ने) वेदमन्त्रों में जो सब कर्म देखे हैं उन्हीं को सत्य कहा है। वे कर्म त्रेता में बहुधा विस्तार किये गये हैं। तुम नियत सत्य काम होकर उन कर्मों का आचरण करो येही तुम्हारे सुकृत (पुण्य) लोक का पथ है। इत्यादि कर्म्म प्रशंसा के वचन मण्डूकोपनिषद् में हैं॥

२—जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म के विषय में "नभयं सुखंदुःखे च तथा मानापमानयोः यत्तद्भावविनिर्मुक्तन्तदग्राह्य ब्रह्मतत् परम्। अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च" न भय है न सुख है न दुःख है न मानापमान का विचार है इन समस्त भावों से रहित वहही परब्रह्म है वह ही ग्राह्य है। इत्यादिक सुख दुःख नाशक भाव को निर्वाण रूप से तेजोबिन्दूपनिषद में वर्णन किया है।

वही परम योग जीवों के निःश्रेयस के निमित्त है कि जहां दुःख और सुख दोनों की अत्यन्त निवृत्ति है। इत्यादि सांख्य वर्णन में श्रीभागवत् में भी देखा जाता है।

१—जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म्म के विषय में "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतना मेको बहूनांयो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येनुपश्यन्तिधीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम्।"

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योनमेधया न बहुनाश्रुतेन।
यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्मावृणुतेतनुंस्वाम् ॥

जो नित्य जीवों का नित्य है, चैतन्य जीवों का चैतन्य है, बहुत से जीवों का एक नियन्ता है जो समस्त कामों का विधान करता है। वह आत्माधार है उसे जो जीव देखते हैं उन्हीं को शाश्वती अर्थात् नित्य शांति मिलती है औरों को नहीं। इत्यादि कठोपनिषद में भगवत् प्राप्ति के द्वारा नित्य सुख का विधान है॥

यह आत्मा बड़े २ लैकचरों से नहीं मिलता है, न बुद्धि से न बहुत पढने से। यह जिसको वरण करता है अर्थात् कृपा करता है उसी को मिलता है उसी के आगे यह अपना तनु (मूर्ति—स्वरूप) प्रकाश करता है॥

इत्यादि मण्डूकोपनिषद् में भगवान् प्राप्ति भगवत् कृपा साध्य है यह सब वर्णित है।

अब हमारे इस ऊपर के प्रस्ताव के पाठ करने से यह स्पष्ट सिद्ध होजायगा कि इस जगत् में जितने आस्तिक और नास्तिक धर्म्म प्रचलित हैं वे सबही अधिकारि भेद से वैदिक धर्म्म में आलोचित हैं। वैज्ञानिक विचार से धर्म्म के जितने भेद हैं वे सब एकाधार वैदिक धर्म्म में ही हैं सुतरां वैदिक धर्म्म ही सर्व श्रेष्ठ होसक्ता है और सब अवस्थाओं में जीव का जीवन स्वरूप होसक्ता है। इसीके द्वारा जीवनमात्र का परम कल्याण हो सक्ता है। इसी 'वैदिक धर्म्म' का नामान्तर है "हिन्दू धर्म्म" यही "वैदिक धर्म्म" सर्व श्रेष्ठ है अब आप को भी यह प्रतिपन्न होगया कि "वैदिक

धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ?" अब आपके हृदय में यह प्रश्न रूप से न रहा होगा कि वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? परन्तु अब आप दूसरों के आगे भी यह सिद्धान्त कर सकेंगे कि—वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? सुतरां हम भी अब इस प्रस्ताव को यहीं पूर्ण करते हैं कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है" ॥

जीव की नितान्त माया बद्ध जड़ अवस्था से आरम्भ कर, विशुद्ध चिन्मय अवस्था प्राप्त होने तक अनेक सोपान हैं। उन सब सोपानों को क्रमशः अतिक्रम कर सर्वोच्च चूड़ा तक आरोहण करने को क्रमोन्नति लाभ करने के अनुसार ये पांच भेद हुए हैं ॥ वैदिक आर्य धर्म्म की श्रेष्ठताका यही कारण है कि वैदिक धर्म्म में इन पांचों प्रकार के धर्म्म का यथावत् सन्निवेश है और और धर्म्मों में ऐसी सुन्दर प्रणाली से पाचों प्रकार के धर्म्मों का समावेश वा सामञ्जस्य नहीं है। किसी में दो का वा तीन तक का अवस्थान है औरों को छोड़ दिया है। अतएव उन धर्म्मों में किसी धर्म्म को पूर्ण धर्म्म नहीं कहा जासक्ता है इसी से वे सब धर्म्म जीव की सब अवस्थाओं में उपयोगी नहीं होसक्ते हैं, किन्तु वैदिक धर्म्म सब अवस्थाओं में जीव के जीवन के प्रत्येक अंश के साथ मिलकर जीवन स्वरूप होजाते हैं, धर्म्म जब तक जीव का जीवन रूप न हो तबतक जीवन धर्म्ममय और जीव धार्मिक नहीं होसकता है।

अन्यान्य धर्म्मों में एक वा दो सोपान को धर्म्म रूप से दिखा दिया है, परन्तु निम्न सोपान क्यों कर अतिक्रम किये जासकते हैं और इससे ऊपर कुछ है कि नहीं, इन विषयों में कुछ भी उपदेश नहीं है। इससे फल यह होता है कि धर्म्म एक स्वतन्त्र जड़ पदार्थ होजाता है जीवन रूप नहीं होसक्ता है। धर्म्म जब तक धार्म्मिक का जीवन नहीं होजाता तब तक वह एक आगन्तुक के समान वा एक अतिथि के समान गृह में निवास करता है। इससे जीव का कब मंगल होसक्ता है ? ॥

जड़ वादी जड़वादी रहजाते, कर्मी कर्मी ही रहजाते हैं, ज्ञानवादी ज्ञानवादी हो रहजाते हैं उच्च अधिकार नहीं प्राप्त करसकते हैं ॥

वैदिक धर्म्म में इन सब स्थानों का भिन्न २ वर्णन है। जीवकी निष्ठानुसार यथा भूमि में अवस्थान और निष्ठा अतिक्रम होने से निम्न भूमिकाको परित्यागकर उच्च भूमिका आरोहण करना यह सब यथा विहित वर्णित है।

और और धर्म्म एकही एक अवस्था के जीव के कल्याणकारी हैं परन्तु वैदिक धर्म्म जीवकी सब अवस्थाओं में कल्याण विधान करता है। ऐसेही भूरि भूरि उपदेश वैदिक धर्म्म में प्रदत्त हैं।

वैदिक धर्म्मका आश्रय करने पर भी यदि जीव को विशुद्ध भगवद्भक्ति पर्यन्त उच्चगति शीघ्र न मिले तो अवश्यही वह दुर्भाग्य जीव कहा जायगा।

हमारा उपर का यह हेडिंग कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है? अवश्य अब पाठक जन समझ गये होंगे।

फिर भी इसका सार संकलन दिये देते हैं कि इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है कि इसमें जीवगण की सब अवस्थाओं में कल्याण होने की संभावना है अन्यान्य धर्म्मों में किसी नियमित अवस्थामें और कदाचित् मंगल होता है। यही वैदिक धर्म्म की श्रेष्ठता है इसी से वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है। अब सब श्रोतागण समझगये हैं कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है"।

श्रीमधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन.

पुत्र।

महाशय ! पुत्र यह नाम भी कैसा मधुर और मनोहर है, महाकवियोंने इस शब्दकी महिमा नाना प्रकारसे वर्णन कीहै,

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम्॥

पुत्र स्त्री पुरुषोंके अनुरागका सर्वस्व है, कैसी अद्भुत बात है कि धनी और दरिद्र दोनोंको पुत्ररूप धन समान है। पुत्रके होनेसे जो सुख सार्वभौम राजाको होताहै वही एक रङ्क पुरुषको भी होताहै चन्दन और खसका लेप करनेसे जो जो आनन्द पुरुषको मिलताहै वैसा ही सुख सजीव खिलौने पुत्रके आलिङ्गनसे प्राप्त होताहै।

दिग्वाससं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम्।
पुण्याधिका हि पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम्॥

एक कवि बालकको भगवान् शिवजीकी उपमा देताहै—शिवजी दिगम्बर हैं, वह ज्ञानस्वरूप होनेसे सदा अवधूत वेशमें रहते हैं, वस्त्रसे शरीरको ढांपनेकी उपाधि उनको नहीं है। लड़के भी दिग्वासस् अर्थात् नंगे रहतेहैं। शङ्करजीको लज्जा नहीं है, बालकोंको भी लज्जा नहीं होती। शम्भु जटाधारी हैं, लड़के भी बालोंकी लटें रखाये रहते हैं। भोलानाथजी विभूति लगानेसे धूसर रहतेहैं, बालक भी बालू मिट्टी आदि में खेलनेसे धूसर होरहतेहैं। संसारमें जिन तपस्वियोंके बडे बडे कठिन तप हैं—जिन्होंने बहुत पुण्य कियेहैं वे ही शिवजीके समान पुत्रोंको देखतेहैं। (पातेहैं) कहाँ तक लिखाजाय ऐसे ही अपूर्व अपूर्व भाव कवियोंने पुत्रके ऊपर लिखे हैं।

धर्मशास्त्रकारोंने तो इस शब्दका अर्थ भी लिखा है—

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

'पुत्' इस नामका एक नरक है उससे पिताको जो बचावे उसको पुत्र कहते हैं। यह पुत्रशब्दकी व्युत्पत्ति स्वयं ब्रह्माने कीहै। वशिष्ठस्मृतिमें लिखाहै—

ऋणमस्मिन्सन्नयति अमृतत्त्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्॥

पिता यदि जीतेहुए पुत्रका मुख देखले तो पितरोंका ऋण उसमें रखदेताहै (पितृऋणसे उऋण होजाताहै) और मोक्षको प्राप्त करता है। शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि मनुष्य, इस जीवलोकमें पैदा होते ही तीन ऋणोंसे ऋणी होताहै यथा देव ऋण पितरऋण और अतिथिऋण। जब पुत्र उत्पन्न होजाय तो इन तीनों ऋणोंसे उऋण होजाताहै, क्योंकि अपना ऋण अपने पुत्रके ऊपर रखदेताहै। यदि पुत्र योग्य हो और गया आदि स्थानोंमें पितरोंका श्राद्ध करदे तो अवश्य उसके पितर मुक्त होजातेहैं, पुत्रकी योग्यता पिताके अधीन है, क्योंकि पुत्र पिताका प्रतिबिम्ब है, जैसे गुण दोष पिता में होतेहैं वैसे ही पुत्रमें आतेहैं इसीसे गर्भाधानकी विधि बनीहुई है, उसके अनुसार पवित्र संस्कारवाला पिता आधान करै तो अवश्य सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हो। शास्त्र में कहा हुआ है कि—

अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायते।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदांशतम्॥

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि पुत्र पिताके प्रत्येक अङ्गसे और मनसे उत्पन्न होताहै, पुत्र नाम जिसका पड़ाहै ऐसा आत्मा ही है अर्थात् पिता ही पुत्ररूप धारण कर उत्पन्न होताहै ऐसे पुत्र तुम सौ वर्ष जीओ। इस मन्त्रसे निर्विवाद सिद्ध हुआ कि योग्य पुत्र उत्पन्न करने के लिये पिताकी योग्यताकी आवश्यकता है। आपको विदित होगा कि चित्रकार (फोटोग्राफर) जब किसीका प्रतिबिम्ब लेताहै तो कैसी सावधानी प्रतिबिम्ब निकलवानेवालेको करनी पड़तीहै, जहां कुछ भी हिले या आँख ही मिच-गई तो चित्र टेढ़ा अथवा कुरूप होजाताहै। यह स्मरण रहे कि मनुष्यके

निर्दोष होनेपर भी उसकी असावधानी मात्रसे कैसा परिणाम होजाताहै। यह चित्रकी बात है जो कि विनोदमात्रके लिये खिंचवाया जाताहै। मनुष्यकी उत्पत्ति इससे कुछ विचित्र है। यह चित्रकारि ईश्वरकी है। इसका चित्रकार बड़ा सिद्धहस्त है अनादिसे सृष्टि चली आई है। न इसके अन्तका ही पता लगता न आदिका। अपनी बुद्धिके अनुसार यद्यपि मुनियोंने इसका भी निश्चय किया है पर मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धिसे उसमें कुछ तर्क वितर्क नहीं कर सकता। प्रयोजन यह है कि इतने समयका चित्रकार भगवान् देशकाल जीव के पुण्यापुण्यकी सामग्री (भाग्य) पुरुषकी चेष्टा इत्यादि सामग्री द्वारा जो चित्र मनुष्यका खींचता है उसमें कभी फर्क नहीं पड़सकता। जीवके पुण्यापुण्यकी सामग्री ही मुख्य कारण है इससे मनुष्यके पूर्वजन्मके शुभकर्म तथा इस जन्मके उत्तम कर्मोंसे जिस पुत्रका जन्म होगा वही यथार्थ पुत्र कहानेयोग्य हो सकता है। नीतिकारोंने इसी पर कहाहै कि "सन्ततिः पुण्यमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्" सन्तानके आचरण पिताके पुण्यको बतातेहैं, शरीरका पुष्ट वा कृश होना ही भोजनका अनुमान करादेताहै। इसीलिये मुनि तथा नीतिकार उपदेश करते हैं कि कुछ भी समय धर्म अर्थ और कामों से रहित व्यतीत न होना चाहिये। धर्मशास्त्रकारोंने स्पष्ट कहा है कि, सन्तान माता या पिताके शील के ही अनुसार होती है इससे उचित है कि माता पिता दोनों सुयोग्य होने चाहिये।

कभी कभी ऐसे प्रतिबन्धक कर्म आजाते हैं कि मनुष्यों की सन्तति नहीं होती, इस दशामें गृहस्थाश्रम अपूर्ण रह जाता है क्योंकि पुत्रके न होनेसे देव पितर और मनुष्य ऋण चुकता नहीं, यह गृहस्थका बडा दुर्भाग्यहै। वसिष्ठजीने अपनी बनायी हुई स्मृतिमें लिखाहै कि "नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते" अर्थात् वेदोंका सिद्धान्त है कि जिसके पुत्र न हुआ हो उसको स्वर्गादि उत्तम लोक मरनेके पीछे नहीं मिलते इससे महर्षि मनुने कहाहै कि—

अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः ।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसङ्कीर्तनाय च ॥

जिसके पुत्र नहो उसे जिस तरहसे हो उस तरहसे पितरोंके श्राद्ध तर्पण आदि करने तथा संसार में अपने नाम चलनेके लिये धर्मपुत्र बनाना चाहिये। पहले समयमें ११ प्रकारके धर्मपुत्र करनेका अधिकार था पर कलिमें केवल दत्तक लेनेकी ही मुनियोंने आज्ञादी है, शेष १० प्रकारके पुत्रों का त्याग कियाहै, इससे यहां पर दत्तकके विषयमें कुछ लिखते हैं।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥

पिता अथवा उसकी आज्ञासे माता जिस अपने योग्य और प्रसन्न पुत्रको संकल्प करके दूसरे को देदेवें वह दत्तक कहलाता है दत्तक अपने गोत्रका ९ वर्षतक की अवस्थावाला उसके माता पिताके सामने अग्निमें होमकर वैदिक विधिसे लेना चाहिये पीछे अपनी शाखाके अनुसार कुल रीति से उसका उपनयन करना चाहिये। सामयिक राजाकी आज्ञा लेनी भी आवश्यक है। परन्तु यदि अपने सहोदर भाई का पुत्र किसी तरहसेभी मिलजायतो कभी दूसरेका पुत्र दत्तक नहीं लेना यह मुनियोंका सिद्धान्त है.

सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे ते तेन पुत्त्रेण पुत्त्रिणो मनुरब्रवीत् ॥
सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्त्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥

बहुतसे सहोदर भाइयोंमें एक भाई भी यदि पुत्रवाला हो तो सभी भाई उस के पुत्र से पुत्रवाले हैं। एक पुरुषकी कई पत्नी होवें उनमेंसे एक भी यदि पुत्रवाली हो तो वे सभी स्त्रियां उस पुत्रसे पुत्रवाली होती हैं। ऐसा मनु कहते हैं।

व्यवहारमयूखमें लिखाहैः—

[भ्रातृ पुत्रः] दत्तकस्तु परिणीत उत्पन्नपुत्रोपि भवतीति तातचरणाः। भाईका पुत्र विवाह किया हुआ हो चाहो पुत्र भी उसके उत्पन्न होगयाहो तौभी वह दत्तक होसकताहै। याज्ञवल्क्य मुनिके आशय-के अनुसार मिताक्षराकारका भी यही मत है कि भाईका पुत्र यदि दत्तक मिलसकै तो दूसरा कभी न लेना। मुनिलोग त्रिकालदर्शी हैं उनका कहना मनुष्योंको निस्सन्देह करना चाहिये भाईके शुक्रसे उत्पन्न हुआ पुत्र भाई ही है भाई अपने पिताकी मूर्त्ति है, यह सभी समझसकते हैं कि भाईके पुत्रके सामने दूरका बिरादर पितरोंसे अवश्य दूर होजाताहै। लोगोंका यह हठ और दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि वह भाईके पुत्रके रहनेपर जो दूसरेको दत्तक लेनेका अविचार करतेहैं। यह बड़े खेदकी बात है कि आज कल लोग जिसको चाहे उसको अपना दत्तक बनालेते हैं उससे पितरोंका उद्धार होना तो अलग रहा उलटा अधोगति होजातीहै। क्योंकि दत्तक लेने पर उस पुत्रका चूड़ाकर्म अपनी शाखाके अनुसार करना चाहिये फिर संस्कारोंमें प्रधान संस्कार उपनयन तो यत्नपूर्वक करना चाहिये, तभी दत्तक ठीक है नहीं तो वह दास तुल्य होजाताहै।

चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः।
दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथा दास उच्यते॥

यह व्यवहारमयूखमें साफ लिखाहै। परन्तु आजकल इन बातोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दियाजाता, कई ठिकाने पर तो ऐसा देखागयाहै कि विधवा स्त्रियां प्रायः अपनी अज्ञानसावश ऐसे पुत्रको भी गोद लेलेतीहैं जिसकी जातिका भी पता नहीं लगता उससे जो अनिष्टकारी परिणाम होताहै उसका कोई उपायही नहीं है। धनियोंमें ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते रहतेहैं। उनको इस बातका ध्यान नहीं रहता कि हमारा धन उत्तम रीतिसे सत्कार्य्यमें व्ययहो। द्रव्यकी तो तीन ही गति हैं सत्पात्रमें दान, भोग और नाश। यदि कोई धनी चाहै कि मेरा धन कभी नष्ट न हो तो उसके

लिये यही उपाय है कि वह विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला इत्यादि परोपकारी कामोंमें धनका व्ययकरै उससे "पात्रे दानं मनागपि" के अनुसार धन वहुत वढ जायगा जिससे दाताका सदा कल्याण ही होगा परन्तु धनके आने के साथ ही प्रमाद आजाताहै तव उस धनके साथ इतनी ममता होने लगती है कि लोभी मनुष्य अपने प्राणों से भी वढकर उस धनकी रक्षा करने लगता है, अन्तमें अग्नि, चोर और राजा उसके स्वामी होते हैं, कहिये कैसी विषम समस्या है। जो अविचारी मनुष्य अपने माता पिताके शुक्र शोणितसे वनेंहुए भाईकी सन्तानको छोडकर दूसरेको दत्तक लेते हैं इससे न तो उनहींको कुछ लाभ होता न पितरही प्रसन्न होते, क्योंकि धर्मशास्त्रके अनुसार भाईका पुत्र ही सर्वथा अधिकारी (हकदार) है। यह व्यवहारसिद्ध वात है कि किसीका चाचा विना सन्तान मरजाय तो विना किसीके कहे हुए ही धर्मशास्त्रानुसार वह अपने चाचाके श्राद्ध करनेका अधिकारी है। इसी प्रकार ताऊ या चाचाके निस्सन्तान मरनेपर भी उसके द्रव्यका अधिकारी भतीजा है ही। शास्त्रकी ऐसी व्यवस्था न जान कर जो अपनी मनमानी इच्छासे दूरके वान्धवको दत्तक लेते हैं वह सर्वथा अनुचित कार्य्य करते हैं। इन्हीं सव वातोंको विचारकर स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार धर्मशास्त्रकार नहीं देते। "न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः" स्त्री पुत्रको दत्तक होनेके लिये न दे, न ले पर पति आज्ञा देगया हो तो लेवै। इस वशिष्ठस्मृतिसे भी मालूम पडता है) कि स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है क्योंकि दत्तकलेते समय कितने ही वैदिक मन्त्र ऐसे हैं जिनको स्त्री नहीं कह सकती, और संभव है कि–दीर्घदृष्टि न होनेसे स्त्री शास्त्रकी ओर न देखकर अपने अनुकूल चलनेवालेको ही दत्तक लेलेवे और क्या आश्चर्य है कि धनके लोभसे कुटिल मनुष्य स्त्रीकी बुद्धिको विरुद्ध करदें और नाना प्रकारकी मायाओंसे उसे छलकर कुमार्गमें प्रवृत्त करदें ऐसे उदाहरण एक नहीं कितने ही होगयेहैं जिनके अपयश (वदनामी) के वृत्तान्तोंसे उस समयके समाचारपत्र तथा न्यायालयोंकी मिसलें भरी

पडीहैं। अभी बहुत समय नहीं हुआ है एक नामी सेठ वैकुंठवासी हुए, उन का दत्तक जब उस बडी धनराशिका उत्तराधिकारी हुआ तो उस धनकी रक्षा करने अथवा पिताकी भाँति सन्मार्गमें लगानेकी न उसकी रुचि ही थी न संस्कार ही उसके ऐसे थे कि जो उसकी धार्मिक बुद्धि होती। बस, नाच तमाशे मद्यादि दुर्व्यसनोंमें धनका, अपव्यय होनेलगा कितनाही रुपया मुकद्दमेमें व्यय होगया,। वकील बैरिष्टरों की मुट्ठियां गर्म होनेलगीं अन्तमें ३० लाख रुपये न्यायालयसे दत्तकको मिलगये। पर इस धनराशिका भोग वह न करसका बल्कि थोड़े ही समयमें स्वयं क्षयरोगका बलि होगया। ईश्वर ही जाने कि इस दत्तकसे वैकुण्ठवासी सेठजीके आत्मा की क्या दशा हुई होगी विचारिये, दत्तक तो जड़मूलसे गया उसके पीछे भी उस धन तथा उसके भोगनेवालों की कुछ दुर्दशा बाकी नहीं रही। यही कारण है कि ऋषियोंने विधवाको दत्तक लेनेका निषेध कियाहै।

उत्तम पक्ष तो यह है कि भारतवर्षमें जो कुछ भी द्रव्यपात्र हो उनको भाई भाइयोंमें सहोदर स्नेहके नाते पहिले तो अलग होनाही नहीं चाहिये और अलग होभी जायँ तो निस्सन्तान होनेपर अपने भाई या उसके पुत्रके नामपर अपने द्रव्य तथा, स्त्रीकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना चाहिये जिससे उसके पीछे उसकी स्त्रीको इन बातोंमें कुछ करनेका अवसर ही न आवे। और स्त्रीधर्मकी शिक्षा तो स्त्री समाज भर को रहनी चाहिये जिससे विदुषी स्त्री अपना, कर्त्तव्य स्वयं जानकर कभी ऐसे अधर्ममय कामोंमें रुचि न करें। आज कल स्त्रीशिक्षाके लिये लोग बड़ा यत्न कर-रहे हैं पर अपनी सनातन स्त्रीशिक्षा जिसका वृत्तान्त हमारे पुराण और धर्मशास्त्र आदि में पग पग पर आताहै और जिसके भूलजानेसे ही स्त्रीसमाज शोचनीय दशाको प्राप्त होरहीहै उसीके उन्नति करनेकी आवश्यकता है।

इससे स्वयं स्त्रीहीको चाहिये कि वह अपने पतिकी शुभ कामनासे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करै और जहां तक बनपड़े सूक्ष्म आहार कर अपने

देहको सुखाडाले जिससे विषयवासना बिलकुल नष्ट होजावे । यह भारत-वर्ष, उसमें भी आर्यावर्त पुण्यकी भूमि है, इसमें किये हुए पुण्य और पाप प्रतिदिन बढते जाते और अपने कर्ता पुरुषको शुभाशुभ फल देते हैं। पिता पुत्र और स्त्री आदिका ऐसा संबन्ध है कि एकके कियेहुए कर्म दूसरेको अवश्य फल देते हैं। स्त्री तो पुरुषका वाम अंग है इसीसे धर्मशास्त्रमें लिखा है कि "पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥ पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।" जिसकी स्त्री मद्य पीवे उसका आधा अङ्ग पतित होजाता है, पातकी आधे शरीरका कुछ प्रायश्चित्त नहीं है। जैसे किसीके देहमें बडा भारी घाव होजाय और उसकी तत्काल कोई चिकित्सा न कीजावे तो बढते बढते वह सर्वाङ्गको आक्रान्तकर पुरुषके प्राणोंतक को नष्ट कर देता है स्त्रीके दोष से स्वर्ग में गये हुए पुरुषकी भी अधोगति होजाती है। कहा भी है—

अमात्यदोषो राजानं भार्यादोषः पतिं यथा ।
तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

जैसे मन्त्रीका दोष राजाको, स्त्रीका दोष पतिको लगताहै उसी प्रकार शिष्यका पाप दीक्षा देनेवाले गुरुको भुगतना पडता है। हां एक प्रकार से दोष नहीं लगसकता वह यह है कि जैसे एक अंगुली में सांपका विष चढगया हो तो उसको उसी समय काटडालने से शेष अंगमें विषका संसर्ग नहीं होने पाता. इसी प्रकार दुराचारिणी स्त्रीका परित्याग होने से पतिकी रक्षा होसकती है। यह सब पतिके जीवित रहनेपर होसकता है पर जब विधवा ऐसे दुष्टकर्म करै तो विचारा पति तो इस कर्मभूमिमें है ही नहीं वह तो ऐसी भूमिमें गयाहै जहां केवल किये हुए कर्मों का भोग ही होसकता है उस समय वह अपने किये हुये ही कर्मोंके अधीन रहता है। हां, उसके पुत्र और पत्नी सदाचारी हों तो उसको सहायता भी मिलसकती है और उसके दुर्भाग्यसे वह अच्छे न हुए तो और भी नरकादि दुःख उस मृतप्राणीको भोगने पडते हैं। उस निरपराध पति को घनिष्ठ सम्बन्ध वश यद्यपि नरकादि यातना भुगतनी पडती हैं

पर उस विधवा अथवा दुराचारी पुत्रको भी यमका घोर दण्ड भोगना पडता है। बड़े खेदकी बात है कि इस संसार में जब मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि आदि देवता और अपने हृदयमें रहनेवाले आत्माकी कुछ परवाह न कर पापकर्म करता है उस समय तो उसको कुछ फल नहीं मिलसकता क्योंकि-

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु।
नत्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः॥मनुः॥

इस संसारमें जो पाप किया जाताहै वह खेतीकी तरह तत्काल तो फल देता नहीं, धीरे धीरे जब वह बढता जाताहै तो पाप करनेवालेकी जड उखाड़ डालता है। पाप यदि करनेवालेको अपना फल नहीं देपाता तो उसके पुत्रको देता है, कदाचित् उसेक भी शुभकर्म पूर्वजन्मके किये हों तो उसमें भी पाप अपना फल नहीं दिखापाता, परन्तु उसके पुत्र अर्थात् पापीकी तीसरी पीढीमें तो अवश्य अपना विषम काण्ड उपस्थित कर देता है। क्योंकि यह सिद्धान्त है कि कियाहुआ पाप कभी निष्फल नहीं होता। यहां खेद इतना ही है कि मनुष्य जब अज्ञान वश होकर पाप करने लगताहै उस समय विचारसे वह शून्य होजाताहै पर जब उस देहको त्यागकर धर्मराजके वशमें होकर नरकों की वेदना भोगताहै उस समय उसको पश्चात्ताप होता है। फिर क्या होसकताहै। इससे इस मनुष्य देह को पाकर सदा ऐसे ऐसे पापोंसे बचना चाहिये जो कि दूसरे लोकमें बाधक होकर अधोगतिमें डालें।

स्त्री जाति स्वभावसे ही कोमल है, उसको नीतिज्ञोंने अबला कहा है उसके हृदयमें दृढता नहीं, उसका कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं, बल्कि दोषोंकी खानि स्त्री है। इसीसे मनु महर्षि उसके लिये रक्षाका उपाय यही समझते हैं कि-

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥

जब तक बाल अवस्था हो कन्या पिताके अधीन रहे, युवावस्थामें पतिके वेशमें रहै, यदि पति न रहै तो पुत्रोंके अधीन होकर रहै पर स्वाधीन कभी न हो । क्योंकि स्त्रीका स्वतन्त्र होना ही उसके नाशका कारण है गोसाईं तुलसीदासजीने भी कहाहैः—

"महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतंत्र हुइ बिगरहिं नारी ।" धन्य हैं वह स्त्रियां जो अपने स्वाभाविक दोषोंका विचार कर उनसे वचनेका सदा यत्न करतीहैं—स्त्री समाजमें पातिव्रत धर्मकी जागृति कर उसकी उन्नति करतीहैं। देखिये, भगवती जानकीजी जब अनुसूयाजीसे मिलीहैं तो इसी पातिव्रतकी शिक्षा उन्होंने जानकीजीको दीहै । उपसंहारमें मेरी प्रार्थना मारवाडी समाजसे है, कि जिस प्रकार व्यापारकुशलता दानवीरता आदि उत्तम २ गुण आपमें हैं उसी प्रकार स्त्रीस्वातन्त्र्य दोष भी बहुत बढता जाताहै जो अनर्थका मूल है । विवाहादि उत्सवोंके समय निर्लज्जतायुक्त सीठने आदि स्वतन्त्रताकी कुरीतियां जो आपलोगोंमें चलगयींहैं वे एकदम बन्द होजानी चाहियें । निःसन्देह विवाहादि मंगलकार्य आनन्दकी मूर्ति हैं, पर यह कोई नियम नहीं कि स्त्री लोग उस समय मर्यादासे बाहर होजायं । कोई ग्राम्यप्रकृतिवाला मनुष्य भले ही उन अश्लील गानोंसे प्रसन्न हो पर बुद्धिमान् लोगों को उनसे घृणा होती है । जिन स्त्रियोंका धर्म है कि उठने बैठने हँसने बोलने आदि सब व्यापारोंमें परम सभ्यता नम्रता सिधाई और लज्जा ही प्रधान रहै उनके शीलमें धब्बा लगानेवाली उद्धत बातें कभी मान्य तथा प्रशंसनीय नहीं हो सकतीं । दोषोंके अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है अपना अभ्युदय चाहनेवाले निर्दोष बननेका यत्न करैं और ईश्वर इस कार्यमें उनकी सहायता करै यही प्रार्थना है ।

यहां उत्तम स्त्रियोंके कर्तव्य पर दो श्लोक लिखकर इस लेखको समाप्त करताहूं।

गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि
स्मितं कुलनतभ्रुवामधर एव विश्राम्यति।
वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः
कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति॥ १॥

कुलीन स्त्रियोंकी नेत्रोंकी गति, केवल अपने आंखोंकी छोर तक, हँसना होठोंतक, बोलना केवल अपने पतिके सुननेयोग्य अर्थात् इतने धीरे बोलना कि पति तो सुनसकै और कोई न सुनपावे, कोप कदाचित् आभीजाय तो अतिथि की भाँति उसी समय चलाजाय अथवा देख भी न पड़े मनहीमें गुप्त होजाय।

पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो
निजावासादन्यद्भवनमपरद्वीपतुलितम्।
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः
पुमानन्यः कान्ताद्विधुरिव चतुर्थीसमुदितः॥ २॥

कुलीन स्त्रियोंको अपने घरसे बाहर पैर रखना मानो साँपकी फनपर पैररखना है। अपने घरसे दूसरेके घरपर जाना दूसरे टापूमें जानेके समान है। उनका बोलना तौ कोई सुनही नहीं सकता जैसा कृपणके धनको कोई नहीं देखसकता। कुलललनाको दूसरे मनुष्यका देखना भादों मासकी चतुर्थीके चाँदको देखनेके समान है। आशय यह है कि कुलीन पतिव्रता स्त्री दूसरे पुरुषको देखना भी पाप मानती है।

॥ इति ॥

हरिदत्तशर्म्मा कूर्माचलीय.

विधवाधर्म।

सनातन धर्मके सिद्धान्तोंके अनुसार स्त्री और पुरुष उसी भगवान्के देहसे साथ ही उत्पन्न हुए माने गये हैं जैसा कि महर्षि मनुने कहा है–

"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥"

वह परमेश्वर अपने देहके दो विभाग करके आधेसे पुरुष होगया आधे से स्त्री, और उसी स्त्रीमें विराट्की सृष्टि की। मनुष्यकी विचित्र बुद्धिको देखकर इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अवश्य वह ईश्वरहीके देहसे उत्पन्न हुआ है। जब वह आदि सृष्टिमें ईश्वरसे उत्पन्न हुआ था उस समयके पुरुष और स्त्रीमें वैसे ही गुण थे इसमें सन्देह नहीं, पर अब कालक्रमसे बहुत ही अन्तर पड़गया है। इस समयमें क्या स्त्री क्या पुरुष दोनों ही अपने अपने कर्मोंसे विमुख होगये हैं यहां तक कि वह अपनेको भूलही गये हैं। स्त्रियोंका मुख्य धर्म सती होना था वह बन्द होगया है इसका परिणाम भी वैसाही अनिष्ट हुआ है। आजकल जो विधवाओंकी संख्या बढ़तीजाती है इसका कारण यही है कि वह यथार्थ रीतिसे अपने धर्मपर आरूढ नहीं हैं इससे संक्षिप्त कर्तव्य (विधवाओं) के विषयमें लिखा जाता है–रामायण आदि इतिहासोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि–

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यंति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा लोके तस्मिञ्छासति पार्थिवे॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समयमें कोई भी मनुष्य पुत्रका मरना नहीं देखते थे और कोई भी स्त्री विधवा नहीं होती थी। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जब अपने अपने धर्ममें आरूढ रहते तो अकालमृत्यु आदि उनकी नहीं होने पाती फिर विधवा क्यों कर हों। विधवा होना बडे भारी पापोंका परिणाम है। कौन ऐसा पाषाणहृदय मनुष्य होगा जो इन बाल-विधवाओंका दुःख देख, दुःखसन्तप्त न होजावे। पर क्या कियाजावे उनके

दुःखसे सहानुभूति करनेके सिवाय और चारा ही क्या है। यही दुःख विचारकर हमारे महात्मा मुनियोंने सती होनेकी प्रथा रक्खी थी। यद्यपि उस समय यह कर्म बड़े साहसका समझा जाता था परन्तु जो आर्यललनाएं पतिदेवतायें कही जाती हैं उनका सती होना ही परम सौभाग्य और प्रशंसनीय कर्म था और है। उन आदर्श रमणियोंका यह स्वभाव ही होगया था कि वह पतिके न रहनेसे संसारको शून्य समझतीं और क्षणमात्र भी वैधव्य दुःखको भोगने नहीं पातीं थीं। धन्य वह समय था जब भारतवर्षमें घर घर पतिव्रतादेवी—वह गृहलक्ष्मी गृहस्थाश्रमको अलंकृत किये थीं। पर अब तो महा शोचनीय दृश्य उपस्थित होगया है, तुलसीदासजीका कहना कि "विधवा होय पाय तरुणाई" प्रत्येक स्थानमें प्रत्यक्ष होरहा है। यद्यपि इस समय भी बहुतसे परदुःखकातर महाशय विधवाओंकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर उनके कष्ट निवारणके उपाय सोचते हैं पर उनके विचार नये ढङ्गके होनेसे वह विधवाओंके दुःखोंको शान्त तो नहीं करसकते बल्कि उनसे अधिक दुःख होनेकी संभावना है, इससे जो उपाय महात्मा मुनियोंने उनके लिये सोचा है वही ठीक है। मन्वादि महर्षियोंको अपनी सन्तानोंसे जैसी सच्ची सहानुभूति होसकती है उसीके अनुसार उन्होंने विधवाओंका कर्तव्य स्वयं कहदिया है और उसीके अनुसार उनका अभ्युदय होसकता है। बहुतसे महाशय विधवाओंका पक्षपात करतेहुए यह कह उठते हैं कि धर्मशास्त्र बनानेवाले मुनि पुरुष हैं यदि किन्हीं स्त्रियोंसे पूछा जाता तो वे कभी ऐसी सम्मति नहीं देसकतीं कि जो पुरुष अपनी समझसे उनके लिये देगये हैं। यह विना विचार कीहुई बात है जरा बुद्धिमानीके साथ विचारिये कि स्त्रियोंसे तो इस विषयमें परामर्श करनेकी बात ही नहीं है। क्या रोगीसे पूछकर उसकी इच्छासे औषधि देनी होती है? क्या रोगीको यह उचित नहीं है कि अपनी जानमालका भरोसा वह धार्मिक उत्तम वैद्यके ऊपर छोड दे? अवश्य ही उसको किसी माहत्मा परोपकारी वैद्यका ही आश्रय लेना पडेगा। इसीसे हमारे पूर्वपुरुष श्रीमन्वादि महर्षियोंने अपनी सन्तान विधवा-

ओंके लिये जो उपदेश किया है वह यहां हिन्दू कुलीन विधवाओंके लिये यथावत् लिखा जाता है। जो विधवाबन्धु बनकर विषयवासनाकी शान्ति द्वारा उनका दुःख दूर करना चाहते हैं उनको समझना चाहिये कि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धयेत्।

कामकी सेवासे कभी कामकी तृप्ति नहीं होसकती, बल्कि घृतकी आहुतिसे जैसा अग्नि प्रदीप्त होकर और भी प्रचण्ड होजाताहै इसी प्रकार इन्द्रियोंकी सेवासे कभी तृप्ति नहीं होती, होतीहै तो केवल शान्तिसे होतीहै। इसीसे स्त्री जातिको सोचना चाहिये कि हम परमेश्वरके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुई हैं, हममें वह दिव्यगुण सब वर्तमान हैं जो हमारे सृजनेवालेमें हैं। स्त्री माया स्वरूप है उसको अपनी शक्तिका भली भाँति ज्ञान हो तो वह ऐसे ऐसे उत्तम कर्म करसकतीहै कि बड़े बड़े महात्माओंको भी वह कर्म कठिन मालूम पड़ें। मनुजीने स्त्रियोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेकी शिक्षा करके उनकी तुलना बड़े मुनीश्वर ऊर्ध्वरेताओंके साथ कीहै।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम्॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्राऽपि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

अर्थात् हजारों कुमार ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म न करने (पुत्रोंको उत्पन्न न करने) पर भी स्वर्गको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार पतिके मर जाने पर पतिव्रता स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत करके पुत्रोंके बिना भी स्वर्गको जातीहै। अब विधवाओंका कर्तव्य संक्षिप्त रीतिसे लिखतेहैं।

विधवा कर्तव्यम् विष्णुः-

"मृते भर्तरि ब्रह्मचर्य्यं तदन्वारोहणं वा" ब्रह्मचर्यं मैथुनवर्जनं ताम्बूलादि वर्जनञ्च यथाह प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्। यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्।"

विष्णुस्मृतिमें लिखाहै कि जिस स्त्रीका पति मरजाय वह अपने पतिके साथ एक चितामें भस्म होजाय, यदि पुत्र विद्यमान हो और कलियुगमें सती होना निषिद्ध समझ कर अनुगमन न करै तो ब्रह्मचर्यव्रतसे रहै। पुरुषका सहवास छोड़देना पान तथा हविष्यान्नभिन्न अन्न तथा निषिद्ध शाक इत्यादि छोड़देना ब्रह्मचर्य कहाजाताहै प्रचेता मुनि कहतेहैं-पानखाना, काजल वा सुर्मा लगाना, कांसीके बर्तनमें भोजन करना, इतनी चीज संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा छोड़देवें किसीका मत है कि अंजनका निषेध वैद्यक शास्त्रमें कहेहुए अंजनसे है।

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन।
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्॥

शुद्धितत्त्व।

विधवाको नित्य एक समयमें एक ही अन्नका भोजन करना चाहिये, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, चाहै तो मध्याह्नमें हविष्यान्नका भोजन करै, अथवा नक्तव्रत करै। यदि विधवा चारपाईमें सोवे तो वह अपने पतिको स्वर्गादि शुभगतिसे गिरादेतीहै।

गन्धद्रव्यस्य संयोगो नैव कार्यस्तया पुनः।
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः॥

सुगन्धिपुष्प तैल इत्यादि गन्धद्रव्यका संयोग विधवा कभी न करै, पुत्र पौत्रादि तर्पण करनेवाला न हो तो विधवा स्वयं अपने पतिका तर्पण नित्य कियाकरै।

वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत्।
स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहं मुहुः॥

वैशाख कार्तिक तथा माघमासमें खास खास नियमोंको करै जो कार्तिकमाहात्म्यादि ग्रन्थोंमें लिखेहुएहैं। स्नान, दान, तीर्थयात्रा क्षण-क्षणमें विष्णुभगवान्का नाम जपै वा स्मरण करै।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके कृष्णजन्मखण्ड ८३ अध्यायमें लिखाहै—

ब्राह्मणी पुत्रहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा।
एकभक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा॥

जिस विधवा ब्राह्मणीके पुत्र न हो वह निष्काम भक्ति करै। दिनके अन्त भागमें हविष्यान्नका भोजन करै। यहां ब्राह्मणीपद उपलक्षण है इससे क्षत्रिय और वैश्यवर्णकी स्त्रियोंका भी यही नियमहै।

न धत्ते दिव्यवस्त्रं च गन्धद्रव्यं सुतैलकम्।
स्रजश्च चन्दनश्चैव शंखसिन्दूरभूषणम्॥

सुन्दर चमकदार वहुमूल्य वस्त्र न पहिरै इत्र कस्तूरी आदि तथा चमेली आदि के तेलका उपयोग न करे। पुष्पमाला चन्दन शंख सिन्दूर और आभूषणों को धारण न करै।

त्यक्ता मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत्।
नारायणस्य सेवां च कुरुते नित्यमेव च॥

मैले कुचैले कपड़े पहिरै। सदा विष्णुका स्मरण तथा उन्हीं की सेवा करै

तन्नामोच्चारणं शश्वत्कुरुतेऽनन्यभक्तितः।
पुत्रतुल्यश्च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः॥

केवल विष्णुकी भक्ति पूर्वक सदा हे कृष्ण! हे वासुदेव! इत्यादि उनके नामोंका स्मरण करै। संसारके पुरुष जो अपनेसे बड़े हों उनको पिता-

समान, बराबरवालोंको भ्रातासमान तथा अपनेसे छोटी अवस्थावालोंको पुत्रकी समान देखै।

मिष्टान्नं च न भुङ्क्ते सा न कुर्याद्विभवं व्रजम्।
एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने॥

मीठे तथा उत्तम रसवाली चीज विधवाको नहीं खानी चाहिये ऐश्वर्यका सामान भी कभी नहीं करना चाहिये। एकादशी तथा श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन निराहार व्रत रहना चाहिये।

श्रीरामस्य नवम्यां च शिवरात्रौ पवित्रया।
अघोरायां च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरागयोः॥

रामनवमी (चैत्रशुक्ल ९) शिवरात्रि (फाल्गुणकृष्ण १४) 'भाद्रपद्की कृष्णचतुर्दशी, आश्विनमासकी अमावास्या तथा चन्द्र और सूर्यग्रहणके दिन विधवा स्त्री उपवास करै।

भृष्टद्रव्यं परित्याज्यं भुज्यतेऽपरमेव च।
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥
संन्यासिनां च गोमांसं सुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्॥

भाड़का भूँजा अन्न नहीं खाना चाहिये शुद्ध हो तो खासकतीहै परन्तु पानखाना तो वेदमें विधवा संन्यासी और ब्रह्मचारियोंके लिये गोमांस तुल्य समझागयाहै।

रक्तशाकं मसूरश्च जम्बीरं पर्णमेव च।
अलाबूर्वर्तुलाकारा वर्जनीया च तैरपि॥

लालरंगका शाक गाजर मूली आदि, मसूरकी दाल जम्बीर नीबू पलाशकापत्र गोल तूंबी (शाक) इतनी चीज छोड़नी चाहिये।

पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्।
यान आरोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत्॥

विधवा यदि चारपाईमें सोवे तो अपने पतिकी अधोगति करतीहै यदि सवारीमें चढकर कहीं जावे तो नरकमें जातीहै।

न कुर्यात्केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च।
केशवेणीजटारूपं तत्क्षौरं तीर्थकं विना॥

सुगन्धित तैल लगाना, धूप आदि धूनी देना इत्यादि बालोंका संस्कार तथा चन्दन उबटन इत्यादि से देहका संस्कार विधवा न करै बालोंकी लट न बाँधे तीर्थ यात्राको छोड़कर बालोंको न मुड़ावे।

तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत नहि पश्यति दर्पणम्।
मुखञ्च परपुंसां च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्॥
नर्तकं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम्॥

विधवा तेलका उबटन न करै। आइना न देखै दूसरे मनुष्योंका मुख न देखै। नाच तमाशा इत्यादि उतसवोंको भी न देखै। नाचनेवाले गाने वाले तथा सुन्दर पुरुषको कभी न देखै।

मनु कहतेहैं—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितञ्च न लंघयेत्॥

पिता अथवा ज्येष्ठ भ्राता कन्याका विवाह जिसके साथ करादें वह विवाहिता कन्या जब तक उसका पति जीतारहै उसकी सेवा करै और उस के मरजाने पर उसका उल्लंघन (व्यभिचारादिसे) न करै।

इस प्रकार अनेक धर्मशास्त्र पुराण इतिहासोंका एक स्वरसे उपदेश है कि स्त्रीका जब तक पति रहताहै उसको देवता तुल्य मानकर देह वाणी और मनसे उसकी सेवा करै, उसके मरने के पीछे सती होजाय। आज-कल कलिकाल है मनुष्योंके अन्तः करण दुर्बल होगये और होते जाते हैं इसमें सती होनेका साहस स्त्रियें न करसकेंगी इससे मुनियोंने ब्रह्मच-र्य व्रतका पालन करना उनके लिये श्रेष्ठ कहा है। दुर्भाग्यसे यदि

स्त्रियां इस व्रतको न पालसकें तो उनके लिये महा अनिष्ट है, क्योंकि व्यभिचार दोष ऐसा है कि मनसे भी यदि स्त्री पर पुरुषका चिन्तन करै तो उसे प्रायश्चित्त करना पडताहै फिर देह सम्बन्धका तो क्या कहना है।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥ मनुः॥

जो स्त्री कामवासना अथवा सन्तानके लोभसे अपने पतिका अनादर करके परपुरुषका सङ्ग करतीहै इस लोकमें कुलांगनाओंके समाजमें उस की वडी निन्दा होती है और इस संसार को छोडकर पतिव्रताओं को स्वर्गमें जो पतिलोक मिलताहै वह कभी व्यभिचारिणियोंको नहीं मिल-सकता। क्या कोई भी बुद्धिमती कुलललना ऐसे तुच्छ व्यभिचारकर्म को मनमें भी लासकतीहै? कभी नहीं। यह भारतवर्ष वडी पवित्रभूमि है, इसमें थोडा भी पुण्य करने से वहुत वढजाताहै, जो पुण्यशीला रमणि यां इस लोकमें केवल अपने शीलकी रक्षा कर सकती हैं—एक पातिव्रत धर्मकी ही सुदृढ उपासना कर सकती हैं उनके लिये किसी वातकी कमी नहीं है। देवता लोग भी पतिव्रताओंकी प्रशंसा करते हुए उनकी इच्छा ओंको पूरी करतेहैं। यदि दुर्भाग्यवश स्त्री लोग अपना आचरण न सुधार सकें—यदि क्षणिक कामवासनासे अपने शीलकी रक्षा न करसकें तो इस कर्मभूमिमें पाप भी प्रति दिन वढते वढते ऐसा भयंकर रूप धारण करतेहैं कि अनेक जन्मोंतक उनका दुष्ट परिणाम नरकादि दुःख भोगना पडता है।

क्या मनुष्य क्या स्त्री जितना जितना विचारसे चलते हैं उतनीही उतनी उनकी वुद्धि भी सुधरती जातीहै और हमारे धर्मशास्त्र पुराणोंमें कही हुई शिक्षा उनको हित जान-पडतीहै। जव वह उन वातोंका आच-रण करने लगतेहैं तो उन पुण्यकर्मोंके प्रभावसे एक अद्वितीय आनन्द मनमें होता जाताहै। जिसके आगे संसारके कामसुख आदि अति तुच्छ

मालूम पडनें लगतेहैं । इससे भारतवर्षकी स्त्रियोंको चाहिये कि वह शास्त्रोक्त रीतिसे अपने आह्निक (नित्यकर्म) के अनुसार चलैं तो बडा अपूर्व बल उनको प्राप्त होगा जिससे किसी बातकी भी कमी उनकों नहीं रहजावेगी । हमारे पुराण इतिहासोंमें सीता, सावित्री, दमयन्ती, गान्धारी आदि अनेक पतिव्रताओंके उपाख्यान इसी वास्ते लिखे हुएहैं कि सभी स्त्रियां उनको विचारकर आचरण करैं तो स्वयं देखैंगी कि कैसा अपूर्व आनन्द और बल उनको प्राप्त होताहै । इसी बलके लाभके लिये व्यास महर्षि ने इतने इतिहास रचेहैं । हमारी स्त्री समाज की उन्नति अपने ही हाथमें है वह चाहैं तो इस समय भी धर्माचरणसे रहकर अपने भावी सन्तानों को ऐसा बनासकतीहैं कि जो सदा धर्मात्मा बलवान् यशस्वी होकर अपना और संसारका उपकार कर सकेंगे ।

॥ इति ॥

हरिदत्तशर्म्मा कूर्माचलीय.

॥ श्रीः ॥

श्रीभगवान्के अवतार और लीलाओंका तत्त्व।

दोहा--शीश मुकुट माथे तिलक, कुण्डल श्रवण मझार।
कर मुरली वनमाल उर, भक्तन प्राणअधार ॥१॥
राधावर व्रजराज प्रभु, गोपिन जीवनमूल ॥
रसिकविहारी सांवरे, सदा रहो अनुकूल ॥२॥

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवान् कृष्णचन्द्रके चरित्र बडे गूढ विस्तारके साथ भगवान् वेदव्यासजीने निरूपण किये हैं, गीतामें भगवान्की प्रतिज्ञा है कि मैं साधुओंके रक्षा करने दैत्योंको मारने और धर्मके स्थापन करनेके निमित्त युग युगमें अवतार लेता हूं। इस कारण कृष्णावतारमें इन सब प्रतिज्ञाओंका पूर्ण रीतिसे निर्वाह किया है, भगवान्की कोई लीलाभी विना प्रयोजन नहीं है. सबमें गूढ-तत्त्व और ज्ञान भरा हुआ है, यह किसी प्रकार विषय युक्त चरित्र नहीं है. साक्षात् मुक्तिका देनेवाला है, कारण कि जो ग्रन्थ जीवरूप परीक्षित्की मुक्तिके निमित्त वर्णन किया गया है उसमें संसारके विषयोंका निरूपण होना असंभव है। और फिर जगदात्मा शुकदेवजीके मुखसे रागवर्द्धक कथानक कभी निर्गत नहीं हो सकता; इस कारण उन्होंने जो कुछभी कहाहै, वह प्राणियोंके कल्याणके निमित्तही कहा है इसमें कुछभी संदेह नहीं है. पूतनालीलामें यह निरूपण किया है कि देखो जो स्तनोंमें विष लगाय मुझे दूध पिलाने आई उसकी माताकी समान गति की, फिर जो कोई पुष्प फलादिसे भक्तिपूर्वक मेरा अर्चन करते हैं उनकी गतिमें सन्देह क्या है? कालीदमनलीलामें यमुनाकी शुद्धि तथा अहंकाररूपी सर्पका दमन करके यमके भय मिट जानेका उपदेश किया है. अर्थात् गोपिका जो वेदोंके मंत्र हैं ऋचा हैं वे सब ब्रह्मपरत्व ह

उनकी इच्छा कृष्णके साक्षात् करनेकी थी, गोपीरूपजीव भगवान्‌की प्राप्तिके निमित्त यमराजकी भगिनी यमुनामें स्नान करती हैं और अपनी सजाति होनेसे यमुनाकी प्रार्थना करती हैं कि तेरी कृपासे तो यमका भय मिट जायगा तब संसारसे पृथक् होनेपर भगवान्‌का दर्शन होगा, जिस समय प्राणी परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा करता है तब उसको पार्थिव पदार्थ और उसके विकारोंको त्यागना पडता है. यही भगवान् कहते हैं कि जिसपर मेरी कृपा होती है क्रम २ से मैं उसका संसारी धन हरण कर लेताहूं, जिससे कि पंच कोशोंमें प्रथम इसीसे अन्तःकरण आच्छादित है जब गोपिका स्नान करती थीं और ध्यानमें मग्न थीं और जलमें डुबकी लगाये थीं जो कि समाधि थी उसी समय भगवान्‌ने आनकर उनके पार्थिव वस्त्र हरण किये और संसाररूपी वृक्षके ऊपर लटकाय आप उससे ऊंचे स्थित हुए और इच्छा की कि इन गोपिकाओंको पाचों तत्वोंसे पृथक् कर निज रूपकी प्राप्ति कराऊं, जिस समय गोपिका समाधिरूप डुबकीसे वाहर हुईं तब उनको फिर पार्थिव वस्त्रोंकी इच्छा हुई और उन्हींकी खोज करने लगीं, परन्तु जब न दीखे तब ऊर्ध्वदृष्टि करनेसे वस्त्र और वृक्षके शिखरपर कृष्णका दर्शन हुआ और भगवान्‌को पति बनानेके दृढ मनोरथपरभी संसारी आच्छादन वस्त्रही मांगे, तब भक्तोद्धारी श्रीविहारीजीने उनका अपक्व योग जानकर उनको जलतत्वसेभी निकालकर अग्नितत्वमें शोधनकी इच्छा करी, जैसे लिखा है कि "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन[1]" जिस समय भगवान्‌के हठ करनेसे जलसे वाहर आने लगीं, तब हाथोंसे अंग छिपाये वाहर हुईं, भगवान्‌ने यह समझकर कि "अथोदरमन्तरं कुरुते तस्य भयं भवति, द्वितीयाद्वै भयं भवति" इति श्रुतेः । मैं सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हूं मुझसे अन्तर रखना इनके ज्ञानमें हीनता है, इससे इनका अज्ञान दूर करना चाहिये यही विचार कर बोले 'कीनो तुम अपराध भानुको कर जोडो उनके ताईं' नग्न नहानेके अपराधसे प्रायश्चित्त है तुम हाथ जोडो, सूर्यके सन्मुख कर

१ हे अर्जुन! ज्ञानकी अग्निसे सब कर्म दग्ध हो जाते हैं ।

जुडवानेका भाव यह कि "योसावादित्ये पुरुषः सोसावहं खं ब्रह्म" यजुः। यह जो पुरुष सूर्यमें है सो मैं हूं जब गोपिका सूर्योपासनासे शुद्ध होकर प्राण रूपसे ध्यान करने लगीं तब आपने मुरलीके नादसे प्रबुद्ध कर आकाशसे परे किया जो " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् " है, जब गोपिका इस पदवीको प्राप्त हो पूर्ण योगको प्राप्त हुईं तब यह जानकर कि इनको अब संसारका कोई क्लेश बाधा न देगा यह जीवन्मुक्त हुईं भगवान्ने लोकसंस्थाके निमित्त वस्त्र दे दिये और यहभी कहा शरद्तुम तुमको आत्मारामरूपसे अपना स्वाराज्य प्रदान कर ऐश्वर्यदर्शन कराऊंगा, अब तुम जाकर मेरा भजन करो, यह सुन गोपिका प्रसन्न हो घर गईं, यह लीला सर्वथा जीवका आवरण दूर कर मुक्ति प्राप्त करानेके निमित्त है कुछ विषयसुखकी कथा नहीं है, कारण कि ईश्वर सर्वव्यापी है वह बाहर भीतर सर्व व्याप्त है "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः। फिर वह है कहां नहीं जिसे देखता, इससे ज्ञान देनेके निमित्त है।

औरभी देखो गोपियोंने श्रीकृष्णको अपना पति होनेके निमित्त कात्यायनीका व्रत किया था तौ जब कर्मका फल मिलना शास्त्रसिद्ध है तब गोपियोंको इस कर्मका फल क्यों न मिले, उस कर्मफलप्राप्तिमें एक बात यह प्रतिबन्धक थी कि वे नंगी होकर स्नान करती थीं, भगवान्ने यह विचारा कि, यह मूर्ख गोपी नग्न नहानेका दोष न विचार कर जलमें प्रवेश करती हैं, इस कारण इनका व्रत भंग होता है इससे इनको शिक्षा देकर कर्मफलका भागी करना चाहिये इससे कर्मफल देनेको वहां गये और वस्त्र लेकर वृक्षपर चढ गये, इससे एक तौ यह शिक्षा दी कि तुम नंगी होकर स्नान करती हो, यदि कोई वस्त्र उठाय ले जाय तौ कैसा हो किस प्रकार घर जा सकोगी, दूसरे शास्त्रीय शिक्षा दी कि नग्न होनेसे अपराध होता है, फिर जब गोपियोंने सर्वस्वात्मनिवेदन किया तब भगवान् उनपर बडे प्रसन्न हुए, कारण कि सर्वस्वात्मनिवेदन और शुद्ध अनुराग यही भगवत्प्राप्तिका सोपानस्वरूप है, सर्वस्वरूप लाज स्त्रियोंने प्रदान की इससे एक तौ प्रेमयुक्त कर्मकाण्डका अनुष्ठान पूरा हुवा, दूसरा सर्वात्मनिवेदन नवम भक्तिका अनुष्ठान पूरा हुआ, गोपियोंने उनको पतिभावसे

भजा इस कारण भगवान्ने उनकी अभिलाषा पूर्ण की, इससे उपदेश है कि प्रथम जीवकी रुचि कर्मकी ओर होनी चाहिये, और यदि उसके साथ भगवत्प्रेम हो तौ भगवान् उसकी च्युतिको शोधन कर अनुष्ठान पूरा कर देते हैं, जिससे अन्तःकरण निर्मल होकर, यह जीव भगवान्को सर्वस्व अर्पण करता है, तब इसको सब कामनाकी प्राप्ति होती है "सोऽश्नुते सर्वान् कामान्" "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" गीताके अनुसार जो जैसी भावना करतेहैं मैंभी उसी प्रकार उनको भजताहूं। तौ जिनके रोममें कोटि २ ब्रह्माण्ड हैं तौ उनमें एक ब्रह्माण्डके लघु खण्डके नियममें ईश्वर तौ बद्ध नहीं हो सक्ता, केवल अभिलाषानुसार फल देते हैं, नन्द यशोदा वसुदेव देवकीने पुत्ररूपसे इच्छा की वैसेही उनको फल दिया, यद्यपि गोपियोंको भगवत्प्राप्ति कामसम्बद्ध है परन्तु यह काम बन्धनजनक नहीं है, यथा "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते। भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते॥" मुझमें मन लगानेवालोंका काम कामके निमित्त नहीं होता किन्तु औटाये वा भुने धानोंकी समान फिर उनके अंकुर नहीं होते और जिसका सर्वस्व आत्मनिवेदनरूप नहीं है उससे स्वीकार नहीं करते जैसे माथुरियोंकी स्त्रियोंको बिदा कर दिया और आत्मसमर्पणवाली गोपियोंको स्वीकार किया, माथुरियोंकी स्त्री लौट गईं परन्तु जब रासमें आई गोपियोंको लौटनेको कहा तब तौ वे प्राण त्यागन करनेमें तत्पर हुईं इससे वस्त्रहरण भक्ति और शिक्षाके निमित्त है।

जो उन्हें अवतार नहीं मानकर यह कामलीलाही मानते हैं उनको यह विचार करना चाहिये कि यह लीला छठे वर्षमें की है, जब कामभाव प्रगट नहीं हो सकता और सातवें वर्षमें गोवर्द्धन धारण किया है, जैसा भागवतमें लिखा है "क सप्तहायनो बालः" इत्यादि इससे निर्भ्रान्त होकर भक्ति करनी चाहिये, वह प्रभु हैं, अखण्ड ब्रह्म हैं, ऐश्वर्यसे चाहे जैसा रूप धारण कर लेते हैं, गोवर्द्धन धारणसे इन्द्रका मद चूर्ण और अपनी अर्चाकी प्रवृत्ति करी, वरुणलोकसे नन्दजीको लाये इत्यादि जो कुछ लीला उनमें अनेक कारण लगे हुए हैं, इसी प्रकार रहस्य लीला है, जिसका

नामही रहस्य है, उसका गूढ भेद सर्व साधारण कैसे जान सकते हैं, प्रायः वेद शास्त्र पुराण सवहीमें रहस्य होता है, इसी कारण भाष्यादि और बृहदारण्यकादिमें "साङ्गाः सरहस्याः" ऐसे पद देखनेमें आते हैं, इस समय गुरुजनोंसे ग्रन्थोंको न पढकर भाषामात्रसे ग्रन्थोंका मर्म जानना चाहते हैं और आस्तिकबुद्धिसे पूछनेमें लजाते हैं। प्रसन्न होना तौ दूर रहा उलटे सन्देहमें पड जाते हैं, इससे ग्रन्थका तात्पर्य ध्यानमें नहीं आता है और इस समय देखा देखी प्रायः लोग टीका करनेसेही अपनेको परम कृतार्थ मानने लगते हैं, चाहे स्वयं न भी पढे हों परन्तु किसीसे कुछ देदिवाय उलटा सुलटा नाममात्रका ग्रन्थ बनाय नाम तौ करही लेते हैं कि हमनेभी ग्रन्थ बना लिया, फिर ऐसे ग्रन्थोंसे क्या लाभ हो सकता है, जब टीकाकारही ऐसे हैं और लेने प्रकाश करनेवालेभी नाममात्रका ग्रन्थ चाहिये इतनेपरही संतुष्ट होनेवाले हैं, तब ग्रन्थ का तात्पर्य कैसे ध्यानमें आ सकता है? महर्षि व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अधिकारिभेदसे नव रसोंसे पूर्ण रचा है और शृंगार रसमें श्रीमद्भागवतका रहस्य निरूपण किया है, रामावतारमें अनेक स्त्रियोंका मोहित होना, नारायणसे अप्सराओंका पतिवरणका वरदान मांगना तथा सम्पूर्ण वेदकी ऋचाओंकी श्रीकृष्णकी सेवाके निमित्त प्रगट होना और उन्हीमें चित्तकी वृत्ति लगाना यह बात श्रीमद्भागवत तथा दूसरे पुराणोंसे भी स्पष्ट है, रहस्यपंचाध्यायीमें कामदेवका जय निरूपण किया है स्वयं श्रीधरस्वामी कहते हैं कि यह लीला कामदेवके दर्प चूर्ण करनेको की है। यथा-"दर्पकन्दर्पदर्पहा। कन्दर्पदर्पविजेतृत्वप्रतीतेः। साक्षान्मन्मथमन्मथः। रासक्रीडा विडम्बनं कामजयख्यापनायेति विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति" एक समय कामदेवने सब देवताओंको जय करके बडा अभिमान किया और यह विचारा कि चलकर नारायणकोभी जय करना चाहिये, तब वैकुण्ठको चला, मार्गमें नारदजी मिले, कामदेवसे बोले कहां चले? कामदेवने कहा, त्रिलोकीको अपने अधीन कर अब भगवानको जीतनेकी इच्छासे वैकुण्ठको जाताहूं, नारदजी बोले, इस समय तौ नारायण अवतार वृन्दावनमें है और उनके जयका समयभी उत्तम

है, कारण कि वृन्दावन प्रेमका कोट है, इसमें अनेक छन्द रचनाकी झाडी हैं, जिनमें सबकेही मन उलझ जाते हैं, शुद्ध तत्वकी खाई है, छः शास्त्रोंका परिकोट है, अठारह पुराणोंके मध्यके बुर्ज हैं; चार वेद चार द्वार हैं, भक्ति शास्त्र शतघ्नी और हरिभक्त वाणधारी वीर हैं, नास्तिकरूप शत्रुओंके मारनेको युक्तिरूप अस्त्र हैं कृष्णकृपा हरिजनसेवा रूप दूसरे द्वार पुण्य द्वारपाल हैं, यहां पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, पापियोंकी गति नहीं है, कृष्णके प्रेमी जन निवास करतेहैं, इसके मध्य प्रिया प्रीतमका निकुंज प्रासाद जहां श्रीकृष्ण राधिका नित्य विराजते हैं भगवद्गीता और एकादश इसके रखवारे हैं, जहां प्रत्यक्ष कहा है "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"। कामदेवने कहा, इस प्रकारके कृष्णको जय करना कितनी वात है, यह नारदजीसे कह कामदेव चला सन्ध्या समय वृन्दावनमें श्रीकृष्णका दर्शन किया कि मोर मुकुट धारे, कानोंमें मकराकृत कुण्डल, करमें मुरली, गलेमें वनमाल धारे गौओंके पीछे आ रहे हैं।

जिस समय व्रजके निकट आये उस समय मुरलीकी धुनि सुनतेही सम्पूर्ण व्रजवासी कोई द्वारपै, कोई अटारीपै, कोई छज्जे पर, कोई छतोंपर कृष्णका दर्शन करनेको आई। भगवान्भी कृपादृष्टिसे उनकी ओर देखते वतराते चले, यह देख कामदेवने कहा, इनका जीतना कौन वडी वात है और उसी समय श्रीकृष्णके निकट जाय कहा, महाराज! मेरी आपसे युद्ध करनेकी इच्छा है। भगवान उसका गर्व जानकर बोले, अवश्य हम तेरी शूरता देखेंगे, कहो वनमें वा किलेमें कहां युद्ध करोगे, कामदेवने कहा महाराज वृन्दावनमें इन्हीं गोपिकाओंके समूहके मध्यमें आपसे युद्ध करूंगा, भगवान्ने स्वीकार किया और कामदेवके बलवर्द्धक शरत्पूर्णिमामें सोलहसहस्र गोपियोंके मध्यमेंभी उनको ज्ञान देने लगे तब कामदेवने कहा, महाराज! यों नहीं मानूंगा, आप इनके संग नृत्य विहारादि करो यदि स्पर्शादिसे आप वशीभूत न हुए तौ जानूंगा, तव भगवान्ने स्वीकार कर रासविलास किया और गोपिकाओंमें अभिमान जान एक गोपीको साथले अंतर्ध्यान हुए, फिर उसेभी अभिमानवती जान

त्यागन किया फिर जब गोपिकाओंने अनेक विलाप कर उन्हींकी लीला करी तब आपने प्रगट हो उनके प्राण बचाये तथा कामका मद चूर्ण किया। उस स्थलमें शुकदेवजीने दो पद कहे हैं "तासामाविरभूच्छौरिः" और "साक्षान्मन्मथमन्मथः" अर्थात् उनके मध्यमें शूरसेनके पोते कामका मद चूर्ण करनेवाले प्रगट हुए, यहां नन्दकुमार न कहा किन्तु शूरता करनेसे दादाका नाम उल्लेख किया और कामका मद चूर्ण करनेवालाभी लिखा और यहां यदि रासलीलाके विहारपर शंका है तौ यह हृदयमें भक्ति उदय न होनेका कारण है, पूर्णकाम पुरुषोत्तमने केवल जीवोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही अवतार धारण किया है, जिसके श्रवणसे मुक्त मुमुक्षु विषयी सभी प्रकारके जीवोंके चित्त आकर्षित हो जांय यथा भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लो० ३७ "भजते तादृशी क्रीडा यां श्रुत्वा तत्परो भवेत्" वह आत्माराम हैं उनमें विषयासक्तिकी सम्भावना नहीं है, यथा "आत्मारामोऽप्यरीरमत्, रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः" भागवते। भगवान्‌की लीलात्मक प्रवृत्ति रागद्वेषात्मक विषयवासनाकी गणनामें नहीं हो सकती कारण कि वह अलौकिक गुणसम्पन्न हैं और यदि उनकी प्रवृत्तिको विषयवासनायुक्त मानें तौ सृष्टिकी उत्पत्ति आदिभी परब्रह्ममें एक प्रकारकी विषयवासना होगी, यदि कहो कि यह अनुमान जीवमें घट सकता है ईश्वरमें नहीं तौ यह जानो कि अवतार साक्षात् ब्रह्मस्वरूपही है और विषयवासनाजन्य कर्मोंकीही पाप पुण्य संज्ञा है और जब प्रभुमें विषयवासना नहीं तौ पापपुण्यका सम्भव नहीं हो सकता, गीतायां "यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥" अर्थात् जिसके सब संकल्प कामनासे रहित हैं वह ज्ञानाग्निसे कर्म दग्ध कर चुके हैं उन्हींको पंडित कहा जाता है "कृत्वापि न निबद्ध्यते" गीता। वह सब कुछ करकेभी कर्ममें लिप्त नहीं होते, इसीसे आगे शुकदेवजी कहते हैं, अनीश्वर इसको मनसेभी न करे, कारण कि वह बँधेगा, ईश्वर विषयवासनारहित है और भगवान्‌ने गोपियोंको इस लीलामें नियुक्त नहीं किया किन्तु ज्ञान पूर्वक उनको समझाया परन्तु उनकी उत्कट विहार इच्छा देख मनोरथ पूर्ण किये,

किसी रीतिसे प्रभुके सन्मुख होना निन्दित कर्म नहीं है, प्रत्युत मोक्षजनक है। कंसने भयसेही मुक्ति पाई इत्यादि और गोपियोंको साधारण गोप-कन्या समझकर शंकित पुरुष शंकायुक्त प्रश्न करते हैं किन्तु गोपी साधारण गोपी नहीं वेदकी श्रुति हैं और इन्होंने पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तमके संग विहार करनेके निमित्तही गोपीरूप धारण किया है, इससे इनका शुद्धानुरागपूर्वक भगवान्में अनुरक्त होना और उनपर पतिभाव करके उनके संग विहार करना दूषण नहीं किन्तु भूषण है तथा नाना गोपी भगवच्छक्तिरूप हैं और जब कि पुराणादिमें वेद मूर्तिमान् लिखे हुए हैं तब श्रुतियोंके मूर्तिमान् होनेमें क्या आश्चर्य है? तथा अक्रूरने यमुनामें समस्त शक्तियोंसे सेव्यमान भगवान्का दर्शन किया और अनेक गोपी देवी हैं जिन्होंने प्रभुकी लीलाके निमित्तही गोपीस्वरूप धारण किया है। स्कं० १० श्लो० २३ "वसुदेवगृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः। जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥" अर्थात् वसुदेवगृहमें साक्षात् भगवान् जन्म लेंगे उनकी प्रीतिके निमित्त देवियेंभी जन्म लें। इससे गोपी साधारण गोपी नहीं किन्तु दिव्यदेवी तथा शक्ति हैं। इससे यही फल निकला कि न तौ प्रभुने उनको विहारमें नियुक्त किया और न उनका मनोरथ पूर्ण करना अनुचितही हुआ, कारण कि भगवान् कल्पवृक्ष हैं और न ये गोपकन्या मानुषी हैं किन्तु श्रुति शक्ति और देवी हैं और अवतारोंके वेही आचरण कर्तव्य होते हैं जो उन्होंने कर्तव्य योग किये हैं। जो आचरण दुःसाध्य तथा मनुष्य शास्त्रसे वाह्य विदित हों वह जीवको कभीभी कर्तव्य नहीं हैं। जैसे भूमिके भार हरणमें यादवकुलसंहार शाम्बशापादि, दुःसाध्य पर्वतधारण, विश्वरूप दर्शनादि अर्थात् जो प्रभुके उपदेश हैं वेही धर्म हैं, उपदेशके विरुद्ध करनेमें जीवका कल्याण नहीं है। अवतारोंमें ऐश्वर्य और मानुष दोनों भाव मिले रहते हैं सो मानुषभाव प्रधानका अनुसरण हो सकता है और ऐश्वर्य प्रधान जीवको दुःसाध्य है और कृष्णलीलामें वात २ में ऐश्वर्य प्रधान है इससे जीवको अनुकरण करनेकी इच्छाभी न करनी चाहिये, गोपियोंका प्रेम भगवान्में अद्वितीय था और काम उनका भगवद्भक्तिविषयक था ऐसा भगवद्विषयक प्रेम परम प्रशंसनीय है तथा वह उनका पूर्ण माहात्म्यभी

जानती थीं "अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्" भागवत। कि आप सब देह-धारियोंके अंतरात्मा हो, तथा जिस समय वंशीनाद सुन प्रभुके समीप गोपियां उपस्थित हुईं तब भगवान्‌ने कामांशके विषयमें असंतोषपूर्वक उपदेश किया और अनुरागके विषयमें सन्तोष प्रगट किया परन्तु जब उनकी अत्यन्त व्याकुलता देखी तब अनुरागको कामसे उत्कट समझ और कामको अनुरागरूपसे परिणत देख उनके संग क्रीडा की और उनका कामांश अनुरागरूपसे परिणत हो गया, यह दोनों लीला एकसी हैं जब चीरहरनमें "भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः" भगवान्‌ने उनका शुद्ध भाव देखा तब वरदान दिया कि अब जाओ तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, और इस लीलामें उनके किंचित् काम अभिमानादि शेष थे वहभी दूर हो गये और फिर उनको नीतिका उपदेश किया जब शुद्धानुराग रहा भगवान्‌ने दिव्य रासक्रीडाका प्रादुर्भाव किया और वहांसे शुद्धानु-रागमय लीला चली हैं, इसी कारण देवताओंने भेरी बजाई, पुष्पवृष्टि कर गान किया और इसी प्रकरणमें शुकदेवजीने उनको स्त्री रत्न कहा है, इस कारणसे शुद्धानुराग होनेसे गोपी प्रेमिमात्रकी शिरोधार्य हुईं,जैसे एक दीपसे सहस्र दीप बालकर वह वैसाही रहता है इसी प्रकार भगवान् प्रकट स्वरूप होकरभी पूर्णही रहते हैं, उनकी लीलामें शंका न करके वह चरित्र सुनना चाहिये। औरभी प्रकृति पुरुष आदिका जो आशय इनमें वर्तता है सो श्लोकार्थमें लिखते जांयगे। रास तीनों प्रकारका होता है, कायिक, मानसिक, वाचिक। प्रथम अध्यायमें "वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे" से मानसिक रास, दूसरे तीसरे अध्यायमें वाचिक, चौथे पांचवेंमें कायिक रास है। रासके समय कुमारावस्थाहीमें किशोरावस्थाका प्रादुर्भाव हुआ था, विष्णुपुराणमेंभी कहा है "सोऽपि कैशोरिकवयो मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः॥" शृंगारकी शोभा किशोर अवस्थासेही है इस कारण किशोरावस्था मानकर रास किया। सात वर्षकी अवस्थाहीमें कार्तिकी अमावास्याको दीपदान, प्रतिपदाको गोवर्द्धन पूजा, दशमीको गोविन्दाभिषेक, एकादशीको नन्दव्रत द्वादशीको वरुणलो-कगमन, त्रयोदशीको वैकुण्ठदर्शन, फिर अष्टम वर्षमें रासलीला करी, यह

रास आकाश, पाताल, भूलोक, विराट् और सत्पुरुषोंके मध्यमें निरन्तर होता रहता है, पांच अध्यायमें यह पूर्ण करनेसे पंच महाभूतसे मानो पृथक् करना है और यही पंचाध्यायी नहीं भागवतमें औरभी कई पंचाध्यायी हैं, चतुर्थमें बालपंचाध्यायी है, जिसमें ध्रुवका उपाख्यान है, फिर पुरंजनाख्यानकी अध्यात्मपंचाध्यायी, फिर पंचममें भूगोलपंचाध्यायी, सप्तममें वर्णाश्रमके विभागनिरूपणकी कर्मपंचाध्यायी, एकादशमें ज्ञानपंचाध्यायी, दशममें शृंगारनिरूपणकी यह रासपंचाध्यायी कही है, यदि कहो कि इसके पांचही अध्याय क्यों कहे तौ इसका आशय यह कि कामदेवके पांच वाण हैं, जो उन्मादन, तापन, शोषण, स्तंभन और सम्मोहन कहाते हैं, सो प्रत्येक अध्यायमें वही लीला करके पांचों वाण नष्ट कर दिये, अथवा पांच कोश पांच आवरण पंचभूतके विकार दूर करनेको पांच अध्याय कहे हैं, अथवा यह पंचाध्यायी कामनाशक रुद्रके पांच मुखस्वरूप है, अथवा पांच ज्ञान इन्द्रियोंके शोधनके निमित्त पांच अध्याय हैं, अथवा देहमें पांच प्राणकी समान यह पांच अध्याय श्रीमद्भागवतके प्राणरूप हैं, अथवा यह श्रीकृष्णकी प्रभुताईके पांच पंच हैं, श्रीकृष्णचन्द्रने अन्तर्ध्यान होते समय कहा था मेरे पीछे मेरा स्वरूपभूत भागवत ग्रन्थ स्थिर रहेगा सो पहले दूसरे स्कन्ध भगवान्के चरण, तीसरे चौथे जंघा, पंचम कटि, षष्ठ नाभि, सप्तम अष्टम भुजा, नवम स्तन, दशम हृदय, एकादश मुख, द्वादश ललाट है, यह पांच अध्यायही मानो हृदयमें पांच प्राण हैं,सो दशमरूप हृदयमें विराज रहे हैं,इससे यह पंचाध्यायी दशममें कही कविजनोंको काव्यमें नव रसोंका समावेश करना पडता है, यदि ऐसा न किया जाय तौ साहित्यके अनुसार ग्रन्थ दूषित हो जाता है इस कारण व्यासजीने इस पंचाध्यायीमें शृंगार और करुणा दोनों रसोंको पूर्ण रूपसे दरशाया है, फिर अधिकारियोंके भेदसे शृंगारमें अधिक रुचि दिखानेसे उसमेंही पूर्ण उपदेश किया है, शुकदेवजीने राजाको पंचाध्यायीका अधिकारी जानकर इसके पूछे विनाही पंचाध्यायीका उपदेश किया, कारण कि "गूढो तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥" इससे राजाको अधिकारी जानकर उपदेश किया।

किसी भागवतमें 'शुक उवाच' और किसीमें 'बादरायणिरुवाच' लिखा इसका क्रमसे वर्णन करते हैं । जिस प्रकार तोतेका चाखा फल अधिक सुन्दर होता है या पढे तोतेकी ध्वनि सुन्दर विदित होती है, अथवा जितना पढाओ उतना बोले है इसीका इसी भाँति कविताकी मधुरता मनोहरताकी अधिकाई शुकदेवकी वाणीसे होती है, शुकदेवजी प्रिया प्रीतमकी लीलाके द्रष्टा हैं, जैसी देखी है वैसी वर्णन करेंगे । बादरायणि कहनेका आशय यह है कि इस पंचाध्यायीमें श्रीकृष्णकी महामहिमाका वर्णन है, व्यासजी उस तत्वको जानते हैं और कोई नहीं, इस कारण व्यासजीके पुत्रने ऐसा लिखा। बद्रिकाश्रममें तप करनेसेही व्यासजी बादरायण कहे जाते हैं, वह तपस्या कुछ और नहीं थी साक्षात् श्रीकृष्णकी उपासनाही वह तपस्या है । जैसे भगवान् पुरातन पुरुष हैं उसी प्रकार व्यासजी सर्वज्ञ हैं तब वह श्रीकृष्णके सिवाय किसकी उपासना करते ? शुकदेव उसी तपस्याके साक्षात् फल हैं, इसी कारण वह जगत्में सबके परमादरके पात्र हैं और विशेष कर रासलीलाकी आदिमें यह पद आनेसे माहात्म्यकी पराकाष्ठा विदित हुई है, तात्पर्य यह है कि जो जो शुकदेवकी समान भक्तिपरायण हो वही इस कथाके सुननेका अधिकारी है, नवरसपूर्ण श्रीमद्भागवत है किसी प्रकारकी न्यूनता न रहे इसी कारण यह लीला शृंगाररसमें वर्णन की गई है और शुकदेवपक्षमें शुकदेवकी समान उज्ज्वल रसमें आवेष्टित चित्त करके इस लीलाको श्रवण करे, शृंगार रसकोही उज्ज्वल और आदिरस कहते हैं, विचारनेसे यही सबमें प्रधान है, इससे इसके अनुभावभी प्रधान हो सकते हैं । पंचाध्यायीका आभास भगवान्ने अपने प्यारे भक्तोंके लिये सभी कुछ किया है, व्रजकी सुन्दरियें उनके ऊपर अपना अत्यन्तही प्रेम करती थीं, इस कारण उनके मनोरथोंको पूर्ण करना उनका एक मुख्य कार्य था और वही उनका महान् सुख था, इन दोनोंही विषयोंको प्रगट करते वा दिखाते हुए सम्पूर्ण लोकोंकी पांच इन्द्रियोंकी समान, भक्तजनोंको अत्यन्त प्रीतिके देनेवाले पंच अध्यायसे गोपियोंके साथ

भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको वर्णन करते हैं, क्योंकि गोपियेंही सब प्रकारसे उनकी ऐसी रासक्रीडाके योग्य पात्र थीं, कारण कि "भगवान् साक्षात् मन्मथकेभी मन्मथस्वरूप हैं उनका यह शरीरभी त्रिलोकी समस्त सुन्दरताका अनुपम आधार है, यह नहीं कह सकते कि गोपियोंने कौनसे ऐसे तप किये थे कि वह अपनी दृष्टिसेही भगवान्की उस अनुपम सुन्दरताको पान करती थीं" इत्यादि। इन्हीं विधानोंसे इस भागवतके स्थान २ पर भगवान्की असाधारण महिमाके सम्बंधमें जो सम्पूर्ण चारित्र कहे गये हैं, उन सबको देखनेसे यह स्पष्टही विदित होता है कि भगवान्के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द वा वाक्य ये संपूर्ण आत्मारामोंको दुर्लभ हैं और उनका अनुभव करनाभी अत्यन्तही विचित्र है, गोपियोंने इन सबकी विचित्रताको जिस प्रकारसे अनुभव किया था, वैसे और किसीनेभी नहीं किया, विशेष करके भगवान्के अधरामृत रसको गोपियोंके अतिरिक्त और किसी स्थानमें पानसम्भव नहीं और वह गोपियें प्रेमके विशेष विस्तारमें जैसी हो गई थीं, ऐसा दूसरा दिखाई नहीं देता इत्यादि कारणोंसेही गोपियोंका भगवान्के संग ऐसा विहार करना योग्य और नित्यसिद्ध है और कहांतक कहें समझनेवालोंको यही बहुत है। श्रीमद्भागवतकी रासलीलामें जो चमत्कार हैं वह हमने रासपंचाध्यायी पुस्तककी श्लोकोंकी टीका करतेमें दिखाये हैं बुद्धिमानोंको उचित है कि आदिसे अन्ततक प्रथम इस रहस्यको विचारके साथ देख जांय तब विदित होगा कि यह कैसा अनुपम रत्न है।

सज्जनोंका कृपाभिलाषी,

ज्वालाप्रसादमिश्र, मुरादाबाद.

मुरादाबाद निवासी-

स्वर्गीय पं० बलदेवप्रसादजीमिश्रका-

संक्षिप्त जीवनचरित्र ।

श्लोकाः-

इयमुक्तिरिहाऽनृता कृता त्वधिवृद्धं करुणाऽतिरेकता । इति चेन्न कथं पितामह-त्रिदिवौका बलदेवपण्डितः ॥ १ ॥ शिरसा न बिभर्षि का रति-र्महि रत्नं वत रत्नगर्भिके । यदधः कृतवत्यहो गुणाद्गुणिरत्नं बलदेवप-पण्डितम् ॥ २ ॥ अहह प्रियरूपसद्गुणैर्भुवि मिश्रो बलदेव इत्ययम् । उपतापयति प्रियेतरान्किमु मित्राणि सुरालयं गतः ॥ ३ ॥ इति शोक-धुनीपताविती विनिमज्जन्त इह प्रिया वयम् । गिरिवेङ्कटनाथपत्तरिं शरणं याम इराधिपाऽऽश्रितम् ॥ ४ ॥

सवैया-

सूर समान प्रचंड सुचन्द सुचन्दन पावक तूल भयो है । शीत बयार प्रहार करै न सदा जु परै दई दुःख दयो है ॥ हा बलदेवजि मिश्र बिना प्रिय वस्तु समूह जु वैरिभयो है । वेङ्कटनाथ तिहारे बिना कहु कौन ने दुःख बिदारदयोहै ?

नाग गवांय मणी अपनी जिमि धीरजता प्रिय नाहिं लहैं । त्यों गुणि रत्न गवांय अहो बलदेवनि मिश्र को शोक सहैं ॥ मानुष देह की लाज जहाज के काज बिचारि जु मौन गहैं । हे सत पुत्र मिटाव कलेश हमेश यूँ इष्टहि जाचि कहैं ॥ २ ॥

सर्वसधारन पै करि प्रेम जु नेम सुग्रन्थ रचे बहु भासा । वेङ्कटईश्वर प्रेस को प्रेम निबाहि गये करि कीर्त्ति प्रकाशा ॥ केतक ग्रन्थ छपे अरु केतक ह्वैहैं उजागर जाकी हुलासा । मानुष लोक से भासा तमाशा के कारण भो मनु स्वर्ग में बासा ॥ ३ ॥

"जाकी यहां चाहना है, ताकी वहां चाहना है, जाकी यहां चाह ना है, ताकी वहां चाह ना है"

संसार में कितने ही मनुष्य नित्य मरते और कितने ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही आते और कितनेही चले जाते हैं परन्तु जिनके जन्म मरण से समाज का सम्बन्ध नहीं है, देशका सम्बन्ध नहीं है, उनके जन्म मरण से हमें न विशेष शोक ही है न सम्बन्ध ही। २८। ३० करोड़ अगण्य पुरुषों में से एक की कमी बढ़ती का प्रमाण ही क्या है। परन्तु जिसक जन्म मरण से समाज और देश का सम्बन्ध है उसके जन्म मरण का सुख दुःख समाज और देश का समझने योग्य होता है यथार्थ में उसी सपूत की माता पुत्रवती कहलाने का स्वत्व रखती है जिसके मुँह की ओर जन्म देनेवाली जननी ही नहीं किन्तु भाषा जननी और जन्मभूमि जननी भी आशा तथा चाह की दृष्टि से देखा करती हैं। वही भाग्यवान्न माता मातृ भाषा और मातृ भूमिका सच्चा सपूत है माता को बिलखती छोड़ पुत्र का उठजाना बड़े ही शोक सन्ताप और करुणा की बात है। परन्तु फिर भी ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होने पर माता को वज्र की छाती करके वह दुःख सहना ही पड़ता है। इस समय हमारी जननियों के भाग्य मन्द होरहे हैं। देश भाषा और जन्मदात्री जननियों को बड़ी ही कठिनाई से सपूत पुत्र का मुख देखना पडता है। फिर यदि बिना अवसर उसके आश्रय स्थल इने गिने सपूतों पर निर्दय काल का विकट प्रहार हो तो इससे बढकर शोक सन्ताप का और कौन अवसर होसकता है। समस्त भारत की एकमात्र भाषा सम्राज्ञी होने पर भी माता हिन्दी को यथेच्छ सुपुत्रों का सुख प्राप्त नहीं है, परन्तु जो कुछ है वह उन्हीं से भविष्य की आशा रखके सन्तुष्टहै परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उसके इने गिने सपूतों पर क्रूर काल की कराल दृष्टि पड़रही है। हिन्दी के जितने सपूतरूपी लेखक और सेवक हैं वह थोड़े होने के कारण अपने २ ढङ्ग के अकेले हैं इसलिये किसी एक के उठ जानेपर उसकी योग्यता का दूसरा यहां नहीं रह जाता। विशेष दुःख की बात तो यह है कि,

जैसे जाते हैं वैसे तैयार भी नहीं होते। भला- यदि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की बात न भी करें तौ भी पाण्डे प्रभूदयाल, बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू अयोध्याप्रसाद, पण्डित केशवराम भट्ट आदि सरीखे साहित्य सेवी अब हिन्दी संसार में कहां हैं। ऐसी स्थिति और समय में भली भांति अपने अनुभव विद्वत्ता, परिश्रमशीलता आदि गुणों का भली भांति बिना विकाश किये ही, अपक्व आयु में मुरादाबाद निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद जी मिश्र का उठ जाना हिन्दी प्रेमियों को बहुत ही खटका है। खटकाही नहीं किन्तु यह समाचार उनके लिये बहुत ही शोक सन्ताप का कारण हुआ है। इस समय उनके वियोग के दुःख से उनके कुटुम्ब वालेही दुःखित नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण साहित्यसेवी और उनके मित्र भी वियोग दुःख से दुःखित होरहे हैं। एक ओर उनकी बूढी माता का तुमुल क्रन्दन छाती फाडरहा है, दूसरी ओर मातृभाषा हिन्दी भी उनके लिये हाय हाय कर रही है। अतएव ऐसे शोक को हम स्थानिक नहीं किन्तु देश व्यापी शोक समझे हैं।

कराल काल पर किसी का अधिकार नहीं है। उसपर किसी का वश नहीं चलता, नहीं तो बिना अवसर यहां से उन्हें जाते देख कहा जासकता कि बूढी माता को कलपाकर भाइयों, भौजाइयों, भगिनियों, बहनोइयों, तथा कुटुम्बीजन और इष्ट मित्रों को रुलाकर आप कहां जा रहे हैं। यदि आपको इसीप्रकार बेसमय उठ जाना था तो साहित्य संसार में आपने अपने गुणों के सौरभ को क्यों फैलाया था? यदि सौरभ फैलाना आरम्भ किया था तो साहित्य कानन को भली भांति सुगन्धित करके तब कहीं जाना था। परन्तु यह सब विलाप के कलाप हैं। वह यहां से चले गये और फिर उनका यहाँ लौटना—इस शरीरमें फिर यहां दिखाई देना असम्भव है। न उनको रोकने की किसी को शक्ति थी और न वह अपनी इच्छा से ही रुकजाने को समर्थ थे। जो हो सबको शोक सन्तप्त करके पण्डित बलदेवप्रसादजी श्रावण शुक्ल सप्तमी

को इस संसार से विदा होगये, श्रावण शुक्र द्वितीया गुरुवार को उनका स्वास्थ्य विगड़ा, जी मचलाया और उबांति आई। औषधोपचार से व्याधि नहीं हटी तब डाक्टरी औषधि कीगई। पहिले डाक्टर की औषधि से कोई लाभ नहीं हुआ और रविवार को बीमारी प्रबल पड़ी। इससे सोमवार को दूसरे डाक्टर की औषधि कीजाने लगी। यद्यपि उस दिन उससे उनकी तबियत अच्छी रही किन्तु मंगलवार को फिर स्वास्थ्य अधिक विगडा और डाक्टर वैद्य कुटुम्ब के लोग तथा मित्रोंके देखते हुए वह इस संसार से प्रयाण करगये। ऊपर लिखा हुआ किसी कवि का कथन बहुत ठीक है कि "जिसकी यहां चाह नहीं है उसकी वहां भी चाह नहीं है और जिसकी यहां चाह है उसकी वहां भी चाह है"। मृत्यु, के पहले पण्डित जी ने अपने मित्र और कुटुम्बियों को बुलाकर सबसे विदा मांगी। जिस समय माता की गोद में हाथ रखकर उन्होंने मीठे स्वर से कहा कि, "मातः तुमभी हमको आज्ञा दो" उस समय माता तो इस वज्र वचन को सुनतेही मूर्च्छित होगई परन्तु सुननेवालों का हृदय भी विदीर्ण होने से नहीं बचा। अन्त में आप विष्णुसहस्रनाम सुनने और कुछ स्वयं भी कहने लगे। मित्र कन्हैयालाल ने राधाकृष्ण की छवि उनके सन्मुख की, उसके देखते ही देखते नेत्र मिचगये वह यहां न रहे, रहे केवल रोने और शोक करनेवाल !!!

पण्डित जी का जन्म सम्वत् १९२६ के पौष शुक्र एकादशी को हुआ था वालकोचित लालन पालन और यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् आपका हिन्दी का अभ्यास आरम्भ हुआ था। हिन्दी के पश्चात् अँगरेजी सीखी और फिर संस्कृत फारसी की ओर मन लगाया। बाबू पन्नालाल जैन के कहने पर आपने बँगला सीखी, यही नहीं किन्तु मराठी और गुजराती का भी अच्छा अभ्यास करलिया। कुछ दिनों के पहले आपने कनाड़ी भाषा का अभ्यास भी आरम्भ किया था। बँगला भाषा का ऐसा अभ्यास था कि, बँगला पुस्तक हाथ में लेकर एक साथ ही उसका अनुवाद असली पुस्तक के समान बोलते चले जाते थे। यही नहीं

किन्तु काम पड़ने पर मराठों के साथ मराठी गुजरातियों के साथ गुजराती और बंगालियों के साथ बंगाली में ही बात किया करते थे। समाचार पत्रोंके पढने का आपको बडा शौक था। हिन्दी, बंगाली, महाराष्ट्री, और गुजराती के कितने ही पत्र आपके पास आते थे, श्रीवेंकटेश्वर, भारतमित्र, बंगवासी, केसरी, गुजराती काल और हितवादी को आप चाव से पढा करते और अपने इष्ट मित्रों को सुनाया करते थे। कितने ही लोग आप के पास विना पूँछे पुस्तकादि के० वी० पी० भेज दिया करते थे परन्तु आप उन्हें कभी लौटाते नहीं और कहते कि "कुछ समझ करही तो उसने भेजा होगा"। १८। २० वर्ष की आयु में आपने साहित्यसरोज, सत्यसिन्धु, भारतवासी, भारतभानु और सोलजर पत्र का संपादन भी किया था इधर कई वर्ष पहले आपने तन्त्रप्रभाकर पत्र निकाला था जिसमें तन्त्र विषय के लेखों के अतिरिक्त साहित्य और धर्म विषयक अच्छे लेख निकला करते थे। कुछ मित्रों के साथ मिल उन्होंने तन्त्रप्रभाकर नाम का एक प्रेस खोला था परन्तु किसी आपसी झगड़े के कारण आपने उससे संबन्ध छोड़ दिया, तन्त्रप्रभाकर पत्र भी कुछ ही वर्ष चलकर बन्द होगया। तबसे आपने पुस्तक प्रणयन करने में ही विशेष ध्यान लगाया यद्यपि आप कविता करने का अभ्यास नहीं रखते थे तथापि काम पड़ने पर अच्छी कविता करलेते थे और लिखने में ऐसी जल्दी लिखते थे कि एकवार एक फ़ारसी लिखनेवाले कोभी हार माननी पड़ी थी। पुस्तक संग्रह करने का आपको बड़ा भारी शौक था प्रत्येक विषय की पुस्तकों का आपके यहां बड़ाभारी संग्रह है, उनके आफिस का एक कमरा उनकी पुस्तकों से ही भरा हुआ है। कभी २ आप पुस्तकों के ढेर को देखकर कहा करते थे कि "हमारे पश्चात् न जाने इनकी कैसी स्थिति होगी" परन्तु सुयोग्य प्रख्याति प्राप्त ज्येष्ठ भ्राता विद्यावारिधि पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मिश्र ने उनके आत्मा को सन्तुष्ट करने और अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये निश्चय किया है कि, उनका कार्य्यालय ज्यों का त्यों रहेगा और पुस्तकों का संग्रहालय भी बना रहेगा। बुद्धि की विलक्षणता

और पुस्तकों के पठनपाठन से आपका अनुभव ऐसा परिपक्क होगया था कि किसी भी विषय की पुस्तक लिखने के लिये आप तैयार होजाया करते थे सबसे पहले आपने मास्टर अम्बाप्रसाद के कहने से जागती ज्योति नाम की पुस्तक लिखी थी वहीं से जागती ज्योति के समान उन की कीर्त्ति का फैलना आरम्भ हुआ । फिर तो आपने बहुतसी पुस्तकें अनुवाद, भाषा टीका, तथा स्वयम् लिखित तैयार कीं । उनकी कुछ पुस्तकें श्रीवेंकटेश्वर समाचार तथा भारतमित्र के उपहारों में बँटी हैं । कुछ पुस्तकें इधर उधर प्रकाशित हुई हैं । कुछ लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस और अधिकांश इसी श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित हुई हैं । आपकी अनुवादित तथा लिखित पुस्तकें—वाराही संहिता, भाषा भागवत, नैपाल का इतिहास, पानीपत, नन्दाविदा नाटक, देवी उपन्यास, रसेन्द्रचिन्तामणि, मिश्रनिघण्टु, प्रभासमिलन, महानिर्वाण तन्त्र, लघु भागवतामृत, हितोपदेश, शिवाजीविजय, लल्लाबाबू प्रहसन, नाटक निर्माणविधि, यन्त्र चिन्तामणि सूर्य्यसिद्धान्त, रमलभास्कर, पृथ्वीराजचौहान, तांतियाभील, अध्यात्मरामायण मेघदूत, ताजिरातहिन्द, कल्किपुराण आदि हैं । बहुतसी पुस्तकें अभी विना छपीहुई पड़ी हैं जो धीरे २ श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में प्रकाशित होंगी । टाड राजस्थान का भी आपने अनुवाद किया है वह भी कुछ शेष अंश की पूर्ति कराकर इसी प्रेस में प्रकाशित होगा । आपने तन्त्रशास्त्र की कई पुस्तकें मराठी गुजराती में भी तैयार की थीं पिछले साल पण्डितजी जगदीश यात्रा को गये थे ।

विद्याव्यसन में आपका अधिक मन लगारहा करता था इस कारण अधिक उमर होजाने पर भी आपने विवाह नहीं किया था परन्तु कुटुम्ब के लोग तथा माता भ्राता के आग्रह से सम्वत् १९५७ में आपका विवाह हुआ । यद्यपि स्वर्ग जाते समय में आप कोई सन्तान छोड़ नहीं गये थे किन्तु तीन महीने पीछे एक कन्याका जन्म हुआ जो इस समय विद्यमान है ।

१ राजस्थानके दोनों भाग छप चुकेहैं प्रत्येकका मूल्य १०) १०) रु. हैं ।

पंडितजी की प्रकृति बहुत ही सरल और दयालु थी। छोटे लड़कों पर आपका अधिक स्नेह रहता था। आप उन्हें हंसाने खिलाने लगजाते थे। विना ऊंच नीच का विचार किये, बीमारों की दवा आदि करते कराते थे। जब कोई गरीब आपके पास आजीविकाके लिए आता तब आप उसे कहीं न कहीं धन्धेसे लगा दिया करते थे। साहस और वचन पालने की दृढता भी आपमें अधिक थी। अपने वचन की पूर्ति के लिए आप तन मन धन से सचेष्ट रहते थे। राज कार्यालयमें काम पड़ने पर सत्यपक्षवालेका पक्ष लेनेमें आप हिचकते नहीं थे। जिस से स्नेह होता उसकी भलाई करने में तत्पर रहते थे। धार्मिकता और देवभक्ति भी आप में कम नहीं थी। महावीर जी के मन्दिर में प्रतिदिन दर्शनों को जाते थे। कभी २ सनातन धर्म सभाओं में जाते और व्याख्यान देते थे। गङ्गा स्नान में आप की बड़ी प्रीति थी प्रतिवर्ष आप गङ्गा स्नान को जाते और बीच २ में हरिद्वार भी हो आते थे। भोजन के पहले स्तोत्र पाठ अवश्य करते थे कोई न कोई पण्डित आप के यहां नित्य पूजा किया ही करता था मिलनसार ऐसे थे कि उन से मिलकर कोई प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता था। प्रायः सबही हिन्दी पत्र और हिन्दी लेखकों से आप का स्नेह तथा परिचय था। श्रीमान् छत्रपुर नरेश आप का बड़ा आदर सत्कार करते थे। आपने इन्हें कईबार बुलाया और जब २ यह गये तब २ कोई न कोई ग्रन्थ उन्हें समर्पित किया ही। टिहरी गढवाल के महाराजकुमार श्री विचित्र शाह भी आप का बड़ा आदर करते थे। उन्हें भी आपने कई पुस्तकें समर्पित की हैं। जा चिट्ठी किसी से न चलती उसे आप पढलिया करते थे मुरादाबाद में जो इस समय विद्या की चर्चा सुनने में आती है। वह अधिकांश में पण्डितजी के कारण से है। आप ऐसे परिश्रमी थे कि सारादिन पारसलों के भेजने तथा दूसरों के काम में विताते और रात को दो ढाई बजेतक जागकर अपना काम करते थे। पुस्तकों की बिक्री तथा ग्रन्थों के लिखनें में आपकी दैनिक आय प्रायः आठ दश रुपये होती थी परन्तु उसका अधिकांश भाग आप पुस्तकों के खरीदने में लगा दिया करते थे। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस तथा इस पत्र के मालिक सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास पर आप

की बड़ी कृपादृष्टि रहा करती थी आप इस कार्यालय के सच्चे शुभचिंतक थे एकबार मुरादाबाद के लाला गनेशीलालजीने आपको अधिक व्यय करने से हाथ रोकने के लिए कहा था तब आपने उत्तर दिया था कि मेरे ऊपर बड़े भाई तथा सेठ जी हैं इससे मुझे व्यय करने में सङ्कोच नहीं है स्वर्गवासी सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी तथा श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के मालिक महोदय पर जो आपकी प्रीति थी वह लोगों से बातचीत करते समय प्रायः प्रकाशित होजाया करती थी ।

भारतमित्र सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त तथा पण्डित दीनदयालुजी शर्म्मा महोदय से आप का अच्छा स्नेह था। पण्डित कन्हैयालालजी उपाध्याय सनातनधर्म पताका के सम्पादक पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, पण्डित श्रीलालजी, पं०विशेश्वरनाथ, पं० रामचन्द्रजी उपदेशक पीलीभीत, उपदेशक पंडित बनमालीशङ्कर मिश्र, पं० हरिहरनाथ शास्त्री, पं० बैजनाथ, पं० ऋषिराम, पं० गङ्गाप्रसादजी आदि से आप की मित्रता थी। मुरादाबाद की सनातनधर्म सभा ने उनके लिए शोक प्रकाशित किया है उनके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कनिष्ठ भ्राता पण्डित कन्हैयालाल आदि पर जो यह शोक का पहाड़ गिरा है वह कहकर बतलाने की बात नहीं है। यह शोक केवल उनके कुटुम्बकाही नहीं किन्तु सम्पूर्ण हिन्दी संसार का है। पण्डितजीके स्वर्गवास से हमने अपना एक शुभचिंतक, सहायक तथा मित्र खोया है इस लिए इस घटना से हमारे हृदय को भारी चोट का लगना स्वाभाविकही है । ईश्वर उनके आत्मा को सद्गति प्रदान करै। कुटुम्बवालों को धैर्य देकर उनकी शेष आशा पूर्ण करे तथा हिंदी में उनके ऐसे अनेक साहित्यसेवी उत्पन्न हों।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बंबई.